''जैन पुराणों के विशेष संदर्भ में : प्राचीन भारतीय मनोरंजन''

शोध प्रबंध

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की

पीएच.डी.

की उपाधि हेतु प्रस्तुत

इतिहास

(सामाजिक विज्ञान संकाय)

शोधार्थी

रुचि जैन

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. प्रणव देव, व्याख्याता

इतिहास विभाग,

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2017

Dedicated to
My Parents
&
My Husband
"Vaibhav"

CANDIDATE DECLARATION

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled "जैन पुराणों के विशेष संदर्भ में : प्राचीन भारतीय मनोरंजन" in partial fulfillment of the requirement for the award of the degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of **Dr.Pranav Dev** and submitted to the research center Govt. PG College, Jhalawar, University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and wherever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any institution. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date:

RUCHI JAIN

This is to certify that the above statement made by **RUCHI JAIN** is correct to the best of my knowledge.

Date:

Dr. PRANAV DEV
Supervisor, History
Govt. PG College, Jhalawar

THESIS APPROVAL FOR DOCTOR OF PHILOSOPHY

This thesis entitled "जैन पुराणों के विशेष संदर्भ में: प्राचीन भारतीय मनोरंजन" by **Mrs. RUCHI JAIN** submitted to the department of political science in Govt. PG College Jhalawar University of Kota, Kota is approved for the award of Degree of Doctor of Philosophy.

Examiner

....

....

Supervisor (s)

....

....

Date: ....

Place: ....

CERTIFICATE BY THE SUPERVISOR

It is certified that the:

1. Thesis entitled "जैन पुराणों के विशेष संदर्भ में : प्राचीन भारतीय मनोरंजन" submitted by **Mrs. RUCHI JAIN**, is an original piece of research work carried out by her under my supervision.
2. Literary presentation is satisfactory and the thesis is in a form of suitable for publication work.
3. Work evinces the capacity of the candidate for critical examination and independent judgement.
4. Candidate has put at least 200 days of at attendance every year.
5. Taken medical leaves (from 03rd March 2014 to 02nd August 2014) due to Pregnancy.

डॉ. प्रणव देव

व्याख्याता (इतिहास), इतिहास विभाग

राजकीय महाविद्यालय,

झालावाड़(राज.)

प्राक्कथन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपनी सम्पूर्ण जिन्दगी समाज, परिवार के कार्यो में लगा देता है। जब वह दिन–प्रतिदिन के कार्यो के बीच थोड़ा विश्राम चाहता है, तो मनोरंजन की शरण में जाता है। मनोरंजन थके हारे मनुष्य के लिए माँ की गोद में आश्रय पाने जैसा ही है। प्राचीन भारतीय समाज में जबकि आबादी कम थी, भौतिक संसाधनों की इतनी आवश्यकता नहीं थी। लोगों के पास भरपूर समय होता था। ऐसे समय में लोग थोड़े समय के लिये संसार के झंझटों और विषम परिस्थितियों से अपने मन को बिल्कुल परे कर देते थे तथा अपने मन बहलाव के लिए विभिन्न प्रकार के मनोरंजनात्मक क्रिया–कलापों में हिस्सा लेते थे। स्त्री–पुरूष, बच्चे, व्यस्क, बूढ़े सभी को शारीरिक चुस्ती, फुर्ती, मानसिक क्रियाशीलता एवं उमंग उल्लास की तरंगे जीवन में भरने के लिए मनोरंजन की आवश्यकता होती थी।

प्राचीनकाल से हमारे देश में मनोरंजन के जितने भी साधन प्रचलित थे उनका विवेचन प्राचीन ग्रन्थों, लेखों, अभिलेखों, स्मारकों में मिलता है। इन्हीं प्राचीन ग्रन्थों में पुराण भारतीय इतिहास के अजस्त्र स्त्रोत कहे जा सकते है। जिनमें सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्षों से सम्बंधित प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है। भारतीय वाङ्मय में परम्परागत पुराणों के समानान्तर जैन पुराणों की एक अविच्छिन्न धारा दृष्टिगोचर होती है।

जैन पुराण साहित्य विशाल एवं बहुविध है। इनका उद्‌भव आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से माना जाता है, जो गुरू परम्परा द्वारा विकसित हुआ। जैन परम्परा में बारह प्रकार का अरहंत, चक्रवर्ती, विधाधर, वासुदेव, चारणवंश, प्रज्ञाश्रमण, कुरूवंश, हरिवंश, इक्ष्वाकुवंश, काश्यपवंश, वादि (वाचक) तथा नाथवंश के पुराणों की परम्परा का उल्लेख मिलता है। जैन पुराणों को ईसा की छठी शती से अठारहवीं शती के मध्य रखा जा सकता है। इनकी संख्या शताधिक हैं किन्तु अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पद्मपुराण, हरिवंशपुराण और महापुराण (आदिपुराण एवं उत्तरपुराण) को विशेष रूप से ग्रहण किया गया है। जो जैन

पुराणों के प्रतिनिधिभूत है। इन पुराणों की कथावस्तु रामायण, महाभारत एवं त्रिषष्टि शलाका पुरूषों के जीवन पर आधारित है।

जैन पुराणों में कथाओं के माध्यम से पूर्व परम्परा और समकालीन धार्मिक जीवन के विविध पक्षों को उजागर करने के साथ ही सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिकपरकदृष्टि से मनोरंजनात्मक विषयों की भी सविस्तार चर्चा की गयी है। ये कथायें और इनमें अभिव्यक्त विवरण समकालीन जीवन और संस्कृति के विविध आयामों को सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही स्तरों पर प्रस्तुत करती है। जिनकी प्रासंगिकता और विश्वसनीयता इतिहास सिद्ध है। पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, महापुराण जैसे जैन ग्रन्थों पर सांस्कृतिक जीवन के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण शोधकार्य हुए है, किन्तु उनमें वर्णित मनोविनोद के साधनों की सामग्री का अध्ययन अपेक्षित विस्तार और समीक्षा की दृष्टि से अभी तक प्रस्तुत नहीं हुआ है। ये पुराण विभिन्न कथाओं एवं अवान्तर कथाओं के माध्यम से अपने समय के विभिन्न प्रकार के खेलकूद, साहित्य, संगीत, चित्रकला, कहानी–कथा, कुश्ती, गोष्ठी, खान–पान, उत्सव, नाटक, सामाजिक एवं धार्मिक क्रिया–कलापों की आधारभूत सामग्री प्रस्तुत करते है। अतः मनोरंजन के इन सभी साधनों को एकत्र व संकलित कर एक सूत्र में पिरोने का अकिंचन प्रयास यहाँ किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध इसी दिशा में सामयिक विनम्र प्रयास है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध सात अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत अध्ययन की प्रकृति, शोध के उद्देश्य, साहित्य का पुनर्वीक्षण, शोध प्रबंध की प्रविधि तथा शोध सामग्री की समीक्षा की गई है।

द्वितीय के अन्तर्गत पुराणों का उद्‌भव एवं विकास प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत पुराण शब्द, अर्थ, जैन पुराणों के लक्षण, संख्या,उद्‌भव का प्रतिपादन किया गया है।

जैन पुराणों का क्रमिक विकास व उनकी विषयवस्तु नामक तीसरे अध्याय में जैन पुराणों के क्रमिक विकास व पद्मपुराण, हरिवंशपुराण तथा महापुराण (आदिपुराण तथा उत्तरपुराण की विषयवस्तु दी गई है।)

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत मनोरंजन शब्द के अर्थ, रूप, ऐतिहासिक आधार को प्रस्तुत करते हुए यह तथ्य उद्घाटित किया गया है कि मनोरंजन मनुष्य के जीवन में खुशी का संचार करने का सर्वोत्तम स्त्रोत है। मनोरंजन का उद्भव मानव सभ्यता के साथ ही हुआ है। प्राचीन भारत में विभिन्न कालों सैन्धव काल, पूर्व वैदिक, उत्तर वैदिक, महाकाव्य काल, बौद्ध काल तक इसका क्रमशः विकास हुआ। गुप्त काल तथा गुप्तोत्तर में विकास अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर गया। परिणामस्वरूप जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मनोरंजन की प्रवृत्तियों का प्रभाव दिखाई देने लगा। इसी अध्याय में मनोरंजन के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक रूपों की व्याख्या की गई है।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत प्राचीन भारत में प्रचलित मनोरंजन के विभिन्न साधनों को प्रस्तुत किया गया है। खेलकूद, उत्सव, गोष्ठी, कथा–कहानी, इन्द्रजाल, संगीत, नृत्य, नाटक, वादन, चित्रकारी इत्यादि के माध्यम से प्राचीन भारत के प्रत्येक कालों में मनोरंजनात्मक प्रवृत्ति को दर्शाया गया है।

अध्याय छः के अन्तर्गत जैन पुराणों में मनोरंजन के साधनों को गवेषित कर प्रस्तुत किया गया है। महापुराण, (आदिपुराण व उत्तरपुराण), पद्मपुराण, हरिवंशपुराण को मनोरंजन विषयक सामग्री के आधार पर अलग–अलग प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम पद्मपुराण में वर्णित मनोरंजन के साधनों का उल्लेख किया गया है तथा तत्कालीन समय में इनका महत्व एवं विश्लेषण भी वर्णित है।

इसी तरह हरिवंशपुराणकालीन समाज में प्रचलित मनोरंजन के साधनों का उल्लेख एवं महत्व दर्शाया गया है। अन्त में महापुराण (आदिपुराण व उत्तरपुराण) में वर्णित मनोरंजन के साधनों को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है।

उपसंहार नामक सातवें अध्याय में प्रस्तुत शोध का निष्कर्ष वर्णित है तथा ऐसे तथ्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जिसके माध्यम से न केवल लोगों की मानसिक शक्तियों का विकास होता है, बल्कि उनके हृदय में आशा, उत्साह, उमंग, प्रेरणा जैसे मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक गुणों का प्रस्फुरण होता है। इस अध्याय के अन्तर्गत मनोरंजन के प्राचीन साधनों की वर्तमान में स्थिति पर भी प्रकाश डाला है।

इस विस्तृत विषयक शोध कार्य के प्रणयन में मैं सबसे प्रथम परम पूज्य प्रातः स्मरणीय **''आदि ब्रह्मा 1008 श्री आदिनाथ भगवान''** का परम आशीर्वाद मानती हूँ कि उनकी असीम कृपा से मेरा यह शोध कार्य पूर्ण हुआ। परम पूज्य गुरूवर श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज एवं क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी महाराज, मुनि अविचल सागर जी महाराज, ब्र..श्री संजय भैय्या, ऋतुकला दीदी के प्रेरणादायक एवं विद्वतापूर्ण निर्देशन व आशीर्वाद के बिना शोध कार्य पूर्ण नहीं हो सकता था, मै उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध की रचना परम पूज्य गुरू **डॉ. प्रणव देव** शोध निर्देशक, राजकीय महाविद्यालय, झालावाड़ के निर्देशन और स्नेहमयी छत्र–छाया में सम्पन्न हुई है। विषय चयन से लेकर समाप्ति तक श्रद्धेय गुरूवर की मेरे ऊपर विशेष अनुकम्पा रही है। उनके कुशल निर्देशन, मार्गदर्शन तथा उदार सहयोग के बिना यह शोध कार्य कदापि सम्भव नहीं था। अपने महाविद्यालय के कार्यों में व्यस्त रहने के बावजूद भी उन्होंने कदम–कदम पर मेरी कठिनाइयों को सुलझाते हुए शोध प्रबंध का आद्योपान्त अध्ययन करते हुए अमूल्य सुझावों से मार्गदर्शन किया, उसके लिए मैं उनके प्रति श्रद्धा निवेदित करती हूँ। साथ ही परमस्नेही गुरू माँ डॉ. श्रीमती अर्चना शर्मा के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने सदैव कार्य पूरा करने के लिए प्रेरित किया।

त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान, कोटा के निदेशक **डॉ. बी. एल. सेठी** ने शोध कार्य की अवधि में मेरा उत्साहवर्धन ही नहीं किया अपितु मेरे लिए आवश्यक ग्रन्थों तथा शोध पत्रिकाओं को भी उपलब्ध कराया है,

जिसके अभाव में यह शोधकार्य सम्भव नहीं था, उनकी स्नेहपूर्ण कृपा के प्रति पर्याप्त रूप से कृतज्ञता प्रकट करना मेरे लिए असम्भव है। मैं राजकीय महाविद्यालय, कोटा के रिटायर्ड व्याख्याता श्री अरविन्द सक्सेना का भी आभार प्रकट करती हूँ। जिन्होनें अमूल्य सुझावों से मेरा मार्गदर्शन किया।

मैं अपने पिता **श्री विमलचंद सोनी माता श्रीमति आशा सोनी, बड़े श्वसुर श्री कमल बाकलीवाल, श्वसुर श्री नरेन्द्र कुमार बाकलीवाल सास श्रीमति प्रभा बाकलीवाल, अग्रज श्री चेतन कुमार, भरत कुमार, अनन्त कुमार, भाभी श्रीमति बरखा, श्रीमति साक्षी, एवं अन्य परिवारजनों** के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय–समय पर मुझे शोध कार्य हेतु प्रेरित एवं सहयोग दिया।

मैं अपने पति **श्री वैभव बाकलीवाल** की भी विशेष आभारी हूँ। जिन्होने हर पल सहयोग देते हुए मेरा आत्मविश्वास बनाए रखा। अपनी माँ से तो मैंने निःसंकोच शारीरिक श्रम वसूल किया है और उन्होंने ही मेरे अंदर शोध की प्रवृत्ति को सदैव जाग्रत किए रखा अतः मैं उनकी आजीवन चिरऋणी रहूँगी।

पुत्री **'क्रिशा'** का तो मेरे वैचारिक सृजन में अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण योगदान है। शोध चिंतन और लेखन से होने वाली मानसिक थकान को दूर करने हेतु उसकी बाल सुलभ चंचलता ही मेरे लिए विशेष सहारा था।

अंत में मैं उन सभी मनीषियों और महानुभावों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होनें शोध कार्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग किया है।

अत्यन्त सावधानी के बाद भी यदि प्रूफ सम्बन्धी कुछ गलतियाँ रह गयी हो तो उनके लिए मैं विद्वज्जनों से क्षमाप्रार्थी हूँ। और श्रद्धावनत होकर उनके आशीर्वाद की कामना करती हूँ।

शोध प्रबंध को सुनियोजित एवं प्रभावी ढंग से मुद्रित करने के लिए मैं मंथन कम्प्यूटर्स, नयापुरा कोटा के संचालक प्रदीप्त सिंह पंवार एवं मोहित अंसारी को धन्यवाद देती हूँ।

स्थान : कोटा　　　　　　　　　　विनयावनत

दिनाँक :　　　　　　　　　　**रुचि जैन**

अनुक्रमणिका

क्र.स. संख्या	अध्याय	पृ.
अध्याय 1.	**विषय प्रवेश**	
1.1	अध्ययन की प्रकृति	
1.2	शोध कार्य का उद्देश्य	
1.3	साहित्य का पुनर्वीक्षण	
1.4	शोध प्रबंध की प्रविधि	
1.5	शोध सामग्री की समीक्षा	
1-16		
अध्याय 2.	**पुराणों का उद्‌भव एवं विकास**	
2.1	पुराण : अर्थ एवं पर्याय	
2.2	पुराण व्याख्या : जैन दृष्टिकोण	
2.3	जैन पुराणों की उद्‌भव प्रक्रिया	
17-26		
अध्याय 3.	**जैन पुराणों का क्रमिक विकास व उनकी विषयवस्तु**	
3.1	जैन पुराणों का रचना काल	
3.2	जैन पुराणों का क्रमिक विकास	
3.3	महापुराण की विषयवस्तु	
3.4	पद्मपुराण की विषयवस्तु	
3.5	हरिवंश पुराण की विषयवस्तु	
3.6	मनोरंजन के पौराणिक संदर्भ	
27-56		
अध्याय 4.	**मनोरंजन**	
4.1	मनोरंजन का अर्थ	
4.2	मनोरंजन की अवधारणा	
4.3	मनोरंजन : उद्‌भव एवं विकास	
4.4	मनोरंजन के विविध रूप	

4.5 मनोरंजन के उद्देश्य

57-70

अध्याय 5. प्राचीन भारतीय मनोरंजन के साधन

5.1 वैदिक, उत्तरवैदिक, मौर्य, गुप्त एवं परवर्ती काल में प्रचलित मनोरंजन के साधन

5.2 उल्लेख

5.3 महत्व

71-118

अध्याय 6. जैन पुराणों में प्रतिपादित मनोरंजन

6.1 पद्मपुराण में प्रतिपदित मनोरंजन

1. मनोरंजन के साधन
2. उल्लेख
3. महत्व

119-175

6.2 हरिवंश पुराण में प्रतिपदित मनोरंजन

1. मनोरंजन के साधन
2. उल्लेख
3. महत्व

176-228

6.3 महापुराण (आदिपुराण + उत्तर पुराण) में प्रतिपादित मनोरंजन

1. मनोरंजन के साधन
2. उल्लेख
3. महत्व

229-316

7. समीक्षा एवं उपसंहार

317-323

संदर्भ ग्रंथ सूची

324-336

चित्र फलक

अध्याय–प्रथम

विषय प्रवेश

1.1 अध्ययन की प्रकृति

1.2 शोध कार्य का उद्देश्य

1.3 साहित्य का पुनर्वीक्षण

1.4 शोध प्रबंध की प्रविधि

1.5 शोध सामग्री की समीक्षा

प्रथम अध्याय

1. अध्ययन की प्रकृति :

7 वीं से 10 वीं शती तक पूर्व मध्यकाल में रचित पौराणिक जैन साहित्य भारतीय इतिहास के उन धुंधले पृष्ठों को प्रकाशित करता है। जिनके विषय में शोधार्थियों द्वारा शोध नहीं किया गया हैं। पौराणिक जैन साहित्य के इन लेखकों में कुछ ने तो अपने पूर्ववर्ती कथानकों को लक्ष्य करके अपने ग्रन्थों की रचना की, साथ ही राजाओं का केवल प्रसंगवश उल्लेख किया है। उनकी कृतियां भी शोध की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं। संयोग की बात है कि प्रतिहारों, चालुक्यों एवं राष्ट्रकूटों ने जैन विद्वानों से अपने दरबारों की शोभा में अभिवृद्धि की। उन विद्वानों के ग्रन्थ निश्चित रूप से अध्ययन के लिये विशेष महत्व रखते हैं।

जैन विद्वानों की रूचि केवल धर्म की और ही न होकर लौकिक समस्याओं की और भी थी। अतः उनके द्वारा रचित पुराण, साहित्य, इतिहास व मनोरंजन के अध्ययन के लिये महत्वपूर्ण साधन, ग्रंथ प्रमाणित हुए हैं। जैन धर्म में जो पुराण साहित्य विद्यमान है वह अपने ढंग का निराला है, जहां अन्य पुराण इतिवृत की यथार्थता को सुरक्षित नहीं रख सके है वहां केवल जैन पुराणकारों ने इतिवृत्त की यथार्थता को अधिक सुरक्षित रखा है। इसलिये आज के निष्पक्ष विद्वानों का यह स्पष्ट मत हुआ है कि हमें तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों को जानने के लिये जैन पुराणों से जो उत्साह प्राप्त होता है वह अन्य पुराणों से नहीं। 7वीं से 10वीं शताब्दी के मध्य में हमें निम्न जैन पुराणों का उल्लेख मिलता हैं।

महापुराण के कथानायक त्रिषष्टिशलाका पुरूष है। 24तीर्थंकर, 12चक्रवर्ती, 9बलभद्र, 9नारायण और 9 प्रतिनारायण, यह त्रैसठ शलाका पुरूष कहलाते हैं। इनमें से आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर श्री वृषभनाथ और उनके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत का ही वर्णन हो पाया है। अन्य पुरूषों का वर्णन गुणभद्राचार्य प्रणीत उत्तरपुराण में हुआ है।

श्री वृषभनाथ (भगवान आदिनाथ) ने असि (सैनिक कार्य), मसी (लेखन कार्य), कृषि (खेती), विद्या (संगीत–नृत्यगान आदि), शिल्प (विविध वस्तुओं का निर्माण) और वाणिज्य (व्यापार) छः कार्यों का उपदेश दिया तथा इन्द्र के सहयोग से देश, नगर, ग्राम आदि की रचना करवाई। भगवान के द्वारा प्रवर्तित छः कार्यों से लोगों की आजीविका चलने लगी। उस समय की सारी व्यवस्था भगवान आदिनाथ ने अपने बुद्धिबल से की थी। इसलिये यही आदिनाथ, ब्रह्मा, विधाता आदि संज्ञाओं से व्यवहृत हुए।

आचार्य जिनसेन द्वितीय के हरिवंशपुराण में कन्नौज के शासक इन्द्रायुध, अवंति के प्रतिहार शासक वत्सराज व राष्ट्रकूट शासक कृष्ण के पुत्र श्रीवल्लभ का उल्लेख मिलता है। आचार्य रविषेण के पद्मपुराण में रामकथा विषयक्त विवरण भारतीय संस्कृति के स्रोत के रूप में उपलब्ध है। आचार्य रविषेण का स्मरण उद्योतनसूरिकृत कुवलयमाला तथा जिनसेन द्वितीय ने हरिवंश पुराण में किया है।

आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण तत्कालीन संस्कृति, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, दार्शनिक, शिक्षा व कला के विविध रूपों में मनोरंजन के लिये अमूल्य धरोहर है। आचार्य जिनेसन कृत आदिपुराण, आचार्य गुणभद्र प्रणीत उत्तरपुराण, आचार्य जिनसेन द्वितीय कृत हरिवंशपुराण, आचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण में वर्णित उनके युग के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, कला, शिक्षा, राजनैतिक इतिहास के उस संधिकाल पर प्रकाश डालते है। जब एक और प्राचीन व्यवस्था लुप्त हो रही थी और सामंती व्यवस्था जोर पकड़ रही थी। राष्ट्रकूटवंश के राज्य में कृष्णराय द्वितीय का कालसमय महत्वपूर्ण है। बंगाल के पाल, राजस्थान के गुर्जर, प्रतिहार तथा दक्षिण के राष्ट्रकूट एक दूसरे पर अपना प्रभाव बढाने का प्रयास कर रहे थे। इस प्रक्रिया में जहां एक और संघर्ष का वातावरण था वहीं दक्षिण का मिलन हो रहा था। इस सांस्कृतिक व मनोरंजन के मिलन की झलक उक्त चारों पुराणों में देखने को मिलती है। इन पुराणों से कर्ममूलक विरक्तता का आभास होता है। सांस्कृतिक व ऐतिहासिक दृष्टि से यहां एक प्रश्न उभर कर आता है कि क्या ये

कर्म विरक्तता की धारणा व अवधारणा यही है जो इन पुराणों में देखने को मिलती है।

आचार्य जिनसेन, आचार्य गुणभद्र, आचार्य रविषेण, आचार्य जिनसेन द्वितीय के ग्रंथों में अहिंसा को परमधर्म मानकर हिंसा का विरोध किया है जो कि हमारी संस्कृति का एक प्रमुख मानवीय मूल्य रहा है। बौद्ध धर्म, मनुस्मृति में भी अहिंसा की खूब प्रशंसा की गई है ओर अहिंसा में जीवन यापन करने का उपदेश दिया गया है। इसी प्रकार इन पुराणों में भारत के प्रदेश, नाम, जाति का प्रभुत्व, तत्कालीन ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा मनोरंजन की दृष्टि से कला निश्चय ही महत्वपूर्ण है। प्राचीन भारतीय साहित्य के इन जैन आचार्यों ने न केवल अपनी अमूल्य कृतियां भेंट की अपितु उसे भली भांति प्रौढ़ता व प्रगाढ़ता भी प्रदान की है तथा साथ ही उसे विकसित व समृद्ध भी किया है। उनकी कृतियां आज पाण्डुलिपियों के रूप में ताम्रपत्रों, कागजों तथा कपड़ों पर सैकड़ों वर्षों से सुरक्षित है। ये जैन आचार्य सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, दार्शनिक मनोरंजन व कला के पक्ष को उजागर करते है। आदि पुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण पर शोध करने से भारतीय संस्कृति की विकास परम्परा में मनोरंजन व सामाजिक, धार्मिक मूल्यों के साथ–साथ काल विशेष के ग्रंथो का मूल्यांकन होगा जिससे वर्तमान जनमानस परिचित नहीं हैं।

अतः ऐसे समय हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम हमारे पुरातन ज्ञान की धरोहर को केवल संग्रहालय की शोभा बढाने में काम न लाए। वरन् उसका उपयोग करके हम अपनी आर्थिक उन्नति को मजबूत कर सकें।

2. शोध का उद्देश्य :

आज समय की आवश्यकता है कि हम अपने पौराणिक ग्रंथों, पुराणों, स्मृतियों, नीतिकारों, चरित्रों, महाकाव्यों, वेदों की विशाल सामग्री में संचित ज्ञान को समझकर उसका प्रयोग मानवता के लिये करें। इसी हेतु काफी सतत् प्रयास वर्तमान में हुए भी है एवं हम उनका लाभ भी उठा रहे है परन्तु इनमें अभी

काफी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। अन्य भारतीय साहित्य की तरह ही जैन पौराणिक साहित्य में भी धार्मिक, राजनैतिक, दार्शनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व अन्य विचारों के साथ कला एवं मनोरंजन के विचार भी विद्यमान हैं।

जैन पुराणों में वर्णित कला एवं मनोरंजन के विचारों को न तो पढ़ाया जाता है और न ही स्वाध्याय हेतु उस पर कोई विशेष सामग्री उपलब्ध है। इस कारण यह बहुत ही आवश्यक है कि इस सामग्री का अध्ययन कर इसके सार तत्वों को जनमानस की भाषा में प्रस्तुत किया जाऐ एवं इसकी उपयोगिता से लोगों को परिचित कराया जाए।

इस अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्य निम्न है :

1. प्राचीन जैन पौराणिक साहित्य में वर्णित कला एवं मनोरंजन के विचारों को निकालकर क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित करना।
2. साहित्य में उपयोगी मनोरंजन के विचारों का जनसाधारण की भाषा में सरलीकरण करना।
3. वर्तमान मनोरंजन की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में उनकी उपयोगिता का मूल्यांकन करना।
4. उक्त मनोरंजन के विचारों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान मनोरंजन की समस्याओं के समाधान हेतु प्रभावी सुझाव देना।
5. उन परिस्थितियों की व्याख्या करना जिनमें मनोरंजन के विचारों का प्रयोग किया जाना लाभप्रद होगा।
6. जैनेतर साहित्यों में वर्णित मनोरंजन के साधनों का जैन साहित्यों में वर्णित मनोरंजन के साधनों से तुलनात्मक अध्ययन करना।
7. मनोरंजन के साधनों का ऐतिहासिक स्रोत के रूप में अध्ययन करना।
8. विष्णुपुराण,शिवपुराण,अग्निपुराण आदि जैनेतर पुराणों में जैन धर्म के उद्भव सम्बन्धी अत्यन्त प्रतिकूल कथानक दिए गए है,उनका तथ्यगत दृष्टि से खण्डन करने से जैन पुराणों की रचना हुई। शोधार्थी का एक उद्देश्य इन पुराणों का सारभूत निष्कर्ष प्रस्तुत करना भी है।

3. साहित्य का पुनर्वीक्षण :

प्रस्तावित विषय पर भारत में व्यापक रूप से शोध कार्य नहीं हुआ है। जैन पुराणों में आचार्य जिनसेन द्वारा रचित आदिपुराण दो भागों में है। इसका सम्पादन व अनुवाद डॉ. पन्नालाल जैन ''साहित्याचार्य'' ने किया है यह आदिपुराण भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है। यह प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तथा भरत बाहुबली के पुण्यचरित के साथ–साथ भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के मूल स्त्रोतों एवं विकासक्रम को आलोकित करने वाला अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। जैन संस्कृति एवं इतिहास के अध्ययन के लिये यह अनिवार्य है।

आचार्य गुणभद्र द्वारा रचित उत्तरपुराण (10वीं शती) का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ से हुआ है। इसमें ऋषभदेव के उत्तरवर्ती शेष 23 तीर्थंकरों, 11 चक्रवर्तियों, 9 बलभद्रों, 9 नारायणों, 9 प्रतिनारायणों तथा तत्कालीन विभिन्न राजाओं एवं पुराण पुरूषों के जीवनवृत्तों का सविशेष वर्णन हैं।

आचार्य जिनसेन द्वितीय कृत हरिवंशपुराण 8वीं शती की (शक संवत 705) की अप्रतिम संस्कृत काव्य कृति है, इसमें 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ के त्यागमय जीवन चरित्र के साथ–साथ कृष्ण, बलभद्र, कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न तथा पाण्डवों तथा कौरवों का लोकप्रिय चरित्र को बडी सुंदरता से अंकित किया गया हैं। इसके अतिरिक्त इस विशाल ग्रंथ में सम्पूर्ण हरिवंश का परिचय तथा जैन धर्म और संस्कृति के विभिन्न उपादानों का स्पष्ट एवं विस्तार से विवेचन हुआ है। यह ग्रंथ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है तथा इसका सम्पादन व अनुवाद डॉ. पन्नालाल जैन ''साहित्याचार्य'' ने किया है।

आचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण (705 संवत्) 7वीं शती का सर्वोत्कृष्ट चरित्रकाव्य है। पुराण होकर भी यह ग्रंथ काव्यकला, चरित्र चित्रण आदि में अद्भूत है। इस ग्रंथ के अनुसार राम को पद्म कहा गया है। इसमें राम का चरित्र वर्णित है। यह ग्रंथ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है तथा सम्पादन अनुवाद डॉ. पन्नालाल जैन ने किया है।

4. शोध प्रबन्ध की प्रविधि :

वस्तुतः उक्त शोध का विषय ऐसा है जिसमें किसी विशिष्ट विधि के चयन की आवश्यकता नहीं है, अपितु ऐतिहासिक शोध की परम्परागत विधि अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है। पुनश्च आवश्यकतानुसार विभिन्न शोध विधियाँ काम में ली गई है। प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धति मिश्रित है।

पुराणों के अध्ययन के साथ जैन गुरूओं, मुनियों एवं जैन विद्वानों का स्त्रोत्र सामग्री के सरलीकरण में सहयोग लिया गया है। इस हेतु अनौपचारिक विचार विमर्श, व्यक्तिगत, साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया है।

5. शोध सामग्री की समीक्षा :

संबंधित साहित्य के महत्व एवं आवश्यकता को समझते हुए मेरे द्वारा शोध से संबंधित जिस साहित्य का अध्ययन किया है इनका संबंधित साहित्य के अन्तर्गत वर्गीकरण इस प्रकार है। जैन पुराण साहित्य जगत की अनुपम व अमूल्य निधि हैं। इनका अध्ययन, मनन और चिन्तन कर व्यक्ति अपने जीवन और समाज की धरा को परिवर्तित कर सकता है। यद्यपि इस दिशा में अब तक कोई सार्थक प्रयास नहीं हुआ है।

जैनाचार्यो के कथनानुसार जैन "पुराण" का उद्‌भव तीर्थंकर ऋषभदेव से हुआ है। महापुराण में वर्णित है कि उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी एवं तृतीय काल में ऋषभदेव ने जिस इतिवृत्त का वर्णन किया वृषभसेन गणधर ने उसे ही पुराण रूप प्रदान किया। क्रम से उसे ही तीर्थकरों, गणधरों तथा बड़े बड़े ऋषियों द्वारा प्रकाशित किया गया। चतुर्थकाल में अंतिम तीर्थंकर महावीर से महाराजा श्रेणिक ने राजग्रही में उक्त पुराण के विषय में जिज्ञासा प्रकट की, तब गणधर स्वामी ने उन्हें सुनाया। गौतम गणधर, सुधर्माचार्य, सुधर्माचार्य से जम्बूस्वामी और तदुपरान्त गुरू परम्परा से यह चला आ रहा है। इस प्रकार इस पुराण के मूल कर्त्ता महावीर और अंतिम कर्त्ता गौतम गणधर है।

वस्तुतः जैन पुराणों में पुराण के दो भेद है पुराण और महापुराण। जिसमें एक शलाका पुरूष का वर्णन हो उसे पुराण कहते है और जिसमें 63 शलाका पुरूषों का चरित्र का वर्णन हो उसे "महापुराण" कहते है। रामायण विषयक सबसे प्राचीन जैन पुराण विमलसूरि का प्राकृत में निबद्ध "पउमचरिउ" है इसमें राम के जीवन का वर्णन है जो रामायण से समानता रखता है।

महापुराण : जैन परम्परा में सर्वमान्य 63 शलाका पुरूषों, चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण है इनके जीवन चरित्र के आधार पर पुराणों की रचना हुई है। जिसमें संस्कृत भाषा का महापुराण सर्वप्रथम माना जाता है। महापुराण के दो भाग है आदि पुराण तथा उत्तरपुराण।

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित आदिपुराण के दो खण्ड है जिनमें प्रथम खण्ड में एक से पच्चीस तथा दूसरे खण्ड में छब्बीस से सैंतालीस पर्व है। उत्तरपुराण में अड़तालीस से तिहत्तर पर्व है। आदिपुराण के एक से बयालिस पर्व तथा 43 वें पर्व के तीन से 73 वें पर्व तक जिनसेन के शिष्य गुणभद्र द्वारा प्रणीत है। महापुराण की तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नही हैं तथापि महापुराण के अध्ययन तथा तत्कालीन ग्रंथों के आचार पर निष्कर्ष निकलता है कि आदि पुराण एंव उत्तरपुराण की रचना 9वीं एवं 10वी ंशताब्दी में हुई थी। जिनसेन वीरसेन स्वामी के शिष्य थे इन्होनें समस्त शलाका पुरूषों का चरित्र लिखने की इच्छा से महापुराण की रचना प्रारम्भ की थी।

1. आचार्य जिनसेन (सन् 2006), आदिपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई–दिल्ली।

भारत तथा भारतीय जीवन का यह एक विश्वकोष है। इसके 47 पर्वों में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव तथा उनके सुयोग्य पुत्र भरत को आधार बनाकर तत्कालीन भारत की सामाजिक, भौगोलिक,सांस्कृतिक स्थिति पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। अतः यह पुराण ग्रंथ के साथ उच्च कोटि का महाकाव्य भी है। महापुराण में ही वर्णित है कि यह पुराण धर्मकथा, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला है इस ग्रंथ में गुप्त तथा गुप्तोत्तर काल से 9वीं शताब्दी तक की सभ्यता और संस्कृति का

जीवंत चित्रण किया गया है। आचार्य जिनसेन ने मानव को केन्द्र बनाकर उसके समग्र विकास के लिये आदि तीर्थंकर ऋषभदेव व भरत चक्रवर्ती जैसे समाजशास्त्रीय नेताओं का चरित्र निबद्ध किया है।

पुराण में सामाजिक मनोरंजन स्वरूप आभूषण, वस्त्र, खान–पान, सौन्दर्य प्रसाधन, श्रृंगार की जानकारी मिलती है। शारीरिक एवं मानसिक मनोरंजन हेतु क्रीड़ा खेल, गोष्ठी, उत्सव, गायन, वादन, नाटक आदि मनोरंजनात्मक तत्वों को मेरे द्वारा वर्गीकृत किया गया है। मनोरंजन के साधनों के साथ ही अजंता एवं एलोरा की मूर्तियों एवं चित्रों में कला के जिस शिल्प का दर्शन होता है उसका शब्दचित्र आदि पुराण में अंकित है, आदि पुराण में राष्ट्रकूट कालीन संस्कृति के दर्शन होते है।

2. आचार्य गुणभद्र(सन् 2006), उत्तरपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई–दिल्ली।

उत्तरपुराण में आचार्य गुणभद्र द्वारा द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ सहित 23 तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण तथा नौ प्रतिनारायण और जीवन्धर स्वामी कुछ विशिष्ट पुरूषों के कथनात्मक वर्णित है तथा तत्कालीन युग की सांस्कृतिक अवस्था की झलक पुराण के प्रत्येक पर्व में समाहित है। इस पुराण में मनोरंजनात्मक तत्व यत्र– तत्र बिखरे पडे है।

3. आचार्य रविषेण (सन् 2006), पदमपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई–दिल्ली।

रविषेण आचार्य द्वारा लिखित पद्मपुराण या पद्मचरित संस्कृत भाषा के जैन पुराणों में सर्वप्राचीन ग्रंथ है। पद्मपुराण से आशय रामचरित, रामकथा या रामायण का होता हैं इस ग्रंथ की रचना रविषेण आचार्य ने 734 विक्रम संवत् 667 ईं में पूर्ण की। इसमें सात महाधिकार, 123 पर्व व 1800 श्लोक है पद्मपुराण के रचनाकाल की ऐतिहासिक प्रामाणिकता का आधार इससे लगता है कि उद्योतनसूरि द्वारा रचित कुवलयमाला को 700 शकसंवत् या वि. संवत् 834 में पूर्ण किया गया जिसमें रविषेण आचार्य की रचना पद्मपुराण का भी उल्लेख है। पद्मचरित में रामायण की असम्भव प्रतीत होने वाली घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या की गई है।

प्राचीन काल के सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी तथा रामकथा विषयक अनेक जैन अजैन धाराओं का तुलनात्मक विवेचन करने के लिये रविषेण आचार्य द्वारा लिखित पद्मपुराण से छठीं, सातवीं शताब्दी के आस–पास की भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा जनजीवन से सम्बन्धित अनेक तथ्यों की जानकारी मिलती है। पद्मपुराण में जनजीवन में आमोद– प्रमोद के विभिन्न प्रसंग मिलते है। आभूषण, वस्त्राभूषण सौंदर्य.प्रसाधन आदि सामाजिक मनोरंजन का इसमें भरपूर वर्णन है। मनोरंजन के अन्य विविध रूपों जैसे झूला, गोष्ठियाँ, आखेट, क्रीडा, युद्ध महोत्सव, विवाह, राजकीय उत्सव, पंचकल्याणक महोत्सव, आध्यात्मिक महोत्सव, पर्वतारोहण, बंसतोत्सव, शालभंजिकाओं का वर्णन इस पुराण से मनोरंजनात्मक रूप में मैने प्राप्त किया है।

4. **आचार्य जिनसेन द्वितीय रचित हरिवंशपुराणः आचार्य जिनसेन, ग्यारहवाँ संस्करण 2008, हरिवंशपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003**

यह पुराण महाभारत की कथा पर आधारित है। ये जिनसेन आचार्य आदिपुराण के रचयिता जिनसेन से प्रथक् है। हरिवंशपुराण की तिथि शक संवत् 705 (783 ई) मानी गयी है। इस पुराण में मुख्यतः 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र लेखन है। नेमिनाथ के साथ श्रीकृष्ण एवं राम का भी ऐतिहासिक वर्णन किया गया है। पाण्डवों, कौरवों के चरित्र की अभिव्यक्ति बहुत सुंदरता से की गई है। हरिवंश पुराण में विभिन्न गोष्ठियाँ, 64 कलाओं में से अधिकांश देखने को मिलती है। मनोरंजन के विभिन्न स्वरूपों शारीरिक, मानसिक, एवं सामाजिक कई तथ्य इस पुराण में भरे पडे है।

5. **देवी प्रसाद मिश्र, जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन, हिन्दुस्तान एकडेमी, इलाहाबाद**

इसमें महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंश पुराण के सांस्कृतिक तत्वों पर गहन शोध परक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। एवं मनोरंजन के विषय में अध्याय दिया गया है।

6. मन्मथ राय, प्राचीन भारतीय मनोरंजन, इलाहाबाद

इसमें सिंधु सभ्यता से गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल तक के मनोरंजन के साधनों को समकालीन ग्रंथो एवं पुरातात्त्विक तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

7. नाथुराम जी प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास–,बम्बई

इस पुस्तक में 7वीं से 10वीं शताब्दी में रचित जैन पुराणों के लेखकों के वंशक्रम, ऐतिहासिकता प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक से मुझे जैन पुराणों का क्रमिक विकास के कुछ अंश प्राप्त हुए है। हरिवंश पुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन द्वितीय की ऐतिहासिकता एवं पद्‌मपुराण के रचयिता आचार्य रविषेण का वंशक्रम दिया गया है।

8. डॉ बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, वाराणसी

इस पुस्तक में पुराणों का अर्थ, इतिहास का वर्णन है। पुराणों का क्रमिक विकास तथा जैनेतर पुराणों की ऐतिहासिकता का विवेचन दिया गया है।

9. डॉ. प्रेमचन्द हरिवंशपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, जैन विद्या अकादमी, महावीर जी

इसमें हरिवंश पुराण की ऐतिहासिकता तथा मनोरंजन के तत्वों का वर्णन है जिनका अध्ययन प्रस्तुत शोध कार्य में सहायक है।

10. डॉ नेमिचन्द, आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी

इस पुस्तक में आदिपुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन का वंशक्रम प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने वाला यह अमूल्य ग्रंथ है।

11. डॉ. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ,दिल्ली

इस ग्रंथ में प्राचीन भारत में प्रचलित संगीत वाद्यों की शोधपूर्ण विवेचना की गई है। प्रत्येक वाद्य का स्वरूप, महत्त्व, प्रचलन की शैलियों का विस्तार से वर्णन किया गया। पुराणों मे मानसिक मनोरंजनार्थ संगीत के विभिन्न वाद्यों का वर्णन इसमें मिलता है।

12. डॉ. रमेशचंद जैन, पद्मचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति, जैन महासभा

इस पुस्तक में पद्मपुराण के रचयिता का वर्णन, ऐतिहासिकता, वंशक्रम तथा सांस्कृतिक, सामाजिक, मनोरंजन, कला, आर्थिक, राजनीतिक पक्षों पर ध्यान केन्द्रित किया है।

13. डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

इस पुस्तक में आठ उच्छवास है। वासुदेव शरण जी ने इस पुस्तक में चित्र फलकों को प्रस्तुत किया है जो आभूषण, वेशभूषा, सौन्दर्य प्रसाधन, नृत्य, संगीत, गायन, वादन तथा विभिन्न मनोरंजन के साधनों को प्रदर्शित करते हैं।

14. डॉ जगदीशचन्द्र जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी 1965

इसमें पुराण एवं समकालीन साहित्यों के आधार पर क्रीड़ा विनोदों, आमोद–प्रमोद के साधनों, खेल खिलौनों की जानकारी मिलती हैं।

15. डॉ. कमलेश कुमार जैन 'श्रमण,' (सन् 2009), पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

इस शोध पत्रिका के माध्यम से जैनदर्शन में लोक व्यवस्था अथवा विश्व व्यवस्था को लेकर तत्व पदार्थ और द्रव्यों को लेकर इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसे आध्यात्मिकता से जोड़ते हुए इसे धर्म और दर्शन के रुप में प्रगट किया हैं।

16. राममूर्ति चौधरी, हरिवंश पुराणः एक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी

आचार्य जिनसेन द्वितीय द्वारा रचित हरिवंश पुराण मे महाभारत का वर्णन करते हुये डा. राममूर्ति चौधरी ने अपने शोध ग्रन्थ में ऐतिहासिक, सास्कृतिक, सामाजिक शिक्षा का उपयोग किया गया है स्थपत्य एवं कला अध्याय में वर्णित मनोरंजनात्मक प्रारुप शोध क्षेत्र में नयी संभावनाओं को जोड़ने मे सहायक है।

17. डॉ. हीरालाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल

इस पुस्तक में जैन धर्म का उद्‌गम एवं विकास के साथ ही प्रथमानुयोग साहित्य का भी वर्णन किया गया है। जैन कला में चित्रकला माध्यम से मनोरंजनात्मक झलक को उभारा गया है। समवायांग सूत्र में उल्लिखित 72 कलाओं की सूची का भी इस पुस्तक में वर्णन है।

18. डॉ. कुमुद गिरि, जैन महापुराण कलापरक अध्ययन, पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी

इस पुस्तक में महापुराण की कलापरक सामग्री का अध्ययन किया गया है। ग्रन्थ में वर्णित लोक कला के विविध आयामों,नृत्य,संगीत,वाद्य आदि से सम्बन्धित सामग्री का प्रस्तुत शोध में यथासंभव उपयोग हुआ है।

19. पं. रतनचन्द भारिल्ल,शलाका पुरुष (भाग–1 एवं भाग–2), जयपुर

इस ग्रन्थ की मूल विषयवस्तु आचार्य जिनसेन कृत आदिपुराण पर आधारित है। तीर्थंकर ऋषभदेव,भरत बाहुबली का प्रभावी चरित्र चित्रण यहां मिलता है। शलाका पुरुषों के सामाजिक जीवन के रहस्य मेरे शोध ग्रन्थ में उपयोगी हुए है।

20. डॉ. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, दिल्ली

इस पुस्तक में वैदिक,उत्तर वैदिक,मौर्य,गुप्त,गप्तोत्तर काल की वेशभूषा का उल्लेख मिलता है। सुन्दर व सुसज्जित वेशभूषा व्यक्तित्व में चार चाँद लगाती

है। इसी मनोज्ञ वेशभूषा का सामाजिक मनोरंजन के क्षेत्र में वर्णन किया गया है।

21. के. वासुदेव शास्त्री, संगीत शास्त्र, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश

मनोरंजन के साधन में संगीत का अप्रतिम योगदान है। संगीत के बिना मनोरंजन का क्षेत्र अधूरा है। इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण संगीतशास्त्र का विवेचन किया गया है। जिसका तुलनात्मक उपयोग शोध में सहयोगी रहा है।

22. कैलाशचन्द्र, जैन साहित्य का इतिहास (पूर्व पीठिका), वाराणसी

इस पुस्तक में जैन साहित्य का निर्माण जिस पृष्ठभूमि में हुआ उसका चित्रण मिलता है जैन धर्म व जैन साहित्य का प्राग् इतिहास मेरे शोध ग्रन्थ का महत्वपूर्ण विषय है।

23. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पुराण परिशीलन, पटना

जैनेतर पुराण साहित्य का सम्पूर्ण विवेचन इस पुस्तक में हैं। पुराणों के नाम, लक्षण,विषय एवं पुराणों में वर्णित तत्कालीन समय की सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति में मनोरंजनात्मक तत्वों की चर्चा भी मिलती है।

24. गुलाब चन्द्र चौधरी, जैन साहित्य का वृहद इतिहास, वाराणसी

इस ग्रन्थ में चारों अनुयोगों का विवरण है। प्रथमानुयोग में वर्णित महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंश पुराण की एतिहासिक पृष्ठभूमि उल्लेखनीय है।

25. श्रीचन्द्र जैन, जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, जयपुर

इस ग्रन्थ में जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मानव को मनोरंजन के साथ जीवनोत्थान की प्रेरणा इन कथाओं से सहज ही प्राप्त हो जाती है।

26. आचार्य दामनन्दी, पुराणसार संग्रह, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

जैन परम्परा में वर्णित चौबीस तीर्थंकरों के चरित्र के वर्णन इस ग्रन्थ में हुआ है। कथाओं उपकथाओं में मनोरंजन के तत्वों की झलक मिलती है।

27. गायत्री वर्मा, कालिदास के ग्रन्थों पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति, वाराणसी

कालिदास के रचित साहित्य गुप्त काल की छवि को प्रस्तुत करते है। कुमारसंभव, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम् में वर्णित मनोरंजन के साधनो को यहां गवेषित किया गया है।

28. मुनि प्रमाण सागर, जैन तत्त्व विद्या, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

इस ग्रन्थ में चारों अनुयोगो का क्रमबद्ध विवेचन किया गया है। चौदह कुलकर,चौबीस तीर्थंकर,बारह चक्रवर्ती,नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण,नौ बलभद्र आदि के सामान्य परिचय के साथ उनके जीवन की विशिष्टताओं का निरुपण वर्णित है।

29. पी.एल.वैद्य, जैन पुराणों का कलात्मक अध्ययन

इस पुस्तक में जैन पुराणों के मनोरंजनात्मक तत्वों के कुछ अंश प्राप्त हुये है। आभूषण, नृत्य, वादन से सम्बन्धित पुराण आधारित तथ्य प्राप्त किये गये है।

अन्य स्रोत एवं सामग्री :जैन संस्कृत पुराणों के अतिरिक्त विविध स्रोतों से हमें प्राचीन भारतीय मनोरंजन की जानकारी उपलब्ध होती है। इसके अन्तर्गत अनेक प्राचीन ग्रन्थ निम्नवत् उल्लेखनीय है।

ब्राह्मण साहित्य के अन्तर्गत चतुर्वेद – ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद

स्मृतियाँ (धर्मशास्त्र) : मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, नारद, बृहस्पति, पाराशर आदि स्मृतियों में मनोरंजनात्मक विचार दृष्टिगोचर होते हैं एवं इन स्मृतियों के भाष्य

यथा—मनुस्मृति पर मेघातिथि, गोविन्दराज, एवं याज्ञवल्क्य स्मृति पर विश्वरुप, विज्ञानेश्वर, अपरार्क में मनोरंजन के विविध प्रारुपों का उल्लेख है।

महाकाव्य : वाल्मीकि ने रामायण और वेदव्यास ने महाभारत लिखकर तत्कालीन भारत की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थिति को बोधगम्य बना दिया। जनसाधारण में इन कथाओं की लोकप्रियता को देखकर विभिन्न जैनाचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में इनके पात्रों के माध्यम से जटिल जैन दर्शन को सरल रूप में प्रस्तुत किया। रामायण एवं महाभारत के माध्यम से तत्कालीन सांस्कृतिक, सामाजिक व्यवस्था की जानकारी मिलती है। रामायण व महाभारत में तत्कालीन समय में प्रचलित मनोरंजन के साधन के रुप में वर्णित खेलकूद, उत्सव, गोष्ठी, कथा, संगीत, नृत्य, नाटक, गायन, वादन, चित्र आदि का उल्लेख मिलता है।

पुराणसाहित्य में ब्राह्मण, पद्म ,विष्णु, भागवत्, अग्नि, भविष्य, लिंग, ब्रह्मवैवर्त, वाराह, स्कन्द, वामन, कुर्म, मत्स्य, गरुण आदि उल्लेंखनीय है।

अन्य जैन साहित्य : जैन अंग और सूत्रों में अनेक उपयोगी सामग्री मिलती है। जैन साहित्य में प्राचीन भारत के कुछ ऐसे तथ्य उजागर होते है जिनकी ब्राह्मण अथवा बौद्ध साहित्य में या तो चर्चा ही नहीं की गई है या उनका वर्णन नहीं के बराबर है। जटासिंहनन्दि कृत वरांगचरित, आचार्य वीरनन्दी कृत चन्द्रप्रभ चरित, परिशिष्ट—पर्वन, भद्रबाहुचरित, पुण्याश्रव कथाकोष, आचारांग सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र आदि में समाज में प्रचलित विभिन्न मनोरंजन के साधनो का उल्लेख है।

बौद्ध साहित्य :प्राचीन भारतीय समाज में प्रचलित मनोरंजनात्मक प्रथाओं के अध्ययन के प्रसंग में अनेक प्रमुख बौद्ध साहित्य त्रिपिटक (सुत्तपिटक, अभिधम्म पिटक और विनयपिटक) मिलिन्दपन्हो, दीपवंश, महावंश, दिव्यावदान,

ललितविस्तर, महावस्तु, मंजुश्रीमूलकल्प, माध्यमिकासूत्र, बुद्धचरित आदि विवेचनीय है।

प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन के विषय में अन्य प्रमुख ग्रन्थों के अन्तर्गत, क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामंजरी, सोमदेव कृत कथासरित्सागर आदि का अध्ययन स्त्रोत के रुप में प्रमुख स्थान है। इसी प्रकार इस प्रसंग में कतिपय ऐतिहासिक कृतियाँ भी अध्ययन स्त्रोत के रुप में उल्लेखनीय है।, जैसे वात्स्यायन कृत कामसूत्र, कल्हण कत राजतरंगिणी, बाणभट्ट कृत हर्षचरित्र, वाक्पतिराज कृत गौडवहो, विल्हणकृत विक्रमांकदेवचरित, जयानक कृत पृथ्वीराजविजय आदि। इसकें अतिरिक्त प्राचीन भारतीय इतिहास के आधुनिक विद्वानों ने भी मनोरंजन के साधनो पर प्रकाश डाला है। ऐसे प्रमुख इतिहासकारों के अन्तर्गत डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, राधाकुमुद मुखर्जी, मोतीचन्द्र, वासुदेव शरण अग्रवाल आदि की कृतियाँ विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। इनसे शोध की दिशा में महत्वपूर्ण निर्देशन एवं मौखिक ज्ञान उपलब्ध हुआ है।

मनोरंजनात्मक प्रवृत्तियों एवं पहलुओं का सम्यकपूर्ण अध्ययन करने एवं विभिन्न स्त्रोतों से उपलब्ध तथ्यों का विवेचनात्मक, तुलनात्मक, आलोचनात्मक एवं समीक्षात्मक व्याख्या करने के लिए आवश्यकतानुसार आलोचित (7 वीं से 10 वीं शती) जैन ग्रन्थों (महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंश पुराण) के अतिरिक्त अन्य जैन पुराणों ,पत्र–पत्रिकाओं एवं अन्य शोध निबन्धों आदि के अनुशीलन से पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकी है।

अध्याय–द्वितीय

पुराणों का उद्भव एवं विकास

2.1 पुराण : अर्थ एवं पर्याय

2.2 पुराण व्याख्या : जैन दृष्टिकोण

2.3 जैन पुराणों की उद्भव प्रक्रिया

द्वितीय अध्याय

पुराण : अर्थ एवं पर्याय :

संस्कृत साहित्य मे पुराण शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है। अथर्ववेद के सायण भाष्य मतानुसार – **पुराणं पुरातन वृत्तांत कथन रूपमाख्या नम्।**[1] साधारण तौर पर पुराण का अर्थ है पुराना, अतः प्राचीन काल में जो विद्यमान था, वह पुराण है। पुराण शब्द की उत्पत्ति को पाणिनी यास्क ने तथा पुराणों में भी बतलाया गया है। शब्दकोषों तथा निघण्टु में भी इस शब्द के अर्थ मिलते है। ऋग्वेद में पुराण शब्द तेरह बार मिलता है, यहाँ पुराण शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में है एवं उसका अर्थ प्राचीन, पुरातन के रूप में लिया गया है।[2]

पुराण शब्द दो शब्दों से संयुक्त होकर बना है ''पुराभवम्'' का अर्थ पुरानी घटनाओं से है इसमें ''पुरा'' अव्यय पद है। इसका अर्थ अत्यन्त प्राचीनता से लिया गया है। ''भवम्'' इस अर्थ में 'व्यु' प्रत्यय लगाने पर पुराण शब्द की व्युत्पत्ति होती है। व्याकरण की इस व्युत्पत्ति से स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीन काल में जो भी कुछ हुआ उसे पुराण कहा जाता है।[3] निरूक्तकार आचार्य यास्क के मतानुसार 'पुराण' शब्द की व्युत्पत्ति **'पुराण' पुरानवं भवति,**[4] अर्थात् जो प्राचीन काल में नया था अथवा प्राचीन होकर भी नवीन होता है। यहाँ आचार्य ने 'पुरा' अव्यय को पूर्व में रखकर 'नु' धातु से पुराण शब्द की निष्पत्ति की है। मूलतः प्राचीन होने पर भी कालान्तर में उत्पन्न परिवर्तनों को यह अपने में आत्मसात कर लेता है।

वायुपुराण के अनुसार 'पुरा' अनति अर्थात् प्राचीनकाल में जो जीवित था 'अन' धातु जीवित होना के अर्थ में प्रयुक्त हुई है।[5] महाभारत भी आदिपर्व में 'पुराण' शब्द को घोषित करता है।[6] पद्मपुराण में कहा गया है कि जो प्राचीन अर्थात् परम्परा की कामना करता है, वह पुराण कहलाता है। पुरा परम्परां वाष्टिं **पुराणं तेन तत् स्मृतम्।**[7] यहाँ पुरातन परम्परा से ही अभिप्राय प्रतीत होता है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार 'पुरा एतत् अभूत'। इसका अर्थ है कि यह पुराण

प्राचीनकाल में हुआ था और जो इसके निरूक्त जानता है, वह सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।[8]

पारम्परिक संस्कृत पुराणों के अतिरिक्त जैन–परम्परा में भी पुराणों की रचना हुई है चूँकि स्थान काल की दृष्टि से जैन पुराण गुप्तोत्तर काल के है लेकिन विषयवस्तु के दृष्टिकोण से इन्हें चिरपुरातन कहा जा सकता है, जैन पुराण प्राचीनतम जैन संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने के साथ ही भारतीय संस्कृति का सर्वागंपूर्ण व्यापक चित्र प्रस्तुत करते है।

पुराण व्याख्या : जैन दृष्टिकोण

आचार्य जिनसेन द्वारा रचित महापुराण की उत्थानिका में पुराण की व्याख्या कुछ इस तरह प्रस्तुत की गई है जो प्राचीन था वही पुराण है : **''पुरातनं पुराण स्यात्''**।[9] आदि पुराणमें आचार्य जिनसेन ने पुराण की परिभाषा के सम्बंध में लिखा है कि आदिनाथ भगवान पुराण थे अर्थात् प्राचीन इंतिहास के जानकार थे।[10] अतः पुराण को इति ह आस (आसीत्) अर्थात ऐसी बात हुई थी, इस प्रकार इतिहास कहना भी इष्ट है।[11] सुन्दर भाषा में वर्णित होने से पुराण को सुक्त, ऋषि प्रणीत होने से आर्ष तथा धर्म का उपदेष देने से धर्मशास्त्र भी माना गया है।[12] इस प्रकार प्राचीन आख्यानो को भी पुराण कहा गया है। पुराणों के संदर्भ में इतिवृत्त, ऐतिह्य, आम्नाय शब्दों का प्रयोग भी किया गया है।[13] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी उक्त विचार मिलते है।[14] आलोचित जैन पुराणों में इतिहास और पुराण के प्रसंग में कुछ विभिन्नताओं को दर्शाया गया है। वर्णित है कि इतिवृत्त केवल घटित घटनाओं का उल्लेख करता है परन्तु पुराण में घटना से प्राप्त फल का भी वर्णन मिलता है। इतिवृत्त में केवल वर्तमान कालिक घटनाओं का उल्लेख रहता है। अध्ययन से दृष्टव्य है कि जहाँ अन्य पुराणकारों ने इतिवृत्त की यथार्थता को सुरक्षित नहीं रखा है वहाँ जैन पुराणकारों ने इतिवृत्त की यथार्थता को अधिक सुरक्षित रखा है। जैन परम्परा में पुराण के दो प्रकार कहे गये है :– 1. पुराण और 2. महापुराण

1. **पुराण** : जिसमें एक शलाकापुरूष के चरित्र का वर्णन हो उसे पुराण कहते है।

2. **महापुराण** : जिसमें 63 शलाकापुरूषों के चरित्र वर्णित हों उसे महापुराण कहते है।[15] महापुराण में महान आचार्यों द्वारा महापुरूषों के विषय में उपदेश मिलता है यह उपदेश महाकल्याण कारी होता है।[16] महापुराण में वर्णित है कि ये पुराण आचार्यों द्वारा प्रणीत होने से प्रमाणभूत है।[17] पुराने कवि के आश्रय से प्रचलित हुई बात में ही पुरानापन आता है और इस बात के अपने महत्व से वहा महापुराण बन जाती है।[18] ऐसे महापुरूषों जिनके जीवन चरित्र से लोक कल्याण की भावना उदित होती है, जैन पुराणकारों ने ऐसे ही महापुरूषों को अपने पुराण का मुख्य नायक बनाया है, इसी संदर्भ में आचार्य रविषेण ने पद्मपुराण में कहा है कि मैं राम के चरित्र का वही वर्णन करता हूँ, जो विद्वानों की परम्परा से चला आ रहा है, क्योंकि विशिष्ट पुरूषों का चिंतवन ही पुण्य प्राप्ति का कारण है ऐसे महापुरूषों का कीर्तन करने से विज्ञान की वृद्धि होती है, यश का प्रस्फुरण एवं पाप का उन्मूलन होता है।[19] हरिवंश पुराण में आचार्य जिनसेन ने पुराण की व्याख्या के अन्तर्गत लिखा है कि पुराण की अन्तर्वस्तु पुरूषार्थ सिद्ध करने वाली हो। या पुरूषार्थ साधन में उत्साह वर्धक हो।[20] प्राचीन इतिहास के तत्वों को गवेषित करने में पुराणों की भूमिका सर्वोपरि है ऐसा इसलिए भी है क्योंकि पुराणों मे पूर्वकालीन महापुरूषों के चरित्रों के साथ ही समकालीन धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और कलापरक विषयों की भी विस्तारपूर्वक चर्चा मिलती है।

पुराणों की उद्भव प्रक्रिया :

पुराणों की उत्पत्ति प्रक्रिया के कई रोचक सिद्धान्त पुराणों और उप–पुराणों में प्राप्त होते है। वायुपुराण एवं विष्णुपुराण में वर्णित है कि महर्षि वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्पशुद्धि के साथ पुराण संहिता की रचना की।[21] महर्षि वेद व्यास ने केवल एक पुराणसंहिता की रचना की। उस एक से रोमहर्षण के तीन शिष्यों ने तीन संहिता का निर्माण किया इस प्रकार

रोमहर्षण की संहिता से मिलाकर कुल चार पुराण की रचना हुई। इन्ही चारों पुराणों से समस्त 18 पुराणों की रचना हुई।

जैनाचार्यो के कथनानुसार जैन पुराणों का उद्‌भव प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से हुआ है। महापुराण में वर्णित है कि उत्सर्पिणी,अवसर्पिणी एवं तृतीय काल में ऋषभदेव ने जिस इतिवृत्त का वर्णन किया, वृषभसेन गणधर ने उसे ही पुराण रूप प्रदान किया। वही पुराण अजितनाथ आदि तीर्थंकरों, गणधरों तथा बड़े–बड़े ऋषियों द्वारा प्रकाशित किया गया। चतुर्थ काल में अन्तिम तीर्थंकर महावीर द्वारा उपदिष्ट वाणी को उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर ने बारह अंगों में गूँथा अतः जैन ग्रंथों के मूलकर्त्ता श्री वर्धमान तीर्थंकर है तथा उनके बाद उत्तर तंत्र के कर्त्ता गौतम गणधर रहे।[22] और उनके अनन्तर उतरोत्तर तंत्र के कर्त्ता कम से अनेक आचार्य हुए है। पुराणों से दी गई आचार्य परम्परा के अनुसार श्रीवर्धमानजिनैन्द्र के मुख से श्री इन्द्रभूति (गौतम) गणधर ने श्रुत को धारण किया उनसे सुधर्माचार्य ने और उनसे जम्बू नामक अंतिम केवली ने धारण किया उनके बाद कम से पाँच श्रुतकेवली हुएः– **1. विष्णु 2. नन्दिमित्र 3. अपराजित, 4. गोवर्धन 5. भद्रबाहु।** ये श्रुतकेवली 11 अंग और 14 पूर्व के धारी थे। इनके बाद 11 अंग और 10 पूर्व के जानने वाले 11 मुनि हुए जिनका काल 184 वर्ष का रहाः–1. विशाख, 2. प्रोष्ठिल, 3. क्षत्रिय, 4. जय, 5. नाग, 6. सिद्धार्थ, 7. घ्रतिषेण, 8. विजय, 9. वुद्धिल, 10. गंगदेव, 11, धर्मसेन तदनन्तर 11 अंग के धारक पाँच महातपस्वीः 1.नक्षत्र, 2. यशः–पाल, 3. पाण्डु, 4. ध्रुवसेन और 5. कंसाचार्य मुनि हुए। इनका समय 220 वर्ष माना जाता है। इसके बाद सुभद्र, यशोभद्र भद्रबाहु और लोहाचार्य। ये चार आचार्य आचारांग के धारक हुए इनका समय 18 वर्ष का माना जाता है। इस समय पुराण का एक–चौथाई भाग ही प्रचलित होगा अतः वर्धमान स्वामी के मोक्ष जाने के 683 वर्ष बाद यह पुराण कम–कम से थोड़ा घटता जाएगा।[23] इनके बाद महातपस्वी विनयंधर, गुप्तश्रुति, गुप्तऋषि, मुनीष्वर शिवगुप्त, अर्हद्‌बलि, मन्दरार्य, मित्रविरवि, बलदेव, मित्रक, सिंह बल, वीरवित, पद्मसेन, व्याघ्रहस्त्त, नागहस्ती, जितदण्ड, नन्दिषेण, दीपसेन, घरसेन, धर्मसेन, सिंहसेन, नन्दिषेण, ईष्वरसेन, नन्दिषेण, अभयसेन, सिद्धसेन,

अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शांतिषेण, जयसेन, अमितसेन, कीर्तिषेण और जिनसेन तक की आचार्य परम्परा पुराणों में मिलती है।[24] उक्त आचार्यो के द्वारा भगवान महावीर के उपदेश द्वादशांग आगम के रूप में उत्तरोत्तर प्रवाहित होते रहे। इन्ही 12 वें अंग दृष्टिवाद के अवान्तर भेद अनुयोग या प्रथमानुयोग का विषय तीर्थंकर आदि महापुरूषों के चरित्र एवं अन्य आख्यान थे।[25]

कषायपाहुड़ के अनुसार प्रथमानुयोग पाँच हजार पदों के द्वारा चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण तथा नौ प्रतिनारायणों के पुराणों का तथा जिन, विद्याधर, चक्रवर्ती, चारणमुनि और राजा आदि के वंशों का निरूपण करता है।[26] षट्खण्डागम की धवलाटीका के अनुसार बारह प्रकार का पुराण वर्णित है जिसमें अरहंतो, चक्रवर्तियों, विद्याधरों, वासुदेवों, चारणों, प्रज्ञाश्रमणों, कौरवों, इक्ष्वाकुओं, काषिको और वादियों के वेशों का तथा हरिवंश एवं नागवंश का वर्णन सम्मिलित था।[27] दिगम्बर परम्परा में तीर्थंकर आदि के चरित्र के तथ्यों का प्राचीन संकलन प्राकृत भाषा के तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में मिलता है। इसके चौथे महाधिकार में तीर्थंकरों की जन्मतिथियाँ और जन्मनक्षत्र, उनके वंशो का निर्देश, जन्मान्तराल, आयु–प्रमाण, कुमार काल, उत्सेध, शरीर का वर्ण, राज्यकाल चिन्ह्, राज्य पद, वैराग्यकारणभावना, दीक्षा स्थान, तिथि, काल व नक्षत्र और वन तथा उपवासों के नाम, पारणा, कुमार काल में दीक्षा ली या राज्य काल में, दान में पंचाश्चर्य होना, छद्मस्थ काल, केवल ज्ञान की तिथि, नक्षत्र स्थान, केवल ज्ञान की उत्पत्ति का अन्तर काल, केवल ज्ञान होने पर अन्तरिक्ष हो जाना, केवलज्ञान के समय इन्द्रादि के कार्य, समवशरण का सांगोपांग वर्णन, किस तीर्थंकर का समवशरण, कितना बडा या, समवशरण में कौन नही जाते, केवलज्ञान के वृक्ष, आठ प्रातिहार्य, यक्ष, यक्षिणी, केवलकाल, केवलज्ञानी, विक्रियाऋद्धिधारी, वादी, आदि की संख्या, आर्यिकाओं की संख्या, प्रमुख आर्यिकाओं के नाम, श्रावक संख्या, श्राविका संख्या, निर्वाण तिथि, नक्षत्र, स्थान का नाम, अकेले निर्वाण गये या मुनियों के साथ, योग निरोध का काल, मोक्ष का आसन, अनुबद्धकेवली, उन शिष्यों की संख्या जो अनुत्तर विमान गए, मोक्षगामी मुनियों की संख्या, स्वर्गगामी शिष्यों की संख्या, तीर्थंकरों के मोक्ष का अंतर,

तीर्थप्रर्वतन, 11 रूद्र, 9 नारद, 24 कामदेव, दु:षमा काल, अनुबद्ध केवली, 14 पूर्वधारी, 10 पूर्वधारी, 11 अंगधारी, आचारांग के धारक, शकराजा की उत्पत्ति, उसके वंश का राज्यकाल, गुप्तों और चतुर्मुख के राज्यकाल तक महावीर के निर्वाण से 1000 वर्ष तक की परम्परा का वृतांत दिया गया है।[28] इन्हीं तथ्यों के आधार पर विभिन्न पुराणकारों द्वारा पुराणों का लेखन कार्य किया गया। स्वामी समंतभद्र कृत स्वयंभूस्तोत्र में चौबीस तीर्थंकरों के जीवन–चरित्र के अनेक प्रसंग वर्णित है। पुराणकारों ने इसे भी आधार स्त्रोत बनाया है।[29]

जैन पुराणों का समय गुप्तोत्तर काल है वास्तव में कोई भी ग्रंथकार अपने युग के वातावरण से अप्रभावित नहीं रह सकता। प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने पर पता लगता है कि गुप्तोत्तर काल राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विषमताओं से घिरा था। जैन धर्म को इस समय तत्कालीन शासक वर्ण से संरक्षण मिला हुआ था।

दक्षिण भारत के मध्यकालीन राजवंशों जैसे गंग, कदम्ब, चालुक्य (बादामी, एहोल) राष्ट्रकूट तथा होयसल तथा उनके अधीनस्थ सामंतो, मंत्रियों व सेनापतियों ने जैन धर्म को पल्लवित करने में अपना योगदान दिया।[30] दक्षिण भारत में इस समय ब्राह्मण और जैन धर्मो के मध्य संघर्षपूर्ण स्थिति कायम थी। विभिन्न धर्मों मे परस्पर आदान–प्रदान और सम्मिश्रण अधिक बढ़ रहा था। जैनो के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव व बौद्धों के भगवान बुद्ध को ब्राह्मण धर्म के अवतार माना गया था।

इस समय वेदों के स्थान पर पुराणों का महत्व बढ़ गया था। इन पुराणों में जैन धर्म के कई तत्वों का वैदिक परम्परानुसार समावेश किया गया था। विष्णुपुराण के अनुसार कंक, कौकण, वेंकट, कूठक, दक्षिणी कर्नाटक, प्रायद्वीप के पश्चिमी भाग में ऋषभ के अनुयायी नग्न अर्हत् रहते थे इनको ब्राह्यण धर्म के विनाशक सिद्ध करते हुए जैन धर्म के प्रवर्त्तक भी मायामोह को घोषित किया है।[31] जिसकी पुष्टि अन्य कहीं नहीं मिलती, वही वैदिक परम्परा के अग्नि पुराण में जैन धर्म की स्थापना के सम्बंध में उल्लिखित है कि बुद्ध भगवान ने जैन बनकर जैन मत को चलाया।[32]

शिवपुराण के कथानकों के अनुसार ऋषि के दिए गए उपदेश के आधार पर उसे जैन मत का माना गया है।[33] लेकिन उपदेश में बौद्ध, चार्वाक तथा जैन धर्म को सिद्वान्तों का मिला–जुला रूप वर्णित है। इसी प्रकार कूर्मपुराण में लिखा है कि वृद्धश्रावक, जैनगृहस्थ, निर्ग्रन्थ जैन साधु– पांचरात्र, कापालिक, पाशुपत तथा इसी प्रकार के अन्य पाखण्डी लोग, ये दुरात्मा तामसी प्रकृति वाले जिसके घर में श्राद्ध का भोजन करते है उसका वह श्राद्ध न इस लोक में और न परलोक में ही सुख को देने वाला होता है।[34] स्कंदपुराण[35], मत्स्यपुराण[36] में भी जैन मत सम्बन्धित विपरीत कथनों का विवरण पाया गया है। अतः ऐसे समय यह जरूरी हो गया था कि जैन धर्म की वास्तविकता से जनमानस परिचित हो यही कारण है कि जैन आचार्यो ने वैदिक परम्परा की तरह 'पुराण' नाम वाले ग्रंथों का लेखन किया। तत्कालीन भारतीय समाज में रामायण और महाभारत के पात्र–राम, लक्ष्मण, सीता और कौरव, पाण्डव, कृष्ण, बलराम आदि समाज में लोकप्रिय थे। जैन पुराणों के रचना काल के समय पारम्परिक पुराणों का समाज में उच्च स्थान था तथा वे अपनी पूर्णता के अन्तिम दौर में थे। इस समय जैनाचार्यों ने जैन धर्म को लोकप्रिय बनाने तथा सर्वसाधारण में इसे प्रचलित करने के उद्देश्य से रामायण एवं महाभारत की कथावस्तु एवं पात्रों को लेकर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्रादेशिक भाषाओं में पुराणों की रचना की। इन ग्रन्थ रचनाओं को दिगम्बर सम्प्रदाय पुराण तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय चरित्र या चरित से अभिहित करते है।[37]

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि अन्य धर्म के देवरूप माने जाने वाले पुरूषों को जैन धर्म में क्यों और कैसे मान्यता प्राप्त हुई। वास्तव में जैन धर्म में वीरों की पूजा की जाती है। ये वीर अहिंसा, तप, त्याग, ज्ञान एवं वैराग्य के पथ पर चलकर जनकल्याण व धर्म का मार्ग प्रशस्त करते है। ये वीर असाधारण पराक्रम द्वारा विविध आदर्श उपस्थित करते है। दिग्विजय तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके शासन व्यवस्था को सुव्यवस्थित करते है। इन वीरों में चौबीस तीर्थंकरो, बारह चक्रवर्तियों, 9 बलभद्र, 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण को निर्दिष्ट किया गया है। इन्ही लोकोत्तर वीर पुरूषों में राम व कृष्ण भी क्रमशः अष्टम बलभद्र व

अष्टम नारायण है। अतः इनकी जैन पुराणों मे सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठा पायी जाती है।

जैनों ने अपनी साहित्य रचना में जनमानस का विशेष ध्यान रखा तथा आसानी से समझे जाने वाली भाषाएँ प्राकृत् अपभ्रंश में साहित्य रचना की। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय भाषाओं जैसे तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, गुजराती, राजस्थानी, मराठी, हिन्दी में भी ग्रंथो का सृजन किया गया।

जैनेतर धर्म में पुराणों तथा उपपुराणों का विभाग मिलता है वैसा विभाग जैनपुराणों में नही मिलता। जैन धर्म में जो भी पुराण साहित्य विद्यमान है वह अपने ढ़ंग का निराला है। जहाँ अन्य पुराणकार इतिवृत्त की यर्थाथता को सुरक्षित नहीं रख सके है, वहाँ जैन पुराणकारों ने इतिवृत्त की यथार्थता को अधिक सुरक्षित रखा है। इसलिए आज के निष्पक्ष विद्वानों का यह स्पष्टतः मत है कि हमे प्राक्कालीन भारतीय परिस्थिति को जानने के लिए जैन पुराणों एवं उनके कथा ग्रन्थों से जो साहाह्य उपलब्ध है वह अन्य पुराणों से नही। इतिहास का संचित भण्डार जैन पुराणों में मिलता है।[38]

पुराण वाङ्मय का भारत के प्राचीन साहित्य में विशिष्ट स्थान है। पुराणों में तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति की श्रेष्ठ झलक मिलती है। मनोरंजन के तत्व पुराणों में यत्र–तत्र बिखरे पड़े है। जिसको समेटने से एक सुन्दर दृष्य जीवंत हो उठता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अथर्ववेद, सायण भाष्य 11/4/9/24
2. ऋग्वेद 3/54/9,3/58/6, 10/130/6
3. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पुराण परिशीलन पृ. 67
4. निरूक्त, 3/19
5. यस्मान् पुरा हानक्तीदं पुराणं तेन तत् स्म्रतम्। निरूक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।।[18] वायुपुराण,1/203
6. महाभारत, आदि पर्व, 1/17
7. पद्म पुराण, 5/2/53
8. ब्रह्माण्ड पुराण, कृत्य समुद्देश्य 1/1/173
9. पुरातनं पुराणं स्यात् .... आदिपुराण 1/21
10. आदिपुराण, 14/18
11. वही, 1/25
12. ऋषिप्रणीत मार्ष स्यात् सूक्तं सूनृतशासनात्।
    धर्मानुशासनाच्चेदं धर्मशास्त्रमिति स्मृतम्।। आदिपुराण, 1/24।
13. इतिहास इतीष्टंतद् इतिहासीदिति श्रुतेः।
    इतिवृत्त मथैतिह्य माग्मायं चायनन्ति तत्।। आदिपुराण, 1/25।
14. अर्थशास्त्र, 5/13–14
15. आदिपुराण, 1/22–23, पाण्डवपुराण पृ. 9
16. वही, 1/21–23
17. पुराणऋषिभिः प्रोक्तं प्रमाणं सूक्तमांजसम्। आदिपुराण, 1/204
18. वही 1/22
19. पद्म पुराण 1/21–24
20. हरिवंशपुराण 1/70
21. विष्णु पुराण, 3/3/5
22. आदिपुराण, 1/201
23. वही, 2/137, हरिवंशपुराण 1/58–65, 66/22–24
24. हरिवंशपुराण, 66/25–29

25. षट्खण्डागम आदि भाग–1 प्र. 112
26. कषायपाहुड़, 1, प्र. 138
27. षट्खण्डागम खण्ड 1 भाग–1 धवलाटीका 1/12, पृष्ठ 113
28. तिलोयपणति चतुर्थ महाधिकार
29. सरसावाः स्वयंभू स्तोत्र 5, सं 19
30. गुलाब चन्द चौधरीः जैन साहित्य का वृहत इतिहास प्र. 8
31. एच.एच.विल्स्न–द विष्णुपुराण–ए सिस्टम ऑफ हिन्दू मैथोलोजी एण्ड ट्रेडीसन, कलकत्ता 1961, पृ.133 तथा 270–271
32. वक्षे बुद्धावतारं च पठतः श्ररणुतोऽर्थदम्।
पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः।।1।।
रक्ष रक्षेति शरणं वदन्तो जग्मुरीश्ररम्।
मायामोह स्वरूपोड सौ शुद्धोदन सुतोऽभवत्।। 2।।
मोहयामास दैत्यास्तान् त्याजता वेदधर्मकम्।
ते च बौद्धा वभूबुर्दितेभ्योऽन्ये वेद वर्जिताः।। 3।।
आर्हतः सोऽभवत्पश्चादार्हता न करोत्परान्।
एवं पाखण्डिनो जाता, वेद धर्मादिवर्जिताः।। 4।अग्नि पुराण अध्याय 49
33. शिव पुराण, रूद्रसंहिता 2 युद्ध खंड 5 अध्याय 4–5
34. वृद्ध श्रावका निर्ग्रन्थाः पंचरात्रविदोजनाः
कापालिकाः पाशुपता पाखण्डा येचतद्विधाः।। 32।।
यस्याश्रन्ति हवीष्येते दुरात्मा नस्तु तामसाः।
न तस्य तद्भवेच्छाद्वं, प्रेत्य वेह फलप्रदम्।। 33।।कूर्म पुराण, अध्याय 22
35. स्कंद पुराण–तृतीय ब्रह्माखण्ड, धर्मारण्य महात्स्य अध्याय 36–37–38
36. मत्स्य पुराण 24–28–48 आनन्दाश्रम सिरिझ
37. विन्टरनित्जः एहिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर भाग–2 नई दिल्ली 1971 प्र. 491/कैलाशऋषभचंद जैन : जैन पुराण साहित्य, श्री महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रंथ भाग 1 बम्बई 1968, पृ. 72
38. आदिपुराण, प्रस्तावना पृ. 8

अध्याय–तृतीय

जैन पुराणों का क्रमिक विकास व उनकी विषयवस्तु

3.1 जैन पुराणों का रचना काल

3.2 जैन पुराणों का क्रमिक विकास

3.3 महापुराण की विषयवस्तु

3.4 पद्मपुराण की विषयवस्तु

3.5 हरिवंश पुराण की विषयवस्तु

3.6 मनोरंजन के पौराणिक संदर्भ

तृतीय अध्याय

जैन पुराणों की रचना विभिन्न कालों में हुई है। जैन धर्म के प्रारम्भिक साहित्य प्राकृत में है। जनसामान्य की भाषा भी तत्कालीन समय में प्राकृत ही थी अतः जैनाचार्यों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए सर्वप्रथम जनसाधारण की बोलचाल की भाषा में ही जैन साहित्य का निर्माण किया। सामान्यतया पुराणों के रचनाकाल को लेकर दो प्रकार से प्रयास होता रहा है :

1. बर्हिसाक्ष्य :

किसी भी पुराण के संदर्भ में मुख्य ग्रंथ को छोड़कर अन्य स्त्रोतों से मिलने वाले प्रमाण इस कोटि के अन्तर्गत आते है। इसमें समकालीन या परवर्ती काल के किसी भी ग्रंथ, अभिलेख, स्त्रोत से किसी ग्रंथ के रचनाकाल, रचनाकार, विद्यमानता एवं प्रसार आदि की जानकारी की जाती है। जिनसेन के अनुसार वंरागचरित की रचना आचार्य जटासिंहनन्दि ने की थी। नवीं शती में जिनसेन की रचनाओं के आधार पर वरांग चरित्र के काल की जानकारी प्राप्त होती है अर्थात् यह रचना जिनसेन के पहले हुई होगी।

2. अन्तः साक्ष्य :

इस में मुख्य ग्रंथ के भीतर विद्यमान विशिष्टताओं के आधार पर ही कालक्रम को जानने का प्रयास होता है। अन्तिम प्रशस्ति पर्व में ग्रन्थ, ग्रंथकार, ग्रंथन वर्ष लिखा मिलता है उसके आधार पर रचना काल की जानकारी की जा सकती है।

पद्मपुराण के रचयिता आचार्य रविषेण ने ग्रंथ के अंत में रचना काल वि. सं. 733 लिखा है।[1] हरिवंशपुराण का रचनाकाल भी जिनसेनाचार्य ने ग्रंथ के अन्तिम सर्ग के 52 वे श्लोक में शक सं. 705 उल्लिखित किया है।[2]

हरिवंशपुराण में जिनसेन ने पूर्ववर्ती विद्वानों व उनकी रचनाओं का उल्लेख ग्रंथ में किया है।[3]

अतः विद्वानों का मत है कि जैन पुराणों के रचनाकाल तथा रचनाकारों के विषय में पर्याप्त जानकारी हो जाती है। जैनाचार्यो ने प्रारम्भ में प्राकृत में जैन पुराणों की रचना की है। प्राकृत (महाराष्ट्री) जैन पुराणों का रचनाकाल छठी शती से लेकर पन्द्रहवी शती तक है। प्राकृत के बाद जब संस्कृत भाषा का अधिक प्रभाव पड़ा तो जैन विद्वान इस क्षेत्र में भी पीछे नही रहे, संस्कृत पुराणों का समय सातवीं शती से अट्ठारहवी शती तक का है। इस समय बड़ी संख्या में संस्कृत में पुराणों का प्रणयन किया गया। इसके उपरान्त जब अपभ्रंश भाषा लोकप्रिय हो गयी तो जैनाचार्यो ने अपभ्रंश में रचना की। अपभ्रंश पुराणों की तिथि दसवीं शती से सोहलवीं शती है। पुराणों की रचना क्षेत्रीय भाषाओं में भी की गई है। इस प्रकार सभी जैन पुराणों का रचनाकाल लगभग छठी शती से अट्ठारहवीं शती तक निर्धारित किया गया है।[4] आलोचित जैनपुराणों, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, महापुराण की रचना तिथि सातवीं शती ई. से दसवी शती ई. के मध्य है। इसलिये प्रस्तुत शोध की सीमा सातवी शती ई. से दसवीं शती ई. है। जैन पुराणों का कालक्रमानुसार वर्णन निम्न प्रकार है।

प्रथमानुयोग साहित्यों में संस्कृत भाषा में रचित पुराणों मे पद्मपुराण का स्थान सर्वप्रथम है। इस ग्रंथ की रचना ई. सन् 677 में हुई। पद्मपुराण की तिथि के विषय में उक्तपुराण में ही वर्णित है कि महावीर निर्वाण के 1203 वर्ष 6 माह बाद पद्ममुनि का चरित्र निबद्व किया गया।[5] यदि महावीर निर्वाण से 470 वर्ष बाद वि. सं. माना जाए तो इसकी रचना वि.सं. 733 अर्थात् 677 ई. में हुई। पद्मपुराण में पद्म (राम) का जीवन चरित्र वर्णित है। इसमें रामायण की असम्भव प्रतीत होने वाली घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या की गयी है। राजा श्रेणिक द्वारा गौतम गणधर से रामकथा विषयक प्रश्न का उत्तर इस पुराण में वर्णित है। जैन धर्म में राम की 63 शलाका पुरूषों में गिनती की गई है। अतः राम के जीवन के असाधारण पराक्रम व अनगिनत आदर्शों के उदाहरण इस पुराण में उल्लिखित किए गए है।

अंत में राम के दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्ति का कथन मिलता है। रामकथा में अनेक अन्य कथान्तरो से पुराण की रोचकता बढ गयी है। पद्मपुराण में रामकथा को तर्कसंगत बनाने का प्रयत्न किया गया है। राम के असाधारण जीवन की घटनाओं को उजागर करना ही इस पुराण का उद्देश्य है। पद्मपुराण पर आधारित अन्य अनेक पुराणों की रचना हुई लेकिन उनका समय 10 वीं शताब्दी के बाद का है। ये रचनाएँ निम्न है[6]:

15–16 वीं शती में कवि रइधू द्वारा रचित अपभ्रंश भाषा का पद्मपुराण, 16 वीं शती में जिनदास ने, सं. 1656 में सोमदेव, सं. 1668 में धर्मकीर्ति, 17वी शती में भ. चन्द्रकीर्ति ने पद्मपुराण पर आधारित पुराणों की रचना की। इसके अतिरिक्त जिन रचनाओं का लेखन काल प्राप्त नहीं हो पाया वे निम्न है :– चन्द्रसागर एवं श्रीचन्द्र द्वारा रचित पद्मपुराण, भुवनतुंगसूरि द्वारा रचित सीता चरित्र व राम लक्ष्मण चरित्र, शुभवर्धनमणि द्वारा रचित पद्ममहाकाव्य, पद्मनाथ द्वारा रामचरित्र, प्रभाचन्द्र द्वारा पद्मपुराणपंजिका, रीतिसूरि, ब्रह्मनेमिदत्त, अमरदास द्वारा रचित सीता चरित्र मुख्य है। पद्मचरित के पश्चात् संस्कृत में दूसरी पौराणिक रचना वरांगचरित है। इसमें राजा वरांग का जीवन चरित्र वर्णित है जो नेमिनाथ के काल में हुए थे, यह जटासिंहनन्दि द्वारा रचित है। इसका समय 7 वीं शती निश्चित किया गया।[7]

पद्मपुराण के पश्चात् संस्कृत में दूसरी पौराणिक रचना हरिवंश पुराण है यह आचार्य जिनसेन कृत है। इसका रचना काल शकसं. 705 अर्थात् ई.सन. 783 का है। इस ग्रंथ के निर्माण के समय उत्तर भारत में इन्द्रायुध, दक्षिण में कृष्ण का पुत्र श्री वल्लभ, पूर्व में अवन्ति नृप तथा पश्चिम में वत्सराज एवं सौर मण्डल में वीर वराह राजाओं का राज्य था।[8] इसमें 66 सर्ग है जिसका कुल प्रमाण 12,000 श्लोक है। इस पुराण में बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र वर्णन है यही ग्रंथ का मुख्य विषय है। परन्तु प्रसंगोपात्त अन्य कथानक भी इसमें लिखे गये है। प्रारम्भ में शलाका पुरूषों का कीर्तन एवं तीन लोक व जीवादि द्रव्यों का वर्णन किया गया है। भगवान नेमिनाथ के साथ नारायण और बलभद्र पद के धारक श्रीकृष्ण एवं राम के भी आश्चर्यकारी चरित्र इसमें वर्णित है।

पाण्डवों एवं कौरवों के वर्णन ने इस ग्रंथ को अति रोचकता प्रदान की है। इस ग्रंथ में चारूदत्त तथा वसन्त सेना का वृतांत विस्तार से पाया जाता है संभव है मृच्छकटिकम् नाटक का आधार यही ग्रंथ रहा हो। नेमिनाथ के विवाह प्रसंग का बहुत कारूणिक चित्रण इस ग्रंथ में वर्णित है। हरिवंश पुराण पर आधारित ग्रंथों की भिन्न–भिन्न कालों में रचना हुई है जो निम्न प्रकार है[9] :

सकलकीर्ति (वि. सं 1450–1510) कृत हरिवंश पुराण 39 सर्गो में समाप्त हुआ है। इस पुराण में रविषेण तथा जिनसेन का उल्लेख है और उन्ही की कृतियों के आधार से यह ग्रंथ रचना हुई प्रतीत होती है। पाण्डव पुराण (सं. 1487) अपभ्रंश भाषा में लिखा गया आचार्य यशःकीर्ति द्वारा रचित है। हरिवंश नामाधारित अन्य रचनाएँ भी है जिनमें जिनसेन रचित हरिवंश पुराण का आधार लिया गया है। यशः कीर्ति –सं. 1507, जयानंद – सं. 1507, श्रुतकीर्ति –सं. 1552, कवि रइधू–15–16 वीं शती, कवि रामचन्द्र –सं. 1560 से पूर्व, श्री भूषण–सं. 1675, भ. धर्मकीर्ति –सं. 1671, जयसागर– सं.1671, जयानंद–सं. 1671, गंगरस–सं. 1671, स्वयंभूदेव–सं. 1671, चतुर्मुख देव–अनुपलब्ध। उक्त सभी लेखकों की रचनाएँ हरिवंश पुराण नामाधारित है। हरिवंश पुराण पर आधारित रचनाओं में यशःकीर्ति कृत पाण्डव पुराण भी उल्लिखित है। जिसका रचनाकाल सं. 1487 है। पाण्डव पुराण नामाधारित अन्य रचनाएँ कवि रामचन्द्र(सं. 1560 से पूर्व), शुभचन्द्र (1608ई) बादिचन्द्र (सं. 1654), श्री भूषण (सं. 1657) लेखकों की मिलती है। पाण्डव चरित्र नाम से भी हरिवंश पुराण आधारित रचनाएँ देवभद्र सूरि (सं. 1270),देवविजय गणि (सं.1660),शुभवर्धन मणि ही प्राप्य है।

देवप्रभसूरि कृत पाण्डव चरित्र में 18 सर्ग है और उनमें महाभारत के 18 पर्वो का कथानक संक्षेप में वर्णित है। छठे सर्ग में द्यूत कीड़ा का वर्णन है, और यहाँ विदूर द्वारा द्यूत के दुष्परिणाम के उदाहरण रूप नल–कूबर (नल–दमयन्ती) की कथा कही गई है।

जैन पुराण साहित्य में रचना काल आधारित चौथी रचना महापुराण है इसके दो भाग है आदि पुराण और दूसरा उत्तरपुराण। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित आदि पुराणमें 47 पर्व है जो समस्त 12,000 श्लोक प्रमाण है यह भी दो खण्डों में है प्रथम खण्ड में एक से पच्चीस तथा दूसरे खण्ड में छब्बीस से सैंतालिस पर्व है।

उत्तर पुराण में 48 से 73 पर्व है। आदि पुराण में 1 से 42 पर्व तथा 43 पर्व के तीन श्लोक जिनसेन तथा इसके बाद के चौथे श्लोक से 73 पर्व तक जिनसेन के शिष्य गुणभद्र द्वारा रचित है। महापुराण की तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नही है। फिर भी महापुराण के अध्ययन तथा तत्कालीन ग्रंथों के आधार पर इनकी रचना क्रमशः 9वीं एवं 10वीं शती में हुई थी। यह समस्त रचना शक संवत् 320 से पूर्व समाप्त हो चुकी थी। फिर भी इसमें प्राचीनतम समस्त पौराणिक परम्पराओं का समावेश मिलता है। अंतिम तीर्थंकर महावीर के जीवनचरित के साथ–साथ उनके समकालीन वैशाली के राजा चेटक, मगधनरेश श्रेणिक (बिम्बिसार) आदि पुरूषों के उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी है।

उक्त तथ्य तो आदिपुराण को ऐतिहासिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण सिद्ध करते है। इसमें जैन परम्परा में सर्व मान्य **63 शलाकापुरूष, चौबीस तीर्थंकर[10], बारह चक्रवर्ती[11], नौ बलदेव[12], नौ नारायण[13] तथा नौ प्रतिनारायण[14]** है। इनके नामोल्लेख पहले किए जा चुके है। इनके अतिरिक्त हुंडावसर्पिणी काल में अट्ठावन् शलाकापुरूष का उल्लेख है। नौ नारद (भीम, महाभीम, रूद्र, महारूद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरकमुख, अधोमुख)[15], बारह रूद्र (भीमावलि, जितशत्रु, रूद्र, वैश्वानर, सुप्रतिष्ठ, अचल, पुण्डरीक, अजितंधर, अजितनामि, पीठ, सात्यकिपुत्र, बल)[16], चौदह कुलकर (प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचन्द्र चन्द्राभ, मरूदेव, प्रसेनजित, नाभिराय)[17], चौबीस कामदेव (बाहुबलि आदि चौबीस कामदेवों का निर्देश मात्र हुआ है।)[18] इनको मिलाने से 169 शलाका पुरुषों या सत्पुरूषों का उल्लेख पुराण साहित्य में मिलता है।[19] आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ व भरत

चक्रवर्ती का ही वर्णन विस्तार से किया गया है। शेष शलाका पुरूषो का विवरण उत्तर पुराण में मिलता है।

आचार्य जिनसेन स्वामी ने जिस रीति से प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ और भरत चक्रवर्ती का वर्णन किया है यदि वह जीवित रहते और उसी रीति से अन्य कथानायकों का वर्णन करते तो यह महापुराण संसार के समस्त पुराण एवं काव्यों से महान होता।[20] वास्तव में महापुराण समस्त जैन साहित्य का शिरोमणि है। महापुराण में वर्णनात्मक शलाकापुरूषों के चरित्र के आधार पर विभिन्न कालों में कई रचनाएँ हुई जो निम्न प्रकार है[21] :

1. **10 वीं शती की रचनाएँ** : इस काल में दो ही रचना एक चउप्पन्नमाहपुरिस चरिय प्राप्त हुई है जो सं. 925 में विमलमति या शीलाचार्य की लिखी हुई है। व दूसरी आचार्य पुष्पदंत का सं. 965 का अपभ्रंश भाषा का महापुराण है।
2. **11 वीं शती** : श्रीचन्द्र द्वारा रचित पुराणसार संग्रह सं. 1080 की रचना है।
3. **12 वीं शती :**
   1. महापुराण (त्रिशष्टिमहापुराण या त्रिशष्टिशलाकापुरूष) यह मुनि मल्लिषेण की रचना है। इसका निर्माण काल शक सं. 969 या सं. 1104 है।
   2. सं. 1190 मे रचित चउप्पन्नमहापुरिसचरिय ग्रंथ भी प्राप्त हुआ है इसके लेखक आम्र है।
   3. आचार्य दामनन्दि का पुराणसार संग्रह 11वीं से 13वीं शती के मध्य का है। दो भागों में रचित इस ग्रंथ का विषय आचार्य जिनसेन व गुणभद्र की रचनाओं से लिया गया है।
4. **13 वीं शती :**
   1. तेरहवी शती में आचार्य हेमचन्द्र द्वारा त्रिषष्टि शलाकापुरूषचरित लिखा गया इसका रचना काल सं. 1216–1228 के बीच का है।

यह ग्रंथ गुजरात नरेश कुमारपाल की प्रार्थना पर लिखा गया था। इसमें 10 पर्व है। जिनमें 63 शलाकापुरूषों का वर्णन किया गया है।

2. चतुर्विशंति जिनेन्द्र संक्षिप्त चरितानि : इस ग्रंथ के लेखक अमरचन्द्रसूरि है। इसका रचना काल 1238 ई. है। इस ग्रंथ के 24 अध्यायों में 1802 श्लोक है जिनमें 24 तीर्थंकरों का वर्णन किया गया है।
3. कहावलि : यह 1248 ई. में भद्रेश्वर सूरि द्वारा लिखा गया था।
4. त्रिषष्टि स्मृति शास्त्र : (सं. 1292) या तेरहवीं शती में मालवा के सुप्रसिद्ध लेखक पंडित आशाधर कृत त्रिषष्टि स्मृति शास्त्र में 63 शलाकापुरूषों का चरित्र वर्णित किया गया है।

5. **14 वीं शती** : इस काल की एक ही रचना ज्ञात है :
    1. महापुराण चरित : यह 1306 ई. में आचार्य मेरूतुंग द्वारा प्रणीत है। इसमें पाँच सर्गों में ऋषभ, शांति, नेमि, पार्श्व और वर्धमान इन पाँच तीर्थंकरों का चरित्र वर्णित है।

6. **15 वीं शती** : इस काल की रचनाएँ अज्ञात है।
7. **16 वीं शती** : दो रचनाएँ प्राप्त है जो आचार्य सकलकीर्ति की है
    1. आदिपुराण : यह सं. 1520 का निर्मित है।
    2. उत्तर पुराण : इसकी भी रचना काल सं 1520 है।
8. **17वी शती** : इस काल का भी दो रचनाएँ ज्ञात है :
    1. आदिपुराण : 17वीं शती में रचित इस ग्रंथ के लेखक भट्टारक चन्द्रकीर्ति है।
    2. कर्णाम्रत पुराण : सं. 1688 की आचार्य केशवसेन की रचना हैं।

9. 18 वीं शती :

1. लघु त्रिषष्टिशलाका पुरूषचरित्र– यह 18 वीं शती में लिखी हुई मेघविजय उपाध्याय की रचना है।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त शलाका पुरूषों के चरित्र पर आधारित कई ऐसी रचनाएँ भी है जिनका निर्माण काल ज्ञात नही है। वे निम्न है।

पुराण सार (अज्ञात), पुराण सार (सकलकीर्ति कृत), आदिपुराण(कन्नड़) (पम्प) लेखक, लघुमहापुराण या लघु त्रिषष्टि लक्षण महापुराण (चन्द्रमुनिकृत), रायमल्लाभ्यूदय उपाध्याय (पद्मसुन्दरकृत), लघु त्रिषष्टि (सोमप्रभकृत), त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित्र (विमलसूरि कृत), त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित्र (वज्रसेन कृत), त्रिषष्टि शलाका पंचाशिका (कल्याण विजय के शिष्य कृत), त्रिषष्टि शलाका पुरूषविचार लेखक(अज्ञात)

तीर्थंकरों के जीवन सम्बंधी कुछ प्रथक् प्रथक् रचनाएँ भी हुई है। जों संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषा में रचित है। इनकी संख्या प्रचुर मात्रा में है। महापुराण में इन रचनाओं को पुराण की संज्ञा दी गयी है। अर्थात् इनमें एक ही शलाका पुरूष का वर्णन दिया गया है। कुछ महत्वपूर्ण रचनाएँ निम्न है :

1. **वर्धमान पुराण** : तीसरी शती में आचार्य जिनसेन की रचना है।
2. **वागर्थ संग्रह पुराण** : कवि परमेष्ठी द्वारा रचित 9वीं शताब्दी की है।
3. **महावीर पुराण** : असग कवि द्वारा रचित 910 ई. की रचना।
4. **पार्श्व पुराण** : अपभ्रंश भाषा में 999 ई. की रचना है इसके लेखक पद्मकीर्ति है।
5. **शांतिनाथ पुराण** : 10वीं शती मे असग कवि द्वारा रचित।
6. **चामुण्ड पुराण** : कन्नड भाषा में लिखा हुआ यह ग्रंथ सं. 980 का रचित है। इसके लेखक चामुण्डराय है।
7. **अनंतनाथ पुराण** : सं. 1209 की श्रीजन्नाचार्य की रचना।
8. **महावीर पुराण** : 15 वीं शती में भट्टारक सकल कीर्ति द्वारा रचित।

9. **मल्लिनाथ पुराण** : यह भी भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा 15वीं शती में लिखा गया।

10. **पार्श्व पुराण** : कवि रइधु द्वारा रचित यह ग्रंथ 15–16 वी शती का अपभ्रंश भाषा में है।

11. **जयकुमार पुराण** : ब्र. कामराज ने इसे सं. 1555 में लिखा था।

12. **नेमिनाथ पुराण** : सं. 1575 में ब्र. नेमिदत्त द्वारा रचित।

13. **शांतिनाथ पुराण** : सं. 1659 में भट्टारक श्री भूषण द्वारा लिखित।

14. **पार्श्वनाथ पुराण** : सं. 1654 में चन्द्रकीर्ति द्वारा रचित।

15. **पार्श्व पुराणः** सं. 1658 में वादिचन्द्र की रचना।

16. **कर्णामृत पुराण** : सं. 1688 मं निर्मित इस पुराण के लेखक केशवसेन है।

17. **पद्मनाथ पुराण** : 17वीं शती में रचित इस पुराण के रचयिता भट्टारक शुभचन्द्र है।

18. **अजित पुराण** : सं. 1716 में रचित इस ग्रंथ के रचनाकार अरूणमणि है।

19. **चन्द्रप्रभ पुराण** : कवि अगसदेव द्वारा रचित, रचनाकाल अज्ञात।

20. **धर्मनाथ पुराण (कन्नड़)** : कवि बाहुबलि द्वारा रचित, रचना काल अज्ञात।

21. **मल्लिनाथ पुराण (कन्नड़)** : कवि नागचन्द्र द्वारा रचित, रचना काल अज्ञात।

22. **मुनिसुव्रत पुराण** : ब्र. कृष्णदास द्वारा रचित, रचना काल अज्ञात।

23. **मुनिसुव्रत पुराण** : भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति द्वारा रचित, रचना काल अज्ञात।

24. **श्री पुराण** : भट्टारक गुणभद्र द्वारा रचित, रचना काल अज्ञात।

इनके अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा के चरित ग्रंथ है जिनकी संख्या पुराणों की संख्या से अधिक है। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ पर पद्मानन्द काव्य, वीरनंदि द्वारा रचित चन्द्रप्रभचरित, वर्धमानसूरी द्वारा रचित वासुपूज्य चरित, कृष्णदास द्वारा रचित विमलनाथ चरित, अजितप्रभ कृत (1282 ई.) का शांतिनाथ चरित, माणिक्य चन्द्र कृत (13 वीं) का शांतिनाथ चरित, विनयचन्द्रकृत मल्लिनाथ चरित, सूराचार्य कृत (11 वीं शती) नेमिनाथ चरित्र, वादिराज कृत (1025 ई.) पार्श्वनाथ चरित, माणिक्य चन्द्र (1219 ई.) तथा

भावदेव सूरि (1555 ई.) का पार्श्वनाथ चरित, पद्मनन्दि, केशव व वाणीवल्लभ कृत महावीर चरित भी उल्लेखनीय है। उक्त तीर्थंकरों में सर्वाधिक रचनाएँ शांतिनाथ पर है। तीर्थंकरों के चरित्र के अतिरिक्त इन कृतियों में प्राकृतिक दृश्यों, जन्म, विवाह, उत्सव तथा सामाजिक, सांस्कृतिक तथ्यों का समावेशन पाया जाता है।[22]

पुराणों की विषयवस्तु :

महापुराण की विषयवस्तु : महापुराण के दो खण्ड है प्रथम आदिपुराण या पूर्वपुराण तथा द्वितीय उत्तरपुराण। आदि पुराण व उत्तरपुराण की विषयवस्तु 76 पर्वों में दी गई है। आदि पुराणकी विषयवस्तु की व्यापकता की दृष्टि से पन्नालाल जैन का कथन है कि जो अन्यत्र ग्रंथों में प्रातिपादित हैं वह इसमें भी प्रतिपादित है और इसमें प्रतिपादित नहीं है वह अन्यत्र कहीं भी प्रतिपादित नहीं है।[23] वस्तुतः महापुराण दिगम्बर जैनों के लिये विश्वकोष है जिसमें तत्कालीन भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक और संस्कृतिक कलात्मक महत्वपूर्ण बातो का समावेश मिलता है। आदिपुराणके सम्पादक पन्नालाल जैन के अनुसार आदिपुराण युग की आद्य व्यवस्था को बतलाने वाला महान इतिहास है।[24] इस ग्रंथ में प्राचीनतम समस्त पौराणिक परम्पराओं का समावेश मिलता है। प्राक्तन काल से लेकर ईसवी पूर्व 527 में अंतिम तीर्थंकर महावीर के निर्वाण तक के तीर्थकरों, चक्रवर्तियों, बलदेवों, नारायणों और प्रतिनारायणों का विवरण इस ग्रंथ में पाया जाता है। रामायण और महाभारत विषयक प्रारम्भिक जैन रचनाओं के बाद त्रिशष्टिशलाका पुरूषों के चरित्र से सम्बन्धित महापुराण की रचना हुई। समवायांग सूत्र के 275 सूत्रों मे से अंतिम 30 सूत्रों में कुलकरों, तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों तथा बलदेवों, वासुदेवों तथा प्रतिवासुदेवों (प्रतिनारायणों) का उनके माता–पिता, जन्मास्थान, दीक्षास्थान आदि का विवरण मिलता है। दिगम्बर परम्परा में सर्वप्रथम यतिवृषभाचार्य द्वारा रचित ग्रंथ तिलोयपण्णत्ति में त्रेसठ शलाका पुरूषों की सुविस्तृत नामावली मिलती है। महापुराण की रचना में जिनसेन व गुणभद्र ने आगमिक परम्परा तथा

यतिवृषयकृत तिलोयपण्णति एवं कविपरमेष्ठीकृत वागर्थ संग्रह जैसी आगमोत्तर रचनाओं का भी उपयोग किया है।[25]

महापुराण के आधार पर 63 शलाका पुरूषों के चरित्र से सम्बंधित कई ग्रंथो जैसे पुराणसाार संग्रह, चतुर्विशंतिजिनेन्द्र चरित्र, त्रिषष्टिस्मृति तथा त्रिषष्टिशलाका पुरूषचरित्र की रचना की गई। इन शलाका पुरूषो के विवरण का वैदिक पुराण–परम्परा से भी घनिष्ठ सम्बंध है। महापुराण इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि जिस प्रकार वैदिक परम्परा के पुराणों तथा धर्मशास्त्रों में मनुष्य समाज का वर्णों में वर्गीकरण और उनके प्रथक्–प्रथक् विशेष आचारों का वर्णन एवं प्रत्येक व्यक्ति के गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त धार्मिक संस्कारों एवं ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में जीवन के उत्थान व विकास का क्रम दिखलाया गया है। यही विवरण महापुराण में भी मिलता है। विशेष रूप से सामाजिक उत्सवों, आमोद–प्रमोद में धार्मिक रंग चढ़ाकर जैनाचार्यों ने तत्कालीन समय की मनोरंजनात्मक झाँकी पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

आदिपुराणकी कथावस्तु 47 पर्वों में विभक्त है। 42 वें पर्व तक आचार्य जिनसेन रचित श्लोक है। 42 वें पर्व में अंतिम तीन श्लोक एवं अंतिम 5 पर्व (43 से 47 पर्व) जिनसेन के शिष्य गुणभद्र की रचना है। आदि पुराण में प्रधान तथा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तथा उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती के चरित का ही विस्तृत वर्णन मिलता है। उत्तर पुराण में शेष 23 तीर्थंकरों, सगर आदि 11 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र, 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण तथा उनके काल में होने वाले अन्य महान विशिष्ट पुरूषों के चरित वर्णन है। आदिपुराण की विषयवस्तु निम्न प्रकार है:

आदिपुराण के **प्रथम दो पर्वो** में आचार्य जिनसेन ने कवि, महाकवि, काव्य, महाकाव्य, कथा की परिभाषा तथा कथा के सात अंगों का वर्णन बताया है। इन्ही पर्वों में आदिपुराण की ऐतिहासिकता तथा पुराण का प्रमाण, प्रकार, कथा के वक्ता–श्रोता एवं पुराण के महत्व का उल्लेख है। **तीसरे पर्व** में कालों के भेद, उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी, भोगभूमि की व्यवस्था तथा कुलकरों की उत्पत्ति को बताया गया है। कुलकरों के जीवन उनके भोग के साधन तथा कुलकरों के

द्वारा प्रजा की भलाई का विस्तृत विवरण यहाँ मिलता है। मन्वन्तर (एक कुलकर के बाद दूसरे कुलकर के उत्पन्न होने के बीच का काल) काल को भी कुलकरों के परिवर्तन तथा देश काल परिस्थिति के परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में पर्व में वर्णन मिलता है। **चतुर्थ पर्व** में लोक के प्रकारों (अधोलोक, मध्यलोक तथा उर्ध्वलोक) का वर्णन हुआ है। पुराण के वर्णनीय विषयों के प्रतिपादन के साथ ही अतिबल विद्याधर और मनोहरा रानी के प्रसंग मे विभिन्न मनोरंजनात्मक क्रियाओं का वर्णन किया गया है। इस दम्पत्ति के महाबल नामक पुत्र के चार मंत्रियों का वर्णन यहाँ किया गया है। इन्ही कथान्तरों के मध्य वेश्या के लक्षणों पर दृष्टिपात किया गया है तथा विभिन्न **पक्षियों की क्रीड़ाओं का वर्णन[26], आभूषणों, वस्त्र, धारागृह[27], क्रीड़ाचल[28], उद्यानयात्रा[29] तथा गीत संगीत के मनोरम आख्यान** भी उल्लिखित है।

पंचम पर्व व छठे पर्व में **राजा महाबल का जन्मोत्सव[30]**, विरक्ति और सल्लेखना, ललितांग देव और स्वयंप्रभा के पूर्वभवों का वर्णन है। राजा महाबल के गोष्ठी[31], मंगलगीत, वादित्र द्वारा आमोद–प्रमोद का प्रंसग दिये गए है। इस कथानक में मनोरंजन के साधनों के रूप में **चित्रकला का वर्णन[32], चित्रशाला[33], राज्याभिषेक महोत्सव[34], विद्यासंवाद गोष्ठी[35], दोलागृह[36], पर्वतक्रीड़ा[37]वाद्य, नृत्य,** गायन की जानकारी मिलती है।

7वें पर्व से 9वें पर्व तक वज्रजंघ और श्रीमति का विवाह एवं वज्रजंघ और श्रीमति के छह ऋतुओं के भोग वर्णित है। इन युगलों का क्रीड़ास्थलों में, ग्रहोद्यान में, जलक्रीड़ा, लतागृह, पर्वतों में क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है।

दशवें पर्व में प्रीतिंकर मुनि का केवल ज्ञान महोत्सव व श्रीधर का अच्युतेन्द्र बनने का विवरण दिया है। इसी कथानक में मद्य सेवन के दोष बताए है। मनोरंजन के साधनों के रूप में पालतु पशु, गंधर्व, नृत्यकारिणी, प्रतीन्द्र का वैभव वर्णन, अच्युतेन्द्र की देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा का विस्तृत वर्णन है।

एकादश पर्व में वज्रनाभि का राज्याभिषेक महोत्सव तथा सर्वार्थसिद्धि के सुखों का मनोरम वर्णन है।

12वें पर्व में भगवान आदिनाथ का गर्भकल्याणक महोत्सव का वर्णन है। माता मरूदेवी का गर्भावस्था के समय देवियों द्वारा विभिन्न प्रकार से जैसे जलक्रीड़ा, वनक्रीड़ा, कथा गोष्ठी, संगीत गोष्ठी, वादित्र गोष्ठी, नृत्य गोष्ठी, रंगोली, ताम्बूल सेवन तथा गीत, नृत्य, नाट्य प्रहेलिकाओं, वीणा द्वारा मनोरंजन किए जाने का समुचित विवरण प्राप्त होता है।[38]

13 वें व 14 वें पर्व में भगवान ऋषभ देव का जन्मोत्सव तथा इन्द्र द्वारा 1008 कलशो से भगवान के अभिषेक का कथानक वर्णित है। इस प्रसंग में गीत, नृत्य, वाद्य द्वारा आनंद मनाए जाने का उल्लेख मिलता है। इन्द्राणी बालक को सुगंधित द्रव्यों का लेप लगाकर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करती है। इस पर्व में इन्द्र द्वारा किये गये ताण्डव नृत्य, आनंद नाटक, रंगभूमि तथा विभिन्न किन्नर देवियों व अप्सराओं द्वारा किये गये सूची नृत्य व अन्य नृत्यों का विवरण है। विभिन्न वाद्यों का वादन का विस्तृत विवरण यहाँ संगीत को मनोरंजन का विशुद्ध साधन ठहराता है।

15वें पर्व में भगवान ऋषभ देव का विवाहोत्सव यशस्वती व सुनंदा के साथ होता है। भरत के जन्मोत्सव का यहाँ विशेष वर्णन मिलता है।

16वें पर्व में आभूषण में हार के विविध भेद बताए गए है। भरत को नृत्य शास्त्र की, अनन्त विजय के लिए चित्रकला की शिक्षा प्रदान की जाती है। इस पर्व में आमोद–प्रमोद के कई स्थलों का वर्णन विस्तृत रूप में मिलता है। शिल्प जो कि मानसिक रूप से आनंद प्रदान करती है इसका ऋषभ नाथ द्वारा उपदेश दिया जाता है।

17वें से 22वें पर्व में ऋषभदेव के वैराग्य, कैवल्य ज्ञान महोत्सव उल्लेख है।

23वें पर्व मे समवशरण की अनुपम रचना दी गई है। क्रीड़ाग्रहों, लताग्रहों, नाट्यशालाओं, धूपघटों, मनोहर महलों, तालाबों, अजायबघरों, चित्रशाला आदि से युक्त समवशरण को आनंद का प्रतीक घोषित किया गया है। क्योंकि यहाँ भगवान की दिव्य ध्वनि खिलती है जो सुनने वालों को आनंदित करती है। समवशरण जैन स्थापत्य कला का भी महत्वपूर्ण सूचक है।

24वें पर्व से 38वें पर्व तक भरत द्वारा भगवान ऋषभ देव की 108 नामों से साढ़े बारह करोड़ दुन्दुभि बाजो से स्तुति, भरत द्वारा चक्ररत्न की पूजा तथा पुत्रोत्सव सम्पन्न करना एवं दिग्विजय के लिए प्रस्थान, भरत और बाहुबली के मध्य नेत्र, जल और मल्ल युद्ध, भरत का राज्याभिषेक महोत्सव का वर्णन है। **शरद ऋतु की सुन्दरता, फाग, किन्नरों के गीत, हंस, चकवा–चकवी, सारस की क्रीड़ाएँ, गंगा नदी की सुदंरता, नट के लक्षण, विभिन्न वाद्य, पशु–पक्षियों की क्रीड़ा, वेश्या लक्षण, वन विहार,[39] नृत्य शाला,[40] 32000 नाटक,[41] छह ऋतुओं के भोग विलास,[42] झूला[43] वर्णित है।**

39वें पर्व से 42 पर्वो में क्रियाओं तथा संस्कारों का वर्णन तथा राजनीति का उल्लेख है। चक्रवर्ती भरत की दिनचर्या, स्नान क्रिया, ताम्बूल सेवन आदि वर्णन इसमें दिया गया है।

43 वें पर्व से 47 वें पर्व तक जयकुमार और सुलोचना के स्वयंवर, युद्ध, प्रेममिलन तथा जयकुमार को संसार से विरक्ति तथा चक्रवर्ती भरत के दीक्षा ग्रहण व कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। भगवान ऋषभ देव की कैलाशपर्वत पर निर्वाण प्राप्ति का उल्लेख है। कथानक में श्रीपाल में 32 क्रीड़ाओं से हाथी को वश में किए जाने तथा वनविहार, आनंद नाटक तथा कैवल्य महोत्सव व मोक्ष कल्याणक महोत्सव का वर्णन प्राप्त होता है। आदिपुराणसे ऋषभ देव व चक्रवर्ती भरत का विस्तृत जीवन परिचय हमें प्राप्त होता है तथा ऋषभदेव के दस पूर्व भवों की कथाएँ ज्ञात होती है।

उत्तर पुराण की विषयवस्तु : आचार्य गुणभद्र द्वारा रचित यह ग्रंथ महापुराण का पूरक भाग है। इसमें 61 शलाका पुरूषों अजितनाथ को आदि लेकर 23 तीर्थंकर, सगर को आदि लेकर 11 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र, 9 नारायण तथा 9 प्रतिनारायण तथा उनके काल में होने वाले विशिष्ट पुरूषों के कथानक दिये गये है। उत्तर पुराण के सम्पादक पन्नालाल जैन के अनुसार इसमें कथानक संक्षेप में होते हुए भी वर्णन शैली की मधुरता के कारण अत्यन्त रूचिकर प्रतीत होते है।[44]

48 वें पर्व से 54 वें पर्व तक क्रमशः द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ तृतीय तीर्थंकर सम्भवनाथ, चौथे अभिनन्दन स्वामी 5वें तीर्थंकर सुमतिनाथ, छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ, सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ तथा आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के पंचकल्याणकों का वर्णन दिया गया है। पंचकल्याणक महोत्सव में नृत्य, गान, संगीत के द्वारा आनंद प्राप्ति का वर्णन दिया गया है। दश भोगो– भाजन, भोजन, शय्या, सेना, सवारी, आसन, निधि, रत्न, नगर और नाट्य का उल्लेख दिया गया है।

55 से 66 वें पर्वो में क्रमशः नवें पुष्पदन्त तथा दसवें शीतलनाथ, 11वें तीर्थंकर श्रेयान्सनाथ बारहवें तीर्थंकर से उन्नीसवें तीर्थंकर क्रमशः वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तथा मल्लिनाथ के पंचकल्याणकों व जीवन चरित का वर्णन किया है।

वासुपूज्य जी के तीर्थ मे होने अचल बलभद्र, द्विपृष्ठ नारायण तथा तारक प्रतिनारायण के चरित्र वर्णित है। इसी कथानक में नृत्यकारिणी का प्रसंग मनोरंजनात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। विमलनाथ तीर्थंकर के काल में धर्म बलभद्र, स्वयंभू नारायण तथा मधुप्रतिनारायण के जीवन चरित्र है। उसी पर्व में छह ऋतुओ के भोग, जुआ, मुक्केबाजी, माया (इन्द्रजाल), वेश्या (गणिका) का वर्णन दिया गया है।

अनन्तनाथ तीर्थंकर के काल में सुप्रभ बलभद्र, पुरूषोत्तम नारायण तथा मधुसूदन प्रतिनारायण के कथानक वर्णित है। धर्मनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में सुदर्शन बलभद्र, पुरूषसिंह नारायण, मधुक्रीड़ प्रतिनारायण का जीवन वृत्तांत अंकित है। इसी पर्व में मल्लक्रीड़ा का भी वृत्तांत है।

शांतिनाथ तीर्थंकर के काल में अर्धचक्री नारायण अनन्तवीर्य का जीवन चरित्र वर्णित है। इस कथानक में पुत्र जन्मोत्सव, दीक्षा महोत्सव, केवल ज्ञान महोत्सव जैसे उत्सवों का वर्णन किया गया है। **ऋतुओं का मनोरम वर्णन एवं पक्षियों की क्रीड़ाएँ तथा वनविहार, मुर्गा युद्ध (कुक्कुट युद्ध)[45], नृत्य, गायन, हाथी युद्ध[46], भैसा युद्ध[47], मेढ़ा युद्ध, स्नान, उबटन, संवाहन, विलास, हाव–भाव, गीत, बातचीत, चित्रकला आभूषण, वस्त्र, विनोदों का वर्णन किया गया है।**

कुन्थुनाथ स्वामी के पंचकल्याणक का वर्णन दिया गया है। अरनाथ भगवान के काल में होने वाले सुभौम चक्रवर्ती, नन्दिषेण बलभद्र, पुण्डरीक नारायण तथा निशुम्भ प्रतिनारायण का जीवन चरित्र का वर्णन अंकित है। मल्लिनाथ स्वामी के तीर्थ में होने वाले पद्मचक्रवर्ती, नन्दिमित्र बलदेव, दत्त नारायण और बलीन्द्र प्रतिनारायण का वर्णन है।

67 तथा 68 वें पर्वो में 20वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत तथा उनके समकालीन आठवें बलभद्र, राम, लक्ष्मण नारायण तथा रावण प्रतिनारायण का उल्लेख है। राम कथा की परम्परा लगभग पाँचवी शती ई. में जैन धर्म में प्रविष्ट हुई। राम कथा भारतवर्ष की सबसे अधिक लोकप्रिय कथा है और इस पर विपुल साहित्य का निर्माण किया गया है। हिन्दु, बौद्ध तथा जैन तीनों ही सम्प्रदायों ने राम को महापुरूष के रूप में वर्णित किया है। राम कथा जैन साहित्य में सर्वप्रथम विमलसूरिकृत पउमचरिउ जैसे प्रारम्भिक तथा रविषेण कृत पद्मपुराण जैसे परवर्ती ग्रन्थों में उल्लिखित है। इन दोनों पर्वो में राम, लक्ष्मण व सीता का जन्म, राम–सीता विवाह, रावण द्वारा सीता हरण और फलस्वरूप राम–रावण युद्ध, हनुमान के जीवन से सम्बंधित कथा प्रसंग में उनके पराक्रम एवं विद्याओं तथा लंकादहन आदि का वर्णन तथा लक्ष्मण द्वारा बालि व रावण का वध, राम व लक्ष्मण की दिग्विजय और राज्याभिषेक, लक्ष्मण की मृत्यु से राम के वैराग्य, दीक्षा, कैवल्य व निर्वाण प्राप्ति का सजीव व रोचक वर्णन किया गया है। इन कथानकों में विवाह महोत्सव, पूजा, पंचकल्याणक महोत्सव, ऋतु सुंदरता वर्णन, वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, हास–परिहास, हरिण क्रीड़ा, माया विद्या से रूप धारण करना, पत्ररचना, नट, नटी, नृत्य, युद्ध क्रीड़ा, विजयोत्सव, मदिरा, धाराग्रह, मनोहर वन, विभिन्न विद्याओं, वीणा का वर्णन आदि मनोविनोद का सामग्री प्रस्तुत की गई है।

69 वें पर्व से अंतिम 76 वें पर्व में क्रमश : 21 वें तीर्थंकर नमिनाथ, 22 वें नेमिनाथ स्वामी,23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी के पंचकल्याणक महोत्सव वर्णित है। अन्तिमपर्व में काल के भेद उत्सर्पिणी एवं

अवसर्पिणी का विशिष्ट वर्णन करते हुए कल्कियों, प्रलयकाल तथा भविष्य के तीर्थंकरो, शलाका पुरूषो का नामोल्लेख दिया गया है। महावीर स्वामी की शिष्य परम्परा तथा आचार्य गुणभद्र की प्रशस्ति का वर्णन है। उत्तर पुराण की अंत की गाथा के अनुसार महापुराण अद्भुत धर्मशास्त्र है, इसकी कथाएँ अत्यंत मनोहर है इसमें 63 शलाका पुरूषों का व्याख्यान है।

पद्मपुराण की विषयवस्तु : दिगम्बर कथा साहित्य में संस्कृत भाषा में रचित पद्मपुराण बहुत प्राचीन ग्रंथ है। इसमें आठवें बलभद्र राम तथा आठवें नारायण लक्ष्मण को कथानायक के रूप में जीवन चरित का चित्रण किया गया है। पद्मपुराण के कर्त्ता आचार्य रविषेण है। **ग्रंथ के रचना काल के संदर्भ में उन्होनें लिखा है कि जिनसूर्य श्री वर्धमान जिनेन्द्र के मोक्ष जाने के एक हजार दो सौ तीन वर्ष छः मास बीत जाने पर श्री पद्ममुनि (राम) का यह चरित लिखा गया है। इस प्रकार इसकी रचना 734 विक्रम संवत् या 667 ई. में पूर्ण हुई।**[48]

उद्योतनसूरि ने अपनी कुवलय माला, जो कि पद्मचरित के बाद का वि. सं. 835 रचना काल का ग्रंथ है। इस ग्रंथ में वरांगचरित के कर्त्ता जटिलमुनि तथा पद्मचरित के कर्त्ता आचार्य रविषेण का स्मरण किया है। आचार्य जिनसेन ने हरिवंश पुराण वि.सं. 840 में लिखा, इसमें भी रविषेण को स्मरण किया है। पद्मपुराण की कथावस्तु के आधार के विषय में रविषेण ने लिखा है कि श्री महावीर स्वामी के द्वारा कहा हुआ यह अर्थ इन्दुभूति नामक गणधर को प्राप्त हुआ, फिर धारिणीपुत्र सुधर्माचार्य को प्राप्त हुआ, अनन्तर प्रभव को प्राप्त हुआ, फिर अनुत्तरवाग्मी अर्थात् श्रेष्ठ वक्ता कीर्तिधर आचार्य को प्राप्त हुआ। तदनन्तर उनका लिखा हुआ प्राप्त कर यह रविषेणाचार्य का प्रयत्न प्रकट हुआ है।[49]

रविषेण ने अपने इसी ग्रंथ में एक और अन्य जगह इसी प्रकार का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है : समस्त संसार के द्वारा नमस्कृत श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र ने पद्ममुनि का जो चरित कहा था वही इन्दुभूति–गौतम गणधर ने सुधर्मा और जम्बू स्वामी के लिए कहा। वही जम्बू स्वामी के शिष्य उत्तरवाग्मी आचार्य श्री कीर्तिधर मुनि के द्वारा प्रकट हुआ और उक्त कीर्तिधर के ग्रंथ को

देखकर रविषेण ने अपना पद्मपुराण रचा है।[50] ग्रंथकर्त्ता आचार्य रविषेण ने ग्रंथ का रचना काल दिया इससे तत्कालीन समय की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विवरण मिलता है। पद्मपुराण की कथावस्तु के आधार पर तत्कालीन समय की मनोरंजनात्मक सामग्री का विश्लेषण किया गया है।

पद्मपुराण की कथावस्तु 123 पर्वों में विभक्त है। **प्रथम पर्व** में मंगलाचरण, सज्जन दुर्जन प्रशंसा तथा ग्रंथ की संक्षिप्त कथावस्तु का उल्लेख है। इस पर्व में पुराण के सात अधिकार बताए गए हैः— **1. लोकस्थिति, 2. वंशो की उत्पत्ति, 3. वन के लिए प्रस्थान, 4. युद्ध, 5. लवणांकुश की उत्पत्ति, 6. भवान्तर निरूपण, 7. रामचन्द्र जी का निर्वाण।**

द्वितीय पर्व में राजग्रही नगरी की शोभा का वर्णन तथा राजा श्रेणिक का विपुलाचल पर भगवान महावीर के समवशरण में जाने का वर्णन है। इसी पर्व में पशु—पक्षियों की क्रीड़ा, विभिन्न वाद्यों जैसें मृदंग, घण्टा, शंख, दुन्दुभि, तुरही, भेरी इत्यादि का प्रसंगानुसार वर्णन किया गया है।

तृतीय पर्व में राजा श्रेणिक गौतम स्वामी से रामकथा सुनने की इच्छा प्रकट करते है। गौतम स्वामी द्वारा तीनों क्षेत्रों, कालों तथा चौदह कुलकरों का वर्णन किया जाता है। मरूदेवी के स्वप्न, गर्भावस्था तथा ऋषभदेव का जन्म ओर दीक्षाकल्याणक का यहाँ उल्लेख प्राप्त होता है। भगवान आदिनाथ के गर्भावतार के समय देवियाँ मरूदेवी का विभिन्न प्रकार से मनोरंजन करती थी, उनका विवरण इस पर्व में दिया गया है।

चतुर्थ पर्व में ऋषभ देव का राजा श्रेयांस और सोमप्रभ के यहाँ आहार लेना, भगवान को कैवल्य की प्राप्ति होना, भरत—बाहुबलि युद्ध तथा ब्राह्मण वर्ण की सृष्टि विषय चर्चा है। केवल ज्ञान महोत्सव के आनंद का इस पर्व में विस्तृत वर्णन मिलता है।

पंचम पर्व में चार महावंशों : 1. इक्ष्वाकु वंश, 2. ऋषि वंश अथवा चन्द्र वंश, 3. विद्याधरों का वंश, 4. हरिवंश की वंशावलियाँ दी गई है। अजितनाथ भगवान, सगरचक्रवर्ती तथा राक्षस वंश का वर्णन दिया गया है। इस पर्व में मनोरंजन के

साधनों के रूप में **जुआ,**[51] **मदिरा,**[52] **वेश्या सेवन,**[53] **वनक्रीड़ा,**[54] **नृत्य**[55] **गान**[56] **इन्द्रजाल**[57] आदि का कथानक के अन्तर्गत वर्णन किया गया है।

छठे पर्व में वानर वंश का विस्तृत वर्णन है। इस पर्व में **वानर द्वीप की सुदंरता, संगीत ग्रह**[58]**, अनुपम चित्र**[59]**, सरोवर क्रीड़ा**[60]**, दोला क्रीड़ा**[61]**, पर्वत क्रीड़ा** का अद्‌भुत वर्णन है।

सातवें पर्व में रथनूपुर के राजा सहस्त्रार के यहाँ इन्द्र का जन्म, इन्द्र व माली का युद्ध वर्णित है, दशानन, कुम्भकर्ण, चन्द्रनखा और विभीषण की उत्पत्ति का भी वर्णन है। इस पर्व में पुत्रजन्मोत्सव, छब्बीस हजार नृत्यकार, क्रीड़ा के लिए जन्तु, युद्ध महोत्सव का उल्लेख है।

आठवें पर्व में मंदोदरी तथा दशानन का विवाह होता है। रावण छह हजार कन्याओं के साथ जलक्रीड़ा करता है। रावण लंका नगरी में प्रवेश करता है। युद्ध महोत्सव, विद्या जनित महोत्सव, बालक्रीड़ा, अष्टान्हिक महोत्सव, गजक्रीड़ा, विवाहोत्सव, चित्रकारी, गणिका, नृत्य, गायन, वादन इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

नवें पर्व में बालि, सुग्रीव, नल, नील आदि की उत्पत्ति, रावण की बहन चन्द्रनखा का हरण, रावण द्वारा कैलाशपर्वत का उठाया जाना तथा बाालि के प्रभाव की चर्चा है।

दसवें पर्व में सुग्रीव का सुतारा से विवाह, रावण का दिग्विजय के लिए निकलना तथा राजा सहस्त्ररष्मि की जलक्रीड़ा, दीक्षा आदि का वर्णन है।

ग्यारहवें पर्व में हिंसायज्ञ का इतिहास वर्णित है।

बारहवें पर्व में रावण व इन्द्र के बीचयुद्ध क्रीड़ा का आनन्द तथा रावण के नगर प्रवेशोत्सव का मनोरंजन विवरण इस पर्व में प्राप्त होता है।

तेरहवें पर्व में इन्द्र के पिता सहस्त्रार इन्द्र को रावण की सभा में उपस्थित बंधन से छुड़ाता है। इन्द्र दीक्षा लेता है तथा निर्वाण प्राप्त करता है।

14वें पर्व मे अनन्तबल मुनिराज का केवल ज्ञान तथा रावण द्वारा जो परस्त्री मुझे नही चाहेगी, मैं उसे बलात् नही चाहूँगा, इस प्रकार की प्रतिज्ञा ग्रहण का उल्लेख है।

15वें से 18वें पर्व में पवनजय और अंजना के विवाह, चकवा के बिना तड़पती चकवी को देखकर पवनंजय का अजंना के प्रति द्वेष, त्याग तथा सम्भोग श्रृंगार, अंजना का गर्भ धारण करना, वन में ही हनुमान का जन्म तथा पवनंजय तथा अंजना के मिलाप का वर्णन है।

19 वें से 25 वें पर्व में चौबीस तीर्थंकरों तथा अन्य शलाका पुरूषो का वर्णन,मुनिसुव्रतनाथ तथा उनके वंश का वर्णन, इक्ष्वाकु वंश के प्रारम्भ का वर्णन, राजा दशरथ की उत्पत्ति, कैकया की कलाओं का विस्तृत वर्णन तथा राजा दशरथ के चार पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन है।

26 वें से 28 वें पर्व में राजा जनक के विदेहा से सीता और भामण्डल का जन्म, जनक का दशरथ के पुत्र राम के लिए अपनी पुत्री सीता देने का निश्चय एवं जनक की घोषणा 'यदि राम वज्रावर्त धनुष चढ़ा देगें तो सीता ले सकेंगा अन्यथा भामण्डल लेगा' इस घोषणा के साथ मिथिला में स्वयंवर होता है।

29 वें से 31 वें पर्व में दशरथ द्वारा अष्टान्हिक महापर्व का मनाया जाना,राजा जनक व सीता का मिलन, राजा दशरथ के राम के राज्याभिषेक की घोषणा, कैकया का अपने वर में भरत के लिए राज्य मांगना, भरत का राज्याभिषेक तथा राम–लक्ष्मण तथा सीता का वन गमन वर्णन है।

32 वें से 44 वें पर्व में राम सीता की जलक्रीड़ा, यक्षपति द्वारा राम–लक्ष्मण के निवास के लिए रामपुरी की रचना, राम–लक्ष्मण का नर्तकियों के वेश में अतिवीर्य के दरबार में जाकर अनुपम संगीतों और कलापूर्ण नृत्यों से उसे मंत्रमुग्ध करना, राम–लक्ष्मण तथा सीता का जटायु से मिलन, विनोद, राम–लक्ष्मण का खरदूषण के साथ युद्ध, रावण का सीता को देखकर मोहित तथा छल से सिंहनाद करके सीता का अपहरण कर लेने का वर्णन है।

45 वें पर्व से 80 वें पर्व में राम का सीता वियोग मे दुःखी होना, मंदोदरी का रावण को समझाना, हनुमान का लंका में जाकर विभीषण से मिलकर सीता को राम का संदेश सुनाना, है। सीता का राम के समाचार मिलने पर आहार ग्रहण करना, रावण का बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करना, रावण और लक्ष्मण का

भीषण युद्ध, लक्ष्मण चक्ररत्न चलाकर रावण का अंत कर देता है। अन्त में राम और सीता का मिलाप वर्णित है।

81 वें पर्व में अयोध्या की और प्रस्थान, राम–लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण, भामण्डल, विराधित का हर्ष के साथ स्वागत तथा माँ–पुत्र मिलन नारद का लंका में पहुँचकर राम के सामने कौशल्या, सुमित्रा आदि के दु:ख का वर्णन करते है।

82वें से 109वें पर्व में अयोध्या की और प्रस्थान, राम–लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण, भामण्डल, विराधित का हर्ष के साथ स्वागत, माँ–पुत्र मिलन, भरत का दीक्षा ग्रहण करना, राम और लक्ष्मण का राज्याभिषेक, शत्रुघ्न का मथुरा का राज्य माँगना, सीता विषयक लोकोपवाद के कारण कृतांतवक्त्र सेनापति द्वारा सीता को अटवी में छोड आने की आज्ञा, सीता के गर्भ से अनंगलवण व मदनांकुश की उत्पत्ति, राम–लक्ष्मण व अनंगलवण व मदनांकुश का मिलन, सीता की अग्निपरीक्षा तथा सीता का प्रथिवीमति आर्यिका के पास दीक्षा लेने व अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र होने का कथानक वर्णित है।

110वें से 123 पर्व में अनंगलवण व मदनाकुंश का विवाह, भामण्डल की मृत्यु, हनुमान का वैराग्य, दीक्षा और मोक्ष, राम की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर लक्ष्मण का निधन, राम का अनंगलवण को राज्य भार सौंपकर दीक्षा लेना व क्षपकश्रेणी प्राप्त कर केवली हो जाना,सीता के जीव प्रतीन्द्र का नरक में जाकर लक्ष्मण को संबोधना, राम को निर्वाण की प्राप्ति होती है। अन्त में ग्रंथकर्त्ता रविषेणाचार्य अपनी प्रशस्ति लिखते है।

हरिवंश पुराण की विषयवस्तु : जैन हरिवंश पुराण आचार्य जिनसेन द्वितीय की रचना है। जिनसेनाचार्य ने अपने ग्रंथ के अंतिम सर्ग में हरिवंश पुराण का रचनाकाल शक संवत् 705 लिखा है जो वि.सं. 840 होता है हरिवंश पुराण के 66 सर्ग में भगवान महावीर से लेकर लोहाचार्य तक की वही आचार्य परम्परा की है जो श्रुतावतार आदि अन्य ग्रंथो मे मिलती है।[62] जिनसेन आचार्य के गुरू कीर्तिषेण थे और हरिवंश पुराण की कथावस्तु उन्हें अपने गुरू से ही प्राप्त हुई

होगी। हरिवंशपुराण की रचना के सम्बंध में वर्णित है कि शक संवत् 705 में जबकि उत्तर दिशा में इन्द्रायुध, दक्षिण दिशा में कृष्ण का पुत्र श्रीवल्लभ, पूर्व में अवन्तिराज, वत्सराज और पश्चिम की और सौरो के अधिमण्डल सौराष्ट्र की वीर जयवराह रक्षा करता था तब अनेक कल्याणों से अथवा सुवर्ण से बढ़ने वाली विपुल लक्ष्मी से सम्पन्न वर्धमानपुर के पार्श्व जिनालय में जो कि नन्नराज वसति के नाम से प्रसिद्व था यह ग्रंथ पहले प्रारम्भ किया गया और पीछे चलकर दोस्तटिका की प्रजा के द्वारा उत्पादित प्रकृष्ट पूजा से युक्त यहाँ के शांतिजिनेन्द्र के शांतिपूर्ण गृह में रचा गया।[63]

कुवलयमाला के कर्त्ता उद्योतन सृरि (वि. सं. 835) ने अपनी कुवलयमाला में जिस तरह रविषेण के पद्मपुराण की स्तुति की है उसी प्रकार हरिवंश भी की है।[64]

हरिवंश पुराण से जैन वाड्.मय के विविध विषयों का अच्छा निरूपण किया गया है। इसलिए यह जैन साहित्य का अनुपम ग्रंथ है। जैन हरिवंश पुराण में हरिवंश की एक शाखा यादवकुंल और उसमें उत्पन्न हुए दो शलाका पुरूषों का चरित्र विशेष रूप से वर्णित हुआ है। बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ तथा नवें नारायण कृष्ण का जीवन चरित्र। ये दोनों चचेरे भाई थे, जिनमें से एक ने अपने विवाह के अवसर पर निमित्त पाकर संन्यास ले लिया और दूसरे ने कौरव–पाण्डव युद्ध में अपना बल–कौशल दिखलाया। एक ने आध्यात्मिक उत्कर्ष का आदर्श प्रस्तुत किया और दूसरे ने भौतिक जगत की लीला का। एक ने निवृत्ति परायणता का मार्ग प्रशस्त किया तथा दूसरे ने प्रवृत्ति का। इसी प्रसंग से हरिवंश पुराण में महाभारत का कथानक सम्मिलित पाया जाता है।

जैसे वैदिक परम्परा में रामायण और महाभारत का सर्वप्रथम स्थान है ठीक वैसे ही जैन साहित्य में पद्मपुराण और हरिवंश पुराण का स्थान है। तत्कालीन समय में राम और कृष्ण के चरित्र लोकरूचि के विषय थे। जैन धर्म में भी वीरपूजा की मान्यता है। राम और कृष्ण दोनो वीर पुरूषों मे गिने गये है। अतएव उनकी भी जैन पुराण में सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठा पायी जाती है।

अपने–अपने काल के विश्वकोश कहलाने वाले इन पुराणों में कथानक के अतिरिक्त भी कई एतिहासिक तथ्य छुपे हुए है जो इतिहास की अविच्छिन्न धारा की कड़ी का कार्य करते है। हरिवंश पुराण में धर्म व नीति के अतिरिक्त नाना कलाओं और ज्ञान विज्ञान का परिचय मिलता है जो तत्कालीन समय की परम्पराओ को दृष्टव्य करता है।

आचार्य जिनसेन ने कई स्थानों पर इस पुराण की रचना की है। अतः विभिन्न स्थानों का सांस्कृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभाव भी इस पुराण में परिलक्षित होता है। कथावस्तु 66 सर्गो में दी गई है जो निम्न प्रकार है :

प्रथम सर्ग में मंगलाचरण के पश्चात् ग्रंथकर्त्ता जिनसेन अपने पूर्व आचार्यों का स्मरण करते है यह परम्परा अन्यत्र उपलब्ध नही है अतः इस पुराण का महत्त्व इस दृष्टि से और बढ़ जाता है। ग्रंथ के अधिकारो तथा महत्व का भी वर्णन है।

द्वितीय सर्ग में भगवान महावीर के गर्भ,जन्म, तप, केवल ज्ञान कल्याणक का वर्णन है। समवशरण, भगवान की प्रथम दिव्यध्वनि, क्षायिक सम्यग्दर्शन की महिमा तथा समवशरण के प्रभाव का निरूपण है।

तृतीय सर्ग में भगवान महावीर विहार करते है तथा विपुलाचल पर भगवान का समवशरण रचा जाता है। चतुर्विध संघ के समक्ष दिव्यध्वनि द्वारा जीवा–जीवादि तत्व, चौदह गुणस्थान, चतुर्गति के दुखों का वर्णन करते है। राजा श्रेणिक गौतम गणधर से तीर्थकरों, चक्रवर्तियों, बलभद्रों, नारायणों तथा प्रतिनारायणों के चरित, वंशों की उत्पत्ति और लोकालोक विभाग के निरूपण के लिए प्रार्थना करते है।

चतुर्थ सर्ग से 8वें सर्ग में अधोलोक, तिर्यग्लोक, उर्ध्वलोक तथा सिद्धलोक, काल द्रव्य का स्वरूप, भेद वर्णित है।

आठवें सर्ग में मरूदेवी की 16 स्वप्न देखना तथा भगवान ऋषभ देव के गर्भावतार का वर्णन है। इस सर्ग में मनोरंजन के अनेक साधनों का वर्जन किया गया है। जैसे तंत्री, वीणा, नृत्य, दुन्दुभि, शंख, उबटन, अनुलेपन, महोत्सव इत्यादि।

नवें सर्ग में ऋषभ देव की बाल क्रीड़ा तथा नन्दा और सुनन्दा के साथ विवाह का वर्णन है। इसी सर्ग में कर्मभूमि की रचना, षट्कर्मोपजीवी का प्रजा को उपदेश तथा राजवंश स्थापित करने का उल्लेख दिया गया है। नीलांजना नर्तकी के कारण भगवान ऋषभ देव को वैराग्य हो जाता है। अतः दीक्षाकल्याणक व केवलज्ञान महोत्सव भी वर्णित है।

दसवें सर्ग में भगवान ऋषभ देव अपनी दिव्यध्वनि से संसार–सागर से पार करने वाला तीर्थ बताते है श्रुतज्ञान का स्वरूप, पर्याय, दृष्टिवाद अंग के पूर्वगत भेद, अंगबाह्य श्रुत, मतिज्ञान का स्वरूप, भेद, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान व केवलज्ञान का निरूपण करते है।

11वें से 13वें सर्ग में भरत पुत्रजन्मोत्सव, भरत–बाहुबली युद्व, बाहुबली की दीक्षा, चक्रवर्ती भरत का वैभव, भरत की दीक्षा तथा निर्वाण प्राप्ति, द्वितीय तीर्थकर अजितनाथ तथा कालक्रम से होने वाले अन्य तीर्थकरों व चक्रवर्तियों का उल्लेख भी दिया गया है।

14वें व 15वें सर्ग में वसन्त ऋतु का वर्णन, राजा सुमुख का वनविहार के समय वनमाला पर आसक्त होना तथा हरिवंश की उत्पत्ति का कथानक वर्णित है।

16वें सर्ग में 20वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत नाथ का गर्भ, जन्म, दीक्षा कल्याणक केवल व मोक्ष कल्याणक का वर्णन है।

17वें सर्ग से 34 वें सर्ग में हरिवंश की पीढ़ियों, यादवों की उत्पत्ति, संगीत शास्त्र, रक्षाबंधन की कथा, चारूदत्त की उत्पत्ति, विवाह, वेश्या व्यसन वसुदेव का कन्याओं से विवाह, परशुराम तथा सुभौम चक्रवर्ती, बुद्धिसेना वेश्या, कंस की बहिन देवकी से वसुदेव का विवाह वर्णित है। इन्हीं कथानकों में मुष्टियुद्ध, माला गूँथने की प्रतियोगिता, वाद्य, वेश्या, बसन्तोत्सव दौड प्रतियोगिता का वर्णन दिया गया है।

35वें से 44वें सर्ग में देवकी के तीन युगल पुत्रो का जन्म, कृष्ण का जन्म, कृष्ण के नंद व यशोदा के यहाँ पालन होने, कृष्ण की बालक्रीड़ा, बलभद्र तथा श्रीकृष्ण का कंस के मल्लों के साथ युद्ध, कंस की मृत्यु, कृष्ण का

सत्यभामा से विवाह, नेमिनाथ का गर्भकल्याण, जन्म महोत्सव, कुबेर द्वारा श्रीकृष्ण को नारायण तथा राम को बलभद्र स्थापित करना, नारद की उत्पत्ति, रूक्मिणी का चित्र श्रीकृष्ण को दिखाना, कृष्ण द्वारा रूक्मिणी हरण, शिशुपाल की मृत्यु, रूक्मिणी, जाम्बवती, लक्ष्मण, सुसीमा, गौरी, पद्मावती और गांधारी के साथ विवाह का कथानक वर्णित है।

45वें से 54 वें सर्ग में पाण्डवों की उत्पत्ति, दुर्योधनादि कौरवों और युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के बीच होने वाले संघर्ष, द्रोपदी का अर्जुन से विवाह, पाण्डवों और दुर्योधन में जुआ खेला जाना, पाण्डवों का अज्ञातवास, प्रद्युम्न की चेष्टाएँ, प्रद्युम्न का द्वारिका आना, श्रीकृष्ण द्वारा जरासंध का मारा जाना, कृष्ण का नारायण के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करना, संगम देव द्वारा द्रोपदी हरण, द्रोपदी को श्रीकृष्ण एवं पाण्डव द्वारा वापस लाना, असामयिक हँसी के कारण पाण्डवों का द्वारिका छोडना तथा यादवों की जलक्रीडा का वर्णन है।

55वें सर्ग से अन्तिम 66वें सर्ग में नेमिनाथ के वैराग्य, भगवान नेमिनाथ की तपश्चर्या,केवलज्ञान, समवशरण, विहार, गजकुमार मुनि का निर्वाणोत्सव, द्वैपायन मुनि के क्रोध से द्वारिका के भस्म होना, श्रीकृष्ण और बलदेव का वन प्रस्थान, जरतकुमार के बाण से संयोगवश कृष्ण के पैरों में आघात, कृष्ण कर मृत्यु, बलदेव का छः माह तक कृष्ण का शव लेकर घूमना, तदनन्तर कृष्ण का तुंगीगिरी पर दाह, बलदेव का दीक्षा ग्रहण पाण्डवों का नेमिनाथ से दीक्षा लेकर घोर तप करना, नेमिनाथ भगवान के मोक्ष कल्याणक महोत्सव जरतकुमार से यादव वंश की परम्परा, भगवान महावीर के निर्वाण का प्रसंग या दीपावली के प्रचलित होने का वर्णन[65] तथा आचार्य परम्परा का विशद वर्णन दिया गया है।

मनोरंजन के पौराणिक संदर्भ :

भारतीय कथा साहित्य को तीन भागों में बाँटा गया है : **1. उपेदशात्मक, 2. मनोरंजक, 3. शिक्षाप्रद**[66] जैन पुराणों में इन तीनो ही बातों को उचित समन्वयन पाया जाता है। पुराणों को हिन्दु व जैन दोनों परम्पराओं ने

अपने–अपने काल का विश्वकोष बनाने का प्रयत्न किया है। इन पुराणों में धर्म व नीति के अतिरिक्त नाना कलाओं का विस्तार पाया जाता है। जैन पुराणों में चार पुरूषार्थों का ढाँचा भली भाँति मिलता है और मनोरंजन तत्व कही न कही इन पुरूषार्थों का उचित तरीके से निर्वाह करने में मददगार भूमिका निभाता है। प्राचीन भारत में लोगों का जीवन आजकल की अपेक्षा सुखी था, उनको जीवन संग्राम में हम लोगों की भाँति अधिक व्यस्त नहीं रहना पड़ता था। ऐसी स्थिति में लोगों ने समय–समय पर आनंद की सृष्टि के लिए मनोविनोद के रूप में कलाओं का विकास किया।

जैन पुराणों को भारतीय संस्कृति का विश्वकोष कहा गया है जिनमें विभिन्न कथाओं के माध्यम से धार्मिक जीवन के विविध पक्षों के साथ ही सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और कलापरक विषयों की विस्तारपूर्वक जानकारी मिलती है। इन्ही विषयों में मनोरंजन की भी पूर्णरूपेण छाप पुराणों में दिखलाई पड़ती है। इस शोध प्रबंध में हमने उन्ही तत्वों को खोजने का प्रयास किया है। मनोरंजन विविध रूपो में–सामाजिक, मानसिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, शारीरिक इत्यादि में पुराणों में कथा के माध्यम से परिलक्षित हुआ है। वास्तव में मनोरंजन की सामग्री के बिना साहित्य की रोचकता अधुरी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हरिवंश पुराण 66/52–53
2. वही, प्रस्तावना पृ. 14–16
3. कैलाशऋषभचंदः, जैन पुराण साहित्य प्र. 72–73
4. आदिपुराण, प्रस्तावना पृ. 12
5. दिशताभ्यधिके समासहस्ते समतीतेऽर्द्ध चतुर्थ वर्षयुन्ते।
   जिन भास्कर वर्द्धमान सिद्धेश्चरितं पद्म मुनेरिदं निबद्वम।।पद्मपुराण 125–128।
6. आदिपुराण, प्रस्तावना पृ. 3, देवीप्रसाद मिश्रःजैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन पृ. 10
7. हरिवंशपुराण, प्रस्तावना पृ. 15
8. शाकेष्ववदशतेषु सप्तसु दिषं पच्चोत्तरे शूत्तरां
   पातीन्द्रायुधनाग्नि कृष्णनृपजे श्री वल्लये दक्षिणाम्।
   पूर्वा श्रीमदवन्ति भूभृति नृपे वत्सादिराजे परां
   शौर्याणा मधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति।। 52।।
   कल्याणैः परिवर्धमान विपुल श्री वर्धमानेपुरे
   श्री पार्श्वालय नन्नराजवस्तौ पर्याप्त शेषः पुरा।
   पश्चाछोस्तटिका प्रजा प्रजवित प्राज्यार्चनावर्जने
   शान्तेः शान्त ग्रहे जिनाय रचितो वंषो हरीणामयम्।। 53।।हरिवंशपुराण 66/52–53
9. आदिपुराण, प्रस्तावना पृ.8,देवी प्रसाद मिश्र :जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन प्र. 11
10. पद्मपुराण 5/212–216, 9/185–189, 20/18–30, हरिवंशपुराण 60/142–163, आदिपुराण 20/36–60 उत्तरपुराण 7/476–478
11. पद्मपुराण 5/222–223, आदिपुराण 20/124–204, 36/1–220, उत्तरपुराण 76/282–288, हरिवंशपुराण 60/286–287, 60/563–565

12. पद्मपुराण 20/205–242, हरिवंशपुराण 60/290, उत्तरपुराण 76/485–486
13. पद्मपुराण 20/205–228, हरिवंशपुराण 60/288–289, उत्तरपुराण 68/666–777, 57/90–94, 71/124–128
14. पद्मपुराण 20/242–248, हरिवंशपुराण 60/291–292
15. हरिवंशपुराण 60/598
16. वही 60/534–536
17. पद्मपुराण 3/75–88, हरिवंशपुराण 7/125–170, उत्तरपुराण 70/463–466
18. तिलोय पण्णत्ति 4/1472
19. जिनैन्द्र वर्णीः जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष, भाग 4, वाराणसी 1973, प्र.8–2647. आदिपुराण प्रस्तावना पृ. 12
20. आदिपुराण प्रस्तावना पृ. 8, हीरालाल जैनः भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान प्र.65–170, देवी प्रसाद मिश्रः जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन प्र.15–16
21. वही, पृ. 170, वही, पृ 15–16
22. पद्म पुराण, 123/128
23. वही, प्रस्तावना पृ. 10
24. उत्तरपुराण, प्रास्ताविक पृ. 10
25. आदिपुराण 4/74
26. वही, 4/180
27. वही ,4/181
28. वही, 4/197
29. वही ,5/1
30. वही, 5/9
31. वही, 6/170
32. वही, 6/191

33. वही, 6 / 195

34. वही, 6 / 65

35. वही, 6 / 125

36. वही, 6 / 149

37. वही, 10 / 210

38. वही, 10 / 22–27

39. वही, 37 / 149

40. वही, 37 / 59

41. वही, 37 पर्व

42. वही, 37 / 167

43. वही, 45 / 182–185

44. उत्तरपुराण, प्रस्तावना पृ. 14

45. वही, 64 / 157–159

46. वही, 64 / 160

47. वही, 64 / 162–163

48. द्विशताभ्यधिके समासहस्ते समतीतेऽर्द्ध चतुर्थवषे युक्ते।
 जिन भास्कर वर्धमान सिद्धेश्चरितं पद्मुनेरिदं निबद्वभ्।। पद्मपुराण 123 / 128।

49. वर्धमान जिनैन्द्रोक्त सोऽयनर्थो गणेश्वरम्।
 इन्द्रभूति परिप्राप्तः सुधर्म धारणी भवम्।। 4।।
 प्रभवं क्रमतः कीर्तिः ततोऽनुत्तरवाग्मिनम्।
 लिखितं तस्य सम्प्राप्य रवेर्यत्नो प्यमुद्गतः।। पद्मपुराण 1 / 42।

50. निदिंष्ट सकलैर्नतेन भुवनै श्री वर्द्वमानेन यत्।
 तत्वं बासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च।
 शिष्येणोत्तर वाग्मिना प्रज्ञाप्ति पद्मस्य वृत्तं मुनेः।
 श्रेयः साधु समाधि वृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मड़लम्।। पद्मपुराण 123 / 167।

51. पद्मपुराण 5 / 40

52. वही, 5/100

53. वही, 5/100

54. वही, 5/296–300

55. वही, 5/349

56. वही, 5/358–359

57. वही, 5/104–106

58. वही, 6/108–110

59. पद्मपुराण, 6/228

60. वही, 6/229

61. वही, 6/230

62. हरिवंशपुराण, 66/22–33

63. वही, 66/52–53

64. बुहभण सहस्यदूइयं हरिवंसुप्पत्तिकारणं पढ़मं।

वंदामि वंदियं पिहु–वृदिवंसं चेव विमलमयं।। कुवलय माला 38।।

65. हरिवंशपुराण, 19/287–296

66. वाचस्पति गेरोलाः संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास प्र. 882

अध्याय–चतुर्थ

मनोरंजन

4.1 मनोरंजन का अर्थ

4.2 मनोरंजन की अवधारणा

4.3 मनोरंजन : उद्भव एवं विकास

4.4 मनोरंजन के विविध रूप

4.5 मनोरंजन के उद्देश्य

चतुर्थ अध्याय

मनोरंजन अर्थ :

मनोरंजन शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है। **मनः+रंजन (रंज धातु व ल्यूट प्रत्यय) अर्थात् मन का रंजन करना व मन को आनंदित करने वाला।** कोई ऐसा कार्य या बात जिससे समय बहुत ही आनंद पूर्वक व्यतीत होता है। वस्तुतः मनोरंजन एक ऐसी क्रिया है जिसमें सम्मिलित होने वाले को आनंद आता है एवं मन शान्त होता है। मनोरंजन स्वयं हिस्सा लेकर भी हो सकता है या कुछ लोगों को कुछ करते हुए देखने से भी हो सकता है। मनोरंजन को विविध अर्थों में समझा जा सकता है अर्थात् मनोरंजन शब्द के कई पर्यायी है–**आमोद–प्रमोद करना, बहलाना, मन लगाना, क्रीड़ाकक्ष, मनबहलाना, मजा करना, खेलना, रमना, क्रीड़ागृह, मनोरंजनपूर्ण, विविधा, इन्द्रधनुषी कार्यक्रम, रंगीली शाम, आनंद, क्रीड़ा कौतुक, विनोद, आमोद, प्रमोद, रंगरस, राग, बहलाव, मनोरंजन करना, रंग, विहार, हास्यकौतुक, क्रीड़ा, नाचरंग, सैर, मौज, मनबहलाव, रति, विलास, आनंदक्रीड़ा, रंजन, मनोरंजन कर्म, रमण, मनोविनोद, विविध मनोरंजन आदि।**

उपरोक्त सम्पूर्ण शब्द मनोरंजन शब्द की किसी न किसी रूप में अलग–अलग परिस्थितियों में व्याख्या करते है। मनोरंजन को अंग्रेजी में एंटरटेनमेट कहा जाता है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार : Entertainment is a form of activity that holds the attention and interest of an audience, gives pleasure and delight. It can be an idea or task, but is more likely to be one of the activities or events that have developed over thousands of years specifically for the purpose of keeping an audience attention!

मनोरंजन की अवधारणा :

सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम के आदर्शों को ग्रहण करने वाली भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विकास के साथ ही मनोरंजन के विविध तत्त्वों का उद्भव भी विविध रूपों में परिलक्षित होता हे। वास्तव में किसी भी राष्ट्र, जाति की संस्कृति की विशेषताएँ जानने के लिए उनके विश्राम काल में की गई

क्रियाओं का अध्ययन करना अनिवार्य है। प्राचीन भारत में विश्राम काल के दौरान ही नयी–नयी कलाएँ अपने चरम उत्कर्ष पर होती थी और लोगों को आनंद प्रदान कर उनका मनोरंजन करती थी।

यथार्थत : संसारिक हेर फेर के चक्कर में इस जीव को कहीं भी मानसिक शांति नही हो पाती। मनुष्य अपने घर–संसार, गृहस्थी की अभिलाषाओं को पूरा करने के प्रयास हेतु दिन–रात काम में ही लगा रहता है। संसार के चक्र में मनुष्य को कहीं भी मानसिक सुख प्राप्त नहीं हो पाता। इसी सुख की प्राप्ति के लिए मनोरंजन का आश्रय लेना होता है। मूलत : मानव का मन एक ऐसा विचित्र तत्व है जो अधिक समय तक एक ही विषय पर स्थिर नहीं रह पाता, एकरूपता से तंग आ जाता है। चूंकि परिवर्तन को संसार का नियम कहा गया है। अतः स्थिति में परिवर्तन से एकरूपता में भी परिवर्तनीय अवश्यक होता है। आनंद प्रदान करने एवं उत्साह जाग्रत करने के प्रयोजन से परिवर्तन आवश्यक है ऐसी मानवीय परम्परा निरन्तर चलती रहती है। मनोरंजन के मनुष्य जीवन से गायब होने पर जीवन जीना दूभर हो जाएगा। अतः श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने स्वास्थ्य, संवेगों एवं मानसिक शक्तियों का विकास करें।

मनुष्य के बाल्यकाल से बुढ़ापे अर्थात् मृत्युपर्यन्त टेंशन रूपी बीमारी चलती रहती है जिससे उसके सोचने की शक्ति एवं अन्तःमन में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। मनुष्य को इन दुष्चक्रों से बचाने का एक मात्र उपाय मनोरंजन का अपने जीवन में एवं वातावरण में आश्रय लेना है। क्योंकि मनोरंजन ही एक ऐसा टॉनिक है जिसमें मनुष्य विषम मानसिक परिस्थितियों में कम से कम अल्प अवधि के लिये ही चिंताविहीन हो जाता है। इस तरह मनुष्य के मन में पुनः जीने की ललक, आशा, उत्साह, प्रेरणा आदि मनोवैज्ञानिक सद्गुणों का संचार हो जाता है।

अतः मनोरंजन मनुष्य के जीवन का वह छायादार वृक्ष है जिसका आश्रय लेने पर व्यक्ति मानसिक, शारीरिक एवं भौतिक समस्याओं में शीतलता प्राप्त कर लेता है। मनुष्य जीवन में नया उत्साह, उमंग, प्रेरणा, कर्मण्यता के उद्विकास

करने हेतु एवं जीवन की विविध समस्याओं, विषम परिस्थितियों, कुविचारों, कुप्रवत्तियों का अंत करने के लिए मनोरंजन को बहुआयामी स्त्रोत माना गया है।

मनोरंजन : उद्भव एवं विकासः

मनोरंजन के उद्भव को मानव सभ्यता के उत्थान के साथ सम्बन्धित किया जा सकता है। आनंद की सृष्टि के लिए प्रत्येक काल में मानव ने मनोरंजन को जीवन में सहजता से ग्रहण किया है। वस्तुतः मनोरंजन का उद्भव भारतीय इतिहास में उस दौर से देखा जा सकता है जबकि आदिवासियों की संस्कृति एवं सभ्यता पल्लवित हुई। विद्वानों का ऐसा मानना है कि आदिवासियों के मनोरंजन के साधन प्रकृति की शरण में आये हुए जीव–जन्तुओं के समान नैसर्गिक होते थे। मनोरंजन के साधन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है :

1. स्थान परिवर्तन से मनोरंजन अर्थात् मनोरंजन के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करना या घूमना अतः इस दौड धूप के माध्यम से आनंद का सृजन करना।
2. जैन दर्शन के अनुसार आहार संज्ञा प्रत्येक जीव की होती है। अतः अपनी भूख–प्यास शांत करने के उद्देश्य से होने वाला मनोरंजन अर्थात् इस प्रयोजन से मन बहलाव के साथ ही साथ उदरपूर्ति हो जाती थी सह–भोज का प्रचलन होने के कारण भूख–प्यास स्वभावतः शांत हो जाती थी।
3. रहने के लिए स्थान की गवेषणा करना भी मनोरंजन का माध्यम था। उछल–कूद द्वारा वे इस समस्या का भी निदान कर लेते थे।
4. यौन आवश्यकताओं की पूर्ति एवं इन्द्रियो को संतुष्ट करना भी मनोरंजन का साधन माना जाता था।
5. अपनी रक्षा करना अर्थात् हिंसक जानवरों एवं मानव से अपनी रक्षा करना एवं भय को दूर करने से सम्बंधित मनोरंजन। अतः कुश्ती, शिकार को इस संदर्भ में देखा जा सकता हैं।

सभ्यता एवं संस्कृति की निरंतर प्रगति के फलस्वरूप आदिम मानव के जीवन में भी परिवर्तन हुए। आदिम मानव के अनुभव एवं कालानुसार परिवर्तन से मनोरंजन के स्वरूपों में भी तीव्र विकास हुआ। अब कई शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं के निवारणार्थ एवं जीवन में सुख, शांति, उत्साह, कौतुहल आदि मानवीय गुणों के विकास के लिए अनेक मनोरंजनात्मक साधनों का प्रादुर्भाव हुआ। इस संदर्भ में नृत्य, गीत, वाद्य, अभिनय उल्लेखनीय है। इस प्रकार मानव जाति के उद्‌विकास के इतिहास में मनुष्य मनोरंजन द्वारा वास्तविक जीवन की कठिनाईयों को सुलझाते थे। इसी अवस्था को मनोरंजन की उत्पत्ति की प्राथमिक अवस्था कहा जा सकता है। मनोरंजन का विकास कालक्रमानुसार विकसित होता गया। प्राचीन भारतीय साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक स्त्रोतों के आधार पर मनोरंजन के विकास की प्रक्रिया का अध्ययन किया जा सकता है।

सैन्धव काल : इतिहास में प्रसिद्व दो प्राचीन सभ्यताएँ हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो के उत्खनन में खण्डहरों से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर सैन्धव कालीन जीवन स्तर का आकलन उल्लेखनीय है:

1. आक्रमणात्मक हथियारो की प्राप्ति अर्थात् मछली फंसाने के काँटों का मिलना इसी तथ्य की और संकेत करता है कि वे सुरक्षात्मक दृष्टि से उनका प्रयोग करते थे अथवा मनोरंजन के रूप में शिकार करते थे।
2. बालोपयोगी खिलौनों की उपलब्धता : मिट्‌टी के बने हुए खिलौने जैसे कूबड बैल अथवा गौ और फूदकने वाल चिडियाँ, गाडी पर सवार चिड़ियाँ, सींग वाली चिड़ियाँ, बैल के कुबड़ में एक छेद जिसमें तागा डालकर खेलना, गाडी में रस्सी बांधना, विभिन्न आकृति की सीटियाँ, झुनझुने, गुरिया एवं मिट्‌टी की निर्मित कुर्सियों का मिलना उस काल में बच्चों के मनोरंजन के साधनों का उल्लेख करता है।
3. नर्तकी की मूर्ति नृत्य कला का संकेत करती है। वाद्य यंत्रों की उपलब्धता के आधार पर कहा जा सकता है कि सैन्धव निवासी

आमोद–प्रमोद के प्रेमी थे अर्थात् गीत के साथ वाद्य का चलन रहा होगा।

4. स्टेडियम का मिलना सामाजिक मनोरंजन का प्रमुख आधार रहा होगा।
5. बौद्धिक खेलों का विकास अर्थात् उत्खनन में प्राप्त पासा जो कि इस युग का प्रमुख खेल था, इसका प्रयोग चौपड़ अथवा जुए के लिए होता था इसके अतिरिक्त शतरंज भी लोकप्रिय खेल था।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सैन्धव निवासियों ने मनोविनोद के लिए एवं जीवन में उमंग, खुशी, प्रेरणा, उत्साह के आयोजन से मनोरंजन के साधनों का आश्रय लिया।

वैदिक काल (पूर्व वैदिक एवं वैदिक काल 600 ई.पू. तक): इस काल को मानव सभ्यता का उत्तरोत्तर विकास का युग कहा जाता है। इस काल में मनोरंजन के साधन पूर्व काल की अपेक्षा अधिक विकसित हो गए थे। ऋग्वैदिक आर्य आमोद–प्रमोद का जीवन व्यतीत करते थे। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण पूर्णतया उपयोगितावादी था। वे नृत्य एवं संगीत में आनंद लेते थे। रथदौड़, घुड़दौड तथा पासा खेलना भी उनके आमोद–प्रमोद के साधन थे। जुआ भी खेला जाता था, द्युतक्रीड़ा के समय लोग हार–जीत के दाँव लगाते थे। एक स्थान पर जुआरी पुत्र को पिता द्वारा डाँटे जाने का उल्लेख मिलता है।[2] यह तथ्य इंगित करता है कि मनोरंजन के साधनों के दुष्परिणाम भी थे। वैदिक काल में मनोरंजन के धार्मिक स्वरूपों का अत्यधिक विकास हुआ। परिणामतः देवताओं की देखा देखी मानव समाज में भी दौड़ की प्रतियोगिता करने की प्रथा चल पड़ी। इस संदर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि प्रतियोगिता में प्रथम आने पर शासक की और से पुरस्कार दिया जाता था।[3]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वाजपेय यज्ञ के अवसर पर रथों की दौड़ करने की प्रथा प्रचलित थी इसमें यजमान की जीत होना अनिवार्य थी।[4] तैत्तिरीय संहिता में ऐसा उल्लेख मिलता है कि राजसूय यज्ञ के प्रसंग में

औपचारिक रूप से घुड–दौड़ करने की रीति थी।[5] इस काल में ललित कला का भी विकास हो चुका था। स्त्री तथा पुरूष दोनों झांझ–मंजीरे के बाजों के साथ नृत्य में भाग लेते थें अन्य वाद्यों में दुन्दुभि, कर्करि, वीणा, बांसुरी आदि का उल्लेख मिलता है। कीथ के अनुसार पूर्व वैदिक काल में धार्मिक नाटकों का भी प्रदर्शन होता था। इस काल में मनोरंजन के अन्य साधन के रूप में **घुडदौड[6], आखेट[7], ललित कला[8], आख्यानों का वर्णन[9], नाटक[10], जादूगरी[11], रूचिकर हस्तकला[12], वंश–नर्तिन[13], मुष्टि युद्ध[14], अक्षक्रीड़ा[15], सुरापान[16]** आदि विशेष रूप से प्रचलित थे। अतः पूर्व वैदिक एवं वैदिक काल में मनोरंजन के अनेक स्वरूपों का विकास हो चुका था।

बौद्ध काल : इस काल में भी मनोरंजन के साधनों का प्रयोग अपने तीव्र चरम पर था। इस काल में राजनैतिक क्षेत्र में युद्ध के प्रयोजन को अतिमहत्त्व नहीं मिला अतः मनुष्य की अंतरात्मा में निहित युद्ध लिप्सा को शांतमय रूप देने के प्रयोजन से मल्ल युद्ध[17] का विकास हुआ जिसका जातक ग्रन्थों में अखाडें में लड़ना, ताल ठोंक कर कूदने फॉदना और एक–एक कर गरजने का वर्णन मिलता है।[18] प्रतियोगिता के लिए नए खेलों जैसे मुष्टि युद्ध[19] एवं पशुयुद्ध[20] का वर्णन मिलता है।

पालि साहित्य में वर्णित मनोरंजन के साधन के रूप में **आखेट[21], कुश्ती[22], बतकही[23], उद्यान यात्रा[24], रास[25], जलकेली[26], पालतू जन्तु[27], मायाकार[28] या जादूगर, शतरंज[29], गान्धर्व एवं नाटक[30], सुरापान[31], जुआ[32], वैशिकी[33], आदि वर्णित है। इसके अतिरिक्त प्राकृत साहित्य में वर्णित मनोरंजन के साधन के रूप में तीन श्रेणी की बाजारू स्त्रियाँ[34], स्नानागार[35], बालोपयोगी क्रीड़ा कौतुक[36], किशोरोपयोगी क्रीड़ा–कौतुक[37], उद्यान यात्रा[38], ललित गोष्ठी[39], गांधर्वकला[40], नृत्य नृत[41] तथा चित्रकारी[42]** आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तत्कालीन समाज में व्यायामशाला[43], बच्चों के खेलकूद[44], रास[45], गुलकिला व गेंद खेलना[46], कथा[47] का भी उल्लेख है।

मौर्य काल : इस काल में मनोरंजन के साधनों का अत्यधिक विकास हो चुका था। मौर्यकालीन समाज में रथ–दौड़, घुड़–दौड़, सांड युद्ध, हस्ति युद्ध,

मृगया, नाटक, आख्यान, नृत्य, शतरंज, चित्रकारी, यज्ञ, पूजा, तीर्थयात्रा आदि मनोरंजन के साधन प्रचलित थे। तत्कालीन समाज में कई विषमताएँ एवं धार्मिक जटिलताएँ उत्पन्न हो गई थी जिससे जीवन में अशांति का विषाक्त वातावरण व्याप्त था। अतः उमंग, आनंद, खुशी की प्राप्ति के उद्देश्य से मनोरंजन के साधनों का पूर्ण विकास हो चुका था। कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र[48] में इस विषय पर विस्तृत चर्चा मिलती है।

गुप्त काल : गुप्त काल में सामाजिक व्यवस्था चरम पर थी। तत्कालीन समाज में मनोरंजन के साधनों में बालक्रीड़ा, कुश्ती, ललित कला, द्यूत–क्रीड़ा, मल्लयुद्ध, पशुयुद्ध, उत्सव समारोह, नाटक आदि प्रचलित थे।[49] तत्कालीन ग्रंथों मे इस विषय पर विशद वर्णन है। वात्स्यायन के कामसूत्र में 64 ललित कलाएँ है जो मनोरंजन की आधार है।[50]

गुप्तोत्तर काल एवं राजपूत युग : इस समय समाज मे राजनैतिक भावना का तीव्र प्रादुर्भाव हो चुका था। अतः मनोरंजन के साधन भी सामाजिक व्यवस्था की अपेक्षा राजनैतिक जीवन से सम्बंधित थे। मल्लयुद्ध, रथदौड, घुडदौड़, हाथी दौड, का अधिकाधिक प्रचलन था जो कि अधिकांशतः राजाओं के महलों एवं युद्ध क्षेत्र से सम्बन्धित थे।

महाकाव्य कालीन ग्रन्थों में रामायण एवं महाभारत में मनोरंजन के साधनों का उल्लेख सामाजिक जीवन में प्रचुरता से किया गया है। गीत संगीत एवं वाद्य, मल्लयुद्ध, बालक्रीड़ा, घुडदौड, रथदौड एवं जुआ आदि उल्लेखनीय है। अतः ऐतिहासिक साक्ष्यों से प्रमाणित तथ्यों का अवलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मनोरंजन मानव जीवन का अनिवार्य अंग था जिसका उद्भव एवं विकास सभ्यता के विकास के साथ होता गया तथा कालक्रम से अर्थात् सैन्धव युग से प्रारम्भ होती हुई मौर्यकाल, गुप्तकाल और परवर्ती कालों तक मनोरंजन के तत्वों का विकास होता गया।

मनोरंजन के विविध रूप : मनोरंजन को मानव जीवन का अपरिहार्य अंग माना गया है। मनोरंजन का विकास मानव सभ्यता के साथ–साथ ही हुआ है।

अतः मनोरंजन का जीवन के विविध क्षेत्रों पर प्रभाव होना निश्चित है। तत्कालीन देश, काल की परिस्थिति का प्रभाव सम्पूर्ण मानव सभ्यता पर पड़ता है अतः विषम परिस्थितियों जटिल समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए कई रूपों का आश्रय मनोरंजन की महत्ता वर्णित करता है। मनोरंजन के मुख्य स्वरूप निम्न प्रकार से है :

1. **शारीरिक मनोरंजन**
2. **सामाजिक मनोरंजन**
3. **बौद्धिक मनोरंजन**
4. **मानसिक मनोरंजन**

उपरोक्त स्वरूपों का प्रादूर्भाव मनोरंजन के उद्भव काल की परिस्थितियों में ही हुआ है। अन्य प्रकार के मनोरंजन जो कालक्रम से सभ्यता के विकास से विकसित हुए वे निम्न हैः

1. **राजनैतिक मनोरंजन**
2. **आर्थिक मनोरंजन**
3. **धार्मिक एवं आध्यात्मिक मनोरंजन**

1. **शारीरिक मनोरंजन :** मनोरंजन के इस रूप का सम्बंध शरीर से माना जाता है। पुरानी कहावत के अनुसार यदि शरीर स्वस्थ है तो मन भी भला चंगा रहता है। अतः शरीर को स्वच्चता प्रदान करने, आनंद प्राप्ति तथा मानसिक शक्तियों का विकास करने के लिए शारीरिक मनोरंजन की महती भूमिका है। शारीरिक मनोरंजन के कुछ प्रमुख साधन निम्न प्रकार है :–
    1. **प्रहरण क्रीड़ा (मल्ल युद्ध) कुश्ती।**
    2. **दौड प्रतियोगिता–रथ दौड, घुड दौड आदि।**
    3. **व्यायाम।**
    4. **कन्दुक क्रीड़ा या गेंद खेलना।**
    5. **स्नानागार या जन्ताघर।**

6. रथदौड, घुडदौड, बैलदौड।
7. जलक्रीड़ा।
8. पक्षी पालना एवं लड़ाना।
9. पशु पालन करना एवं लड़ाना आदि साधन शारीरिक मनोरंजन के क्षेत्र में उल्लेखनीय है।

2. **सामाजिक मनोरंजन** : मनाव सभ्यता की आदिम अवस्था से ही समाज में विभिन्न प्रकार के सामाजिक मनोरंजन का उद्भव हो चुका था जिनका कालान्तर में उत्तरोत्तर विकास होता गया। मनोरंजन के सामाजिक स्वरूप में निम्न साधन वर्णित है :

    1. संगीत – इसमें गीत, नृत्य, गायन, वादन, नाटक वर्णित है।
    2. उत्सव – बसन्तोत्सव, विभिन्न मासोत्सव, अष्टान्हिका महोत्सव
    3. खान–पान – (सुरा पान, मछली, निरामिष भोजन)
    4. सौन्दर्य प्रसाधन – वस्त्र, आभूषण, केष विन्यास, श्रृंगार आदि।
    5. बालोपयोगी मनोरंजन

    इसके अतिरिक्त उद्यान यात्रा, वनविहार, दोलाकेलि, पारिवारिक उत्सव, क्रीड़ा पर्वत, सूत्र–क्रीड़ा, नट, विदूषक, मल्ल, नर्तक आदि भी मनोरंजन के साधन थे।

3. **मानसिक अथवा बौद्धिक मनोरंजन** : मनोरंजन के इस रूप का सीधा सम्बंध मानसिक चेतना से है। इसके अन्तर्गत द्यूतक्रीड़ा, जादूगरी, चित्रकला, आख्यानों का वर्णन, उद्यान यात्रा, वनविहार आदि है। इसके अतिरिक्त वात्स्यायन ने पहेली, समस्यापूर्ति, पुस्तक वाचन, प्रतिमाल, शब्दज्ञान आदि का वर्णन किया है। वस्तुतः मानसिक मनोरंजन के माध्यम से दिमागी कसरत के साथ ही साथ मानसिक शक्तियों का भी विकास होता है।

मनोरंजन के अन्य रूप :

1. राजनैतिक मनोरंजन : मनोरंजन के इस रूप का विशिष्ट महत्त्व है। इस मनोरंजन का आयोजन मुख्य रूप से राजा, राजघराने के सदस्य, मंत्री मनोविनोद हेतु किया करते थे। राज्यारोहण, अभिषेक युद्ध आदि अवसरो पर आयोजित उत्सवों का मुख्य प्रयोजन राजा, राजदरबारियों के मनोरंजन के साथ सामान्य जनता के मनोरंजन से भी था। राजनैतिक मनोरंजन के माध्यम से कला एवं संस्कृति के विकास के साथ के ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों की मधुरता का भी संकेत मिलता है। बाणभट्ट के अनुसार राजसभा में सभी कार्यो के लिये तथा मनोरंजन के लिये भी सात अंगों जैसे विद्वान, कवि, भांट, गायक, मसखरे, इतिहासज्ञ एवं पुराणज्ञ सदैव उपस्थित रहते थे।

2. आर्थिक मनोरंजन : वैदिक काल से लेकर राजपूत काल तक के सामाजिक जीवन में बहुत से ऐसे मनोरंजन के साधन थे जो समाज का मनोरंजन तो करते ही थे साथ ही आर्थिक मदद भी करते थे। प्राचीन भारतीय ग्रंथों से अधिकाधिक साक्ष्य एवं संदर्भ उपलब्ध होते है। जिनके माध्यम से मनोरंजन के साधनों के व्यावसायिक रूप में परिवर्तित होने की पुष्टि मिलती है। मनोरंजन के लिये अनेक आर्थिक क्रियाकलापों का आश्रय लेकर उन्हें जीविकोपार्जन का आधार बनाया जाता था।

ये आर्थिक कलाएँ दोहरी भूमिका निभाती थी। जिन उद्यमियों द्वारा इनको व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता था उनकी आजीविका अथवा भरण–पोषण का साधन थी तथा दूसरी तरफ समाज के विभिन्न वर्गों के लिए मनोरंजन का साधन बनी। आर्थिक मनोरंजन के क्षेत्र में निम्न साधन उल्लेखनीय है। 1. नौटंकी, नाटक, तमाशों का प्रदर्शन, 2. गणिका, 3. शिकार, 4. मुष्टिका युद्ध आदि।

3. धार्मिक एवं आध्यात्मिक मनोरंजन : भारतीय संस्कृति में 84 लाख देवी–देवताओं की मान्यता रही है। प्राचीन काल में मानव का जीवन सरज एवं

सरल था। अतः धार्मिक वातावरण एवं विश्वास अतीत काल से व्याप्त है। अतः सामाजिक एवं धार्मिक तालमेल के इस रूप में मनोरंजन का प्रमुख स्थान रहा है। जिसके द्वारा दोनों प्रयोजनों की प्राप्ति होती है अर्थात् धार्मिक प्रयोजन के साथ साथ लोगों का मनोरंजन भी होता है।

धार्मिक मनोरंजन के क्षेत्र में पूजा–पाठ, कीर्तन, तीर्थ यात्रा, याज्ञिक क्रियाएँ, स्नान–दर्शन, पंचकल्याणक महोत्सव, व्रत–उपवास आदि। इन सभी धार्मिक क्रियाओं में जनसमूह एकत्रित होकर आनंद की अनुभूति करता है जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुख शांति का आभास कराता है यही मनोरंजन का प्रयोजन है।

निष्कर्ष : मनोरंजन के उपरोक्त विविध रूप प्राचीन भारतीय सभ्यता के विकास की शिशु अवस्था से अंकुरित हुए एवं सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास के साथ–साथ कई परिवर्तनों को अपने में समाविष्ट कर पल्लवित हुए।

मनोरंजन का उद्देश्य : मनोरंजन का सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक ग्रंथो एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों से स्वतः प्रमाणित है कि मनोरंजन मानव जीवन का अभिन्न अंग रहा है। मनोरंजन के उद्देश्य निम्न प्रकार से है :

1. मानवीय सद्गुणों का विकास करना।
2. शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता।
3. प्रतिष्ठा, उत्साह, उमंग प्रेरणा की प्राप्ति।
4. जीवन में नई आशाओं एवं चेतनाओं का संचार करना।
5. पूर्वजों से विरासत में प्राप्त कला–कौशल की परम्पराओं को अक्षुण्ण रखना।
6. मानवीय अन्तर्निहित गुणों एवं शक्तियों को विकसित करना।
7. कुप्रवृत्तियों, विसंगतियों एवं दोषों का अंत करना।
8. कार्यक्षमता एवं क्रियाशक्ति का विकास करना।

अतः मनोरंजन का सामाजिक परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. The Oxford English Dictionary, Oxford University Press, 1971, Vol.L PP 213/14
2. ऋग्वेद, 2/29/5, पितेव कितवं शशात्य।
3. ऐतरेय ब्राह्मण, 4/7
4. शतपथ ब्राह्मण, 5/1–5/2
5. तैत्तिरीय संहिता, 5/15–10, ऋग्वेद, 4/24/8, 5/37/7, 6/24/6, 8/80/8, अथर्ववेद, 2/14/6, 13/24, शतपथ ब्राह्मण, 1/8/15, बाजसनेयी संहिता, 10–17
6. वही, 5/15–10
7. ऋग्वेद 8/45/1, 8/2/6, 9/83/4, 10/40/60, 10/86/4
8. ऋग्वेद, 1/7/1, 1/43/4, 2/35/13, 6/47,29, 9/66/8, जैमिनीय उपब्राह्मण, 1/42, कौशितकी श्रोत सूत्र 1/10/1, 1/92/4, 18/3/2, कौशितकी ब्राह्मण, 29/5
9. ऋग्वेद, 10/85, 10/95, 7/18, अर्थववेद, 15/6/4, 10/95, 7/18, ऐतरेय ब्राह्मण, 3/35/1, शतपथ ब्राह्मण, 11/5/6–8, 13/4/3/2
10. वाजसनेयी संहिता, 30/6, तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3/4/2/1, 4/6/9/20, 11/5/6/8
11. ऋग्वेद, 1/35/10, 87/2, शतपथ ब्राह्मण, 10/5/2/20
12. ऋग्वेद, 1/39/14
13. वाजसनेयी संहिता, 30–31, तैतिरीय ब्राह्मण, 3/4/17/1
14. ऋग्वेद, 9/8/2, 5/5/8/4, अथर्ववेद, 5/22/4, 20/70/18
15. ऋग्वेद, 8/8/1, 10/34/8, वाजसनेयी संहिता, 30/18, तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3/4/16/1, 1/7/10/5, धम्म, 25/2
16. ऋग्वेद, 10/107/9, 8/2/12, शतपथ ब्राह्मण, 6/6/3/7, 9/4/4/8, 12/7/3/14, वशिष्ठ धर्मसूत्र, 20/1, गौतम धर्म सूत्र, 23/1/2

17. जातक, 7/80–82
18. वही, 4/81/2
19. सुमंगल विलासिनी, 1/85, जातक, 6/277
20. जातक, 1/336, 2/82
21. जातक, 1/149, 150, 163, 3/270, 4/268, 270, 437
22. सुमंगल विलासिनी, 1/89
23. जातक, 4/81/82
24. वही, 1/175, 3/81, 4/390
25. विनय पिटक, प्रष्ठ 349
26. जातक, 1/295, 323, 382
27. वही, 3/238
28. वही, 238
29. विनय पिटक, प्र. 349
30. जातक, 6/7
31. वही, 1/361, 362, 5/15, 466
32. वही, 1/25
33. वही, 1/104, 35, 1/122–4
34. कामसूत्र, 6/654, 6.5.25–27 जातक, 2/293
35. महावग्ग, 5/13/6
36. जातक, 4/30, धम्म पद ,1/179, 3/455, जातक, 6/6, विनयपिटक, प्र. 270
37. सुमंगल विलासिनी, 1/96
38. नायक धम्म कहाओ, 1/3/3
39. वही, 1/16/66–80
40. आचारांग सूत्र, 2/11/1–4, 4/4/40, 7/2/1–20
41. भगवती सूत्र, 3/1, 11/10, 14/8, 18/2
42. विनय पिटक, 5.6.36, जैन हरिवंश पुराण, 2.118, 62.70

43. औपपातिक सूत्र, 31, नायाधम्म कहाओ, 1.1.24, अतंगडदसाओ ,प्रष्ठ 20, कल्पसूत्र, 4.60

44. सूत्रकृतांग, 1.4.2.14

45. प्रश्न व्याकरण सूत्र, 2.4.10

46. सूत्रकतांग, 1/4/2, 14, अंतगडदसाओ, प्र. 72, विपाकसूत्र, 1/9 नायाधम्मकहाओ, 1/14/2

47. समवाय सूत्र, 4/1, आचारांग सूत्र, 2/11/4

48. अर्थशास्त्र, 2/27, एतेन नटनर्तक गायक वादक वाग्जीव नकुशीलबालवक सौमिक चारणानां स्त्रीव्यवहारिणां स्त्रियों गूढाजीवाश्च व्याख्याताः।

49. रघुवंश, 2/12, 6/9, 7/63, 8/33, 9/13, 14/35, 19/5, विष्णु पुराण, 4/13/30, वामन पुराण, 54/35, ब्रह्माण्ड पुराण, 4/37/8, मत्स्य पुराण, 24/38/31, मालाविकाग्निमित्र ,2/8, ऋतुसंहार, 2/1/4

50. कामसूत्र, प्रष्ठ 29/30

अध्याय–पंचम

प्राचीन भारतीय मनोरंजन के साधन

5.1 वैदिक, उत्तरवैदिक, मौर्य, गुप्त एवं परवर्ती काल में प्रचलित मनोरंजन के साधन

5.2 उल्लेख

5.3 महत्व

पंचम अध्याय

एक पुरानी कहावत है कि ''**स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है**'' और भले चंगे मन के लिए मनोरंजन अत्यावश्यक है। प्राचीन भारत के इतिहास को टटोलने पर मनोरंजन के साधनों की बहुत बड़ी सूची देखने को मिलती है। वास्तव में प्राचीन काल के लोग प्रकृति के बडे संवेगी होते थे, आनंद करने का अवसर मिलने पर दिल खोल कर आनंद मनाते थे और विश्राम के क्षणों का मनोरंजनात्मक रूप से सदुपयोग करते थे।

प्राचीन भारत में मनोरंजन के साधनों की विविधता के कारणों में आर्थिक ढाँचा भी उत्तरदायी है। क्योंकि प्राचीन समय में जमीन उर्वर होने के कारण देश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था, लोगो की जरूरतें वर्तमान समय की अपेक्षा सीमित थी अतः अल्प साधनों के द्वारा भी उनको संतुष्टि प्राप्त हो जाती थी। अतः प्राचीन समय में लोगों के जीवन में भौतिकता या कृत्रिमता का प्रवेश नहीं हो पाया था, सामाजिक जनसंख्या कम होने तथा सामाजिक वैमनस्यता का माहौल न होने के कारण लोगों को फुरसत के क्षण मिल जाते थे और ऐसे समय वे मनोरंजन के साधनो द्वारा महबहलाव करते थे। प्रत्येक उम्र के लोग अपनी–अपनी रूचि के अनुसार मनोरंजन के साधनों का चयन करते थे। कुछ लोग खेलकूद कर शारीरिक क्रियाशीलता द्वारा मनोरंजन करते थे। इनमें दौड प्रतियोगिता, कुश्ती, मल्लयुद्ध, शिकार, कन्दुक–क्रीड़ा, व्यायाम, स्नानक्रिया आदि सन्निहित है। मनोरंजन के इन साधनों के माध्यम से लोग खाली समय में भी शरीर को स्वस्थ एवं क्रियाशील बनाए रखते थे।

प्रकृति प्रेमी मनोरम स्थानों पर भ्रमण एवं प्रकृति की अभूतपूर्व छठा निहारने हेतु वन क्रीड़ा या विहार, जलक्रीड़ा, उद्यानयात्रा का आनंद उठाते थे। इस समय वे कई मनोरंजनात्मक गतिविधियों को करते थे इनमें शालभंजिका, तालभंजिका, सहकार भंजिका, विसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्ष्वेडिका के वर्णन प्राचीन साहित्यों मे मिलते है। वस्तुतः मनोरंजन के उक्त साधनों के द्वारा लोग मन के मरूस्थल में हरी दूब उगाने का प्रयत्न करते थे। अपनी–अपनी रूचि के

अनुसार कुछ लोग धार्मिक कार्यों को करते थें। जैसे पूजा–पाठ, महोत्सव, तीर्थयात्रा आदि के द्वारा आनंद प्राप्त करते थे। दिमागी कसरत में रूचि लेने वाले काव्य सभा, आकर्ष, गोधूमपंजिका, गोष्ठी (पान गोष्ठी, कला गोष्ठी, पद गोष्ठी, काव्य गोष्ठी, जल्प गोष्ठी, नृत्य गोष्ठी, गीत गोष्ठी, वादित्र गोष्ठी, वीणा गोष्ठी) पाद पूरण, समस्या श्लोक पूरण आदि के द्वारा अपनी बौद्धिक प्रवृति को उजागर कर जनसामान्य का आमोद–प्रमोद करते थे। वहीं हाथ का कला–कौशल दिखाने में रूचि रखने वाले पट्टिका क्रीड़ा, माला पिरोना, चित्रकारी, मंदिर निर्माण, गुडिया बनाना, तक्षण क्रिया आदि के द्वारा रचनात्मक कार्य करते थे ये कार्य उनको मनोरंजन के साथ अजीविका भी प्रदान करते थे। खाली समय में लोग पशु–पक्षी को पालने, लड़ाने द्वारा भी मनोरंजन करते थे। इसी तरह माया जाल, नाटक, संगीत (गायन, वादन, नृत्य), झूला झूलना, बाजीगरी, जुआ आदि मनोविनोद के विशुद्ध साधनों के द्वारा लोग फुर्सत के क्षणों का सदुपयोग करते थे। इस संदर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि गृहस्थी की गाड़ी के दो पहिये स्त्री व पुरूष दोनों ही मनोरंजनात्मक परम्पराओं एवं व्यवस्थाओं को संचालित करते थे और सुखमय जीवन व्यतीत करते थे। मन बहलाव के निर्दोष साधनों में बाल–बच्चे, किशोर–वयस्क,वृद्ध सभी सम्मिलित होते थे। प्रत्येक काल में प्रचलित मनोरंजन के साधनों का वर्णन निम्न प्रकार हैः

दौड़ का आयोजन : रोम के वीभत्स एवं अमानवीय खेलों तथा प्राचीन यूनान में जिस तरह ओलम्पिक खेलकूद प्रचलित थे। हमारे देश में इस तरह के खेलकूदों का आयोजन वैदिक काल में नही था। फिर भी आर्य लोग वैदिक काल में पैदल दौड, रथ दौड, घुड दौड का आयोजन किया करते थे। वैदिक काल में पैदल दौड प्रतियोगिता की पुष्टि ऐंतरेय ब्राह्मण गंथ से मिलती है।[1] ऐतरेय ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि देवताओं के आपस में मतभेद को सुलझाने के लिए दौड प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता था तथा दौड़ में विजयी को पारितोषिक भी दिया जाता था।[2] पंचविंशति ब्राह्मण में भी दौड़ प्रतियोगिता से देवताओं की समस्या का निपटारा करने का उल्लेख है।[3] मतभेद सुलझाने के देवताओं के

इसी तरीके का अनुसरण मानव समाज द्वारा भी किया गया और मनुष्यों में भी दौड़ प्रतियोगिता का आयोजन होने लगा।

उत्तर वैदिक काल के किसी भी भारतीय साहित्य में दौड प्रतियोगिता का वर्णन नहीं मिलता है। मौर्यकाल में यूनानी लेखकों के लेखन के आधार पर दौड़ प्रतियोगिता का उल्लेख मिलता है। विन्सेन्ट स्मिथ ने तद्युगीन समाज में प्रचलित मनोरंजन के साधन के रूप में रथ दौड़ का भी वर्णन किया है।[4]

बौद्ध ग्रन्थों में 'समज्या' उत्सव का वर्णन मिलता है।[5] जिसमें रथ–दौड़, घुड–दौड़ प्रतियोगिताओं का आयोजन होता था। गुप्तकालीन रथों की दौड़ का वर्णन फाह्यान ने अपने यात्रा वृत्तांत में किया है।[6] गुप्तकाल के बाद परवर्ती कालों में इस तरह के आयोजनों का होना समाप्त प्रायः हो गया था फिर भी कथासरित्सागर[7] एवं जैन हरिवंश पुराण[8] में अनेक वृत्तान्त मिलते है। वर्तमान में रथ–दौड़ की प्रतियोगिता तो समाप्त हो चुकी है लेकिन पैदल–दौड़ एवं घुड–दौड़ के आयोजन समग्र विश्व में देखने को मिलते है।

कुश्ती/मल्लयुद्ध : प्राचीन भारतीय मनोरंजन के साधन के रूप में कुश्ती का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कुश्ती वस्तुतः एक प्रकार का कृत्रिम युद्ध कहा जा सकता है। जिससे मनुष्य तथा जानवर अपनी शूरवीरता का प्रदर्शन करते है यह यौद्धिक मनोवृत्ति को शांत करने का प्रमुख साधन है। इस खेल की प्रमुख आवश्यकता खिलाड़ी या मल्लों के नियमित व्यायाम, अभ्यास, संयम, एकाग्रचित्तता, शारीरिक बल के साथ दांव पेंचों का प्रायोगिक ज्ञान से है। प्राचीन ग्रंथों में कुश्ती के संदर्भ में समुचित विवरण मिलता है। वैदिक कालीन ग्रंथों ऋग्वेद[9] तथा अथर्ववेद[10] से मुष्टि युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है ज्ञात होता है कि मुक्का मुक्की की यह प्रथा मनोरंजन तो करती ही थी साथ ही युद्ध में शत्रुओं को हराने हेतु भी मुष्टियुद्ध किया जाता था।

महर्षि पाणिनि के तदस्याम् 'प्रहरणमिति क्रीडायाम्[11] सूत्र के अनुसार खेल–खेल में जिस शस्त्र (मौष्टा, दाण्डा) आदि का उपयोग किया जाता था उसी के नाम पर खेल का नाम पड़ता था जैसेः–''केशाकेशि'', ''कचाकचि'',

''दण्डादण्डि'', ''मुशलामुशलि'' इत्यादि शास्त्रों के द्वारा युद्ध करने को महर्षि पाणिनि ने प्रहरण क्रीड़ा कहा है।[12] जातक ग्रंथो से रंगभूमि की सजावट, अखाड़ा दर्शकों का बैठने का स्थान का पता चलता है।[13] जातक ग्रंथों में कंस की राजधानी मथुरा में कुश्ती आयोजन का वर्णन मिलता है।[14] इसमें अनेक पहलवानों के साथ–साथ बलदेव और कृष्ण को भी आमंत्रण दिया गया था। बौद्ध ग्रंथ विनयपिटक में स्त्रियों का भी कुश्ती में भाग लेने का वर्णन है।[15]

महाकाव्यकालीन ग्रंथों रामायण एवं महाभारत में भी कुश्ती का वर्णन आया है। महाभारत मे वर्णित है कि पाण्डवों के अज्ञातवास के दौरान विराट नगर में ब्रह्म उत्सव पर आयोजित कुश्ती प्रतियोगिता में भीम ने पहलवान जीयूत की चुनौती को स्वीकारा तथा उसे कुश्ती में पछाड़ दिया।[16] इसको व्यावासायिक रूप से भी खेला जाता है। इससे इसकी लोकप्रियता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

व्यायाम एवं संवाहन : प्राचीन काल में व्यायाम एवं संवाहन (मालिश) मनोरंजन का बड़ा लोकप्रिय साधन था। पुरातन ग्रंथो में भी शारीरिक दृष्टिकोण से इन्हें अति महत्त्वपूर्ण बताया है। शासकों की दिनचर्या में इन दोनों क्रियाओं का वर्णन मिलता है। प्राकृत ग्रंथों में व्यायामशाला या अट्टनशाला का उल्लेख हुआ है। राजा अजातशत्रु[17], श्रेणिक[18], अंधकवृष्णी[19], खत्तिय सिद्धार्थ[20] इत्यादि शासकों के नियमित व्यायाम का वर्णन प्राकृत ग्रन्थों में मिलता है। व्यायामशाला में ये शासक लटकते झूलते फिर व्यायाम करने के बाद संवाहकों से मालिश करवाते थे। जैन ग्रंथ अंतगडदसाओ में संवाहन या मालिश के लाभ बताते हुए कहा गया है कि संवाहन क्रिया हड्डी, मांस, चाम और केश चारों को सुख पहुँचाता है।[21]

मौर्य युग में शासकों के लिए व्यायाम एवं मालिश (संवाहन) मनोरंजन का लोकप्रिय साधन था। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज का कहना है कि उस समय मालिश के लिए कचनार की लकड़ी का उपयोग होता था।[22] नैषधचरित्र[23] एवं कुमार पाल चरित्र[24] में भी व्यायाम के उदाहरण मिलते है। वात्स्यायन ने चौसठ

कलाओं में संवाहन कला को भी स्थान दिया है। भोज के चारूदत्त नाटक[25] तथा शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक[26] में संवाहन कला को मनोविनोद का साधन माना है।

स्नानागार : स्नान भी मनोरंजन का एक सर्वसुलभ जनप्रचलित साधन है। गर्म देशों/ ऊष्ण प्रदेशों में शरीर को स्निग्ध और चित्त को प्रसन्न रखने के लिये स्नान एक आवश्यक नित्य कर्म है। जहाँ गर्म देशों में लोग नदी, नाले, पोखरे, झील आदि में स्नान कर लेते थें, वही ठण्डे देशों में प्राचीन काल में स्नान भोगविलास का प्रमुख साधन था। ठण्डे देशों में चूँकि अधिक सर्दी में खुला वातावरण स्नान के लिए उपयुक्त नही होता अतः सुविधा के दृष्टिकोण से स्नानागारों का निर्माण हुआ। सिंधु सभ्यता के उत्खनन से भी स्नानागार के साक्ष्य मिलते है। सैन्धव सभ्यता के विशाल भवनों में स्नानागार भी था। मोहनजोदड़ो के वृहत्स्नानागार को मार्शल ने तत्कालीन विश्व का एक 'आश्चर्यजनक निर्माण' कहा है।[27]

वैदिक ग्रंथों में स्नानागार का कोई उल्लेख नही मिलना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। बौद्ध ग्रंथ विनयपिटक के चुल्लवग्ग[28] मे स्नानागार या जन्ताघर का वर्णन मिलता है। ये स्नानागार सार्वजनिक नहीं थे बल्कि मठ में रहने वाले भिक्षुओं के लिए बने थें।

जैनों के प्राकृत ग्रंथों में शासकों की स्नान विधि कुछ इस तरह से मिलती है राजा सुबह व्यायाम करते थे अतः थक कर चूर होने के बाद व्यायामशाला या अट्टनशाला में तैल–चर्म बिछा कर बैठ जाते थे उस समय सहस्त्र पाक सुगंधित तेल से मालिश करवाते थे, थोड़ा आराम करने के बाद राजा व्यायामशाला से निकलकर स्नानागार में जाते थे तथा विचित्र पीठिका पर बैठते थे। तदनन्तर राजा के शरीर पर कई प्रकार के सुगन्धित द्रव्य जैसे–सुखोदक, पुष्पोदक, गंधोदक, शुद्धोदक क्रम से छोड़े जाते थे। इस दौरान हँसी–मजाक के द्वारा मनोरंजन होता रहता था। स्नान समाप्ति पर राजा के

शरीर को मुलायम नरम वस्त्र द्वारा पोंछा जाता था फिर राजा वस्त्र–आभूषण पहनकर दरबार की और जाते थे।[29]

जन्ताघर में प्रचलित स्नान की विधि का प्रयोग तो आजकल प्राकृतिक चिकित्सा–पंचकर्म में किया जाता है। सुगंधित जल से भरी हुई द्रोणी जिसे वर्तमान में बाथटब कहा जाता है, का प्रयोग नहाने के लिए किया जाता था, स्नान के समय सिर पर आंवले का लेप लगाना भी पुरातन परम्पराओं को वर्तमान में जीवित रखता है।

कन्दुक–क्रीड़ा : कन्दुक–क्रीड़ा प्राचीन काल में मनोरंजन का अतीव सामान्य साधन थी। पुरातात्त्विक साक्ष्यो एवं वैदिक कालीन ग्रंथों में इस क्रीड़ा का उल्लेख नहीं मिलता है। छठी ईसा पूर्व में रचित अष्टाध्यायी में कन्दुक शब्द का उल्लेख हुआ है।[30] रामायण में 'कन्दु' शब्द से आशय गेंद से ही है।[31] इस खेल में शारीरिक मेहनत होती थी क्योंकि हथेली द्वारा ठोककर गेंद को उछाला जाता था। महाभारत में भी कन्दुक क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है। महाभारत के अनुसार एक गणिका अपनी अंग–भंगिमा दिखाकर गेंद खेलते हुए मुनि ऋष्यशृंग का मन लुभाना चाहती थी[32] अतः ज्ञात होता है कि पुरूषों को आसक्त करने के लिए भी स्त्रियाँ गेंद खेलती थी।

बौद्ध जातकों में वर्णित है कि बालक गेंद खेलने के बहुत शौकीन थे गेंद का नाम भेंडुक (कंदुक) था[33] तथा गेंद खेलने को 'गुलकीला' नाम दिया गया था। हार–जीत के इस खेल में गेंद तागा लपेट कर बनाकर फैंकी जाती थी[34] जैनों के प्राकृत ग्रंथो सूत्रकृतांग में कपड़े के बने हुए गोलक या गेंद का उल्लेख दिय गया है।[35] प्राचीन भारत में यह क्रीड़ा सार्वजनिक एवं अत्यधिक लोकप्रिय थी अर्थात् सभी उम्र के स्त्री पुरूष मन बहलाने के लिये यह खेल खेलते थे।

पुराणों मे भी कन्दुक क्रीड़ा का वर्णन मिलता है। स्कंद पुराण के अनुसार गौरी देवी हमेशा यह खेल खेलती थी[36]

कालिदास के ग्रंथों मे भी कन्दुक क्रीड़ा के प्रसंग मिलते है। मालविकाग्निमित्र में वसु–लक्ष्मी[37] तथा रघुवंश में कुमुद्वती[38] का वर्णन कन्दुक

क्रीड़ा के प्रसंग मे किया गया है। ये कभी कन्दुक को हाथ से मार–मार कर खेलती तथा कभी कन्दुक के पीछे दौड़ती थी। कथासरित्सागर में कन्दुक क्रीड़ा को गुलिका क्रीड़ा से सम्बोधित किया गया है। कथानुसार राजा जवानी की मस्ती में चूर होकर गेंद खेल रहा था।[39] महाराज हर्ष के समय से लेकर हिन्दु राजवंशों के सन्ध्याकाल तक राजकुमारियों, तरूणियों तथा बच्चों में गेंद खेलने का बहुत प्रचार था।

पशु–पक्षी विनोद (पशु–पक्षी पालना एवं लड़ाना) : प्राचीन भारत में जन्तु पालना मनोरंजन का नैसर्गिक स्त्रोत था। वास्तव में जानवर पालने की चाह हमारे देश में बहुत प्राचीन है। राजपरिवारों से लेकर साधारण परिवारों तक में जानवरों का पालन होता था इस तरह वे अपने ह्रदय की सुकुमार प्रवृत्तियों को सजीव एवं सशक्त बनाये रखते थे। जानवरों को लड़ाना भी मनोरंजन का प्रमुख साधन था। इस तरह की मनोरंजनात्मक परम्परा का ज्ञान सैन्धव सभ्यता कालीन अवशेषों का तुलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट प्रतीत होता है। सैन्धव मृदभाण्डों, मुहरों पर की गई चित्रकारियों तथा प्राप्त जीवाश्मों के आधार पर हम उनके पालतू पशु–पक्षियों का अनुमान लगा सकते है। उत्खनन से प्राप्त अस्थिपंजरो के अवशेष में बैल, भैसा, भेड़, हाथी, ऊँट, सुअर, मुर्गी, कुत्ता, बिल्ली, बंदर, हिरन के साक्ष्य मिलते है। खुदाई में प्राप्त पक्षियों की मिट्टी की मूर्तियाँ मिलना इस तथ्य का द्योतक है कि तद्युगीन समाज में पक्षी पालने का शौक रहा होगा जैसेः– तोता, मोर, मुर्गा, मुर्गी। पशुओं के लड़ाने के चित्र तथा तीतर एवं बटेर की लड़ाई के दृश्य भी सिंधु सभ्यता के अवशेषों पर अंकित है। उत्खनन में एक ऐसा खिलौना प्राप्त हुआ है जो पिंजडे के आकार का है और उसमें पक्षी बंद है। उपर्युक्त तथ्य यह प्रमाणित करता है कि पक्षी पालन मनोरंजन का प्रमुख साधन रहा होगा।[40] हाथी दांत का प्रयोग कलात्मक वस्तुओं के निर्माण में किया गया है।

वैदिक ग्रंथो मे तो पशुओ को आर्यों की सम्पत्ति माना गया है। वैदिक साहित्य में पशु मनोरंजन के साथ–साथ धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी

महत्वपूर्ण माने जाते थे। यजुर्वेद से ज्ञात होता है कि गाय, बैल, बकरा, भेड़ एवं बंदर धार्मिक–आर्थिक एवं मनोरंजन के लिये पाले जाते थे।[41]

महाकाव्य कालीन ग्रंथ रामायण में राक्षसियों के सुग्गा पालने का उल्लेख मिलता है।[42] महाभारत के शांतिपर्व में मनुष्य और पंक्षियों के सम्बंधो की चर्चा की गई है।[43] जातक ग्रंथो में संदेश ले जाने पक्षियो को दृतेयहारिक कहा गया है।[44] जातक ग्रंथ यह भी प्रमाणित करते है कि उस समय पशु युद्ध में बैलों और भेड़ों की लड़ाई होती थी।[45]

पद्मपुराण[46] और स्कंदपुराण[47] के कार्तिक मास–माहात्म्य में राजाओं को सुझाव दिया गया है कि वे दिवाली के दूसरे दिन, प्रतिपदा को बैल, भैस आदि पशुओं का युद्ध करावें। हरिवंश पुराण में भी बैलों की लड़ाई का उल्लेख मिलता है।[48]

गुप्तकालीन ग्रंथों मे भी पशु–पक्षी द्वारा मनोरंजन के उल्लेख मिलते है। कुमारसम्भव में चक्रवात दम्पति की विरह व्यथा का वर्णन है।[49] ऋतुसंहार में क्रोंच पक्षी का वर्णन है जिसकी आवाज मन को चंचल करती है।[50] अभिज्ञानशाकुन्तलम्[51]से ज्ञात होता है कि केलिग्रह और अंन्तःयुग से लेकर युद्ध क्षेत्र और वानप्रस्थों के आश्रम तक कोई न कोई पक्षी अवश्य साथ रहता था। वराहमिहिर ने शकुन सूचक पक्षियों का उल्लेख किया है।[52] ऐसे शकुन सूचक पक्षियों में श्यामा, श्येन, शशघ्न, वंजुल, मयुर, श्रीकर्ण, चक्रवात, चाष, माण्डीरक, खंजन, शुक, काक, कपोत, भारद्वाज, कुलाल, कुक्कुट, खर, हारीत, गृध्र, पूर्णकूट और चटक विशेष है। कादम्बरी के अनुसार उस युग में पक्षी विवाह का चलन था।[53] मौसम की सूचना देने वाले पक्षियों का वर्णन काव्यमीमांसा में मिलता है।[54]

जल क्रीड़ाः भारत ग्रीष्म प्रधान देश है। अतः प्राचीन भारत में जलक्रीड़ा मनोरंजन का महत्वपूर्ण साधन था। प्राचीन ग्रंथों में यत्र तत्र इस क्रीड़ा का उल्लेख हुआ है। स्त्री पुरूष सभी नदी तालाबों आदि स्थानों में नहाते समय यह क्रीड़ा करते थे। वैदिक ग्रंथों में जलक्रीड़ा का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

बौद्ध कालीन ग्रंथों में जलक्रीड़ा का उल्लेख जल केलि से मिलता है। ''गंगाया किलिस्साम''[55], ''नंदी कीलम् कीलितुम''[56] इत्यादि के उल्लेख मिलने से जलक्रीड़ा का बोध होता है। जातकों में वर्णित है कि जलक्रीड़ा के साथ नौका विहार, खान–पान, नृत्यगीत द्वारा भी मनोरंजन होता था।

पुराणों में अनेक स्थलों पर जलक्रीड़ा के रोचक प्रसंग मिलते है।हरिवंश पुराण में कृष्ण, बलराम, रेवतीदेवी तथा हजारों स्त्रियों के जलक्रीड़ा का वर्णन है। जलयंत्र या पिचकारी का उपयोग होता था तथा जलयुद्ध भी किया जाता था।[57]

कादम्बरी में महाराज शूद्रक के स्नान सम्बंधित रोचक वर्णन मिलता है।[58] कालिदास के ग्रंथ रघुवंश में राजा अग्निवर्ण के सुंदर रमणियों के साथ जलक्रीड़ा करने का उल्लेख है।[59]

परवर्ती कालीन ग्रंथो में भी जलक्रीड़ा का उल्लेख मिलता है लेकिन इनमे अश्लीलता की छाप थी। इस समय जलक्रीड़ा कामभाव को जगाने का साधन थी। प्राचीन समय की पवित्रता अश्लीलता एवं असंयम बदल गई थी। वाकपतिराज ने गौडवहो में[60] बुद्धघोष के पद्मचूड़ामणि में[61] शिशुपाल वध[62] जिनेश्वरसूरि के कथाकोश प्रकरण[63] इस तरह का वर्णन है।

आखेटः सभ्यता के आदि काल में मनुष्य का जीवन पूर्णतया शिकार पर निर्भर था, सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था में जीविकोपार्जन एवं भरणपोषण हेतु शिकार एक अनिवार्य आवश्यकता थी। कालान्तर में जब मनुष्य सभ्य हो गया तो उसे जीविकोपार्जन हेतु अन्न, फल आदि उपलब्ध होने लगे। अब शिकार की इतनी लम्बी आदत खेल मे परिवर्तित होने लगी। इसी चरण में शिकार मनोरंजन का साधन बन गया। प्रागैतिहासिक काल के पुरातात्विक उत्खनन एवं प्राचीन भारतीय ग्रन्थों मे इस सम्बंध में पर्याप्त प्रमाण मिलते है सिंधु सभ्यता के उत्खनन से प्राप्त अस्त्र शस्त्रों से शिकार का अंदाजा लगाया जा सकता है।

1. **भाले, तीर–धनुष, कटार, तलवार, गदा का मिलना।**
2. **ताबीज की उपलब्धता जिस पर जंगली बकरे को तीर से मारे जाने का चित्र अंकित है।**
3. **मछली मारने के काँटों का मिलना।**

उक्त तथ्य शिकार की पुष्टि करते है। कहा जा सकता है कि इस युग में शिकार मनोरंजन एवं आजीविका दोनों का साधन था। ऋग्वेदिक काल में सिंह, हाथी, जंगली सुअर, भैस, हिरण तथा चिडियों का शिकार होता था[64]। कालांतर में शिकार भी शिकारी की मानसिक स्थिति को परखने लगा और उसके अनुसार कार्य करने लगा इस संदर्भ में जातक कथाओं में वर्णित है कि शरभ जाति का एक हिरण शिकारियों के बाणों से बडे–बडे उपाय कर स्वयं को बचाकर भाग निकला। अष्टाध्यायी में शिकार खेलने का नाम 'लुब्ध योग' दिया गया है।[65] मृग का शिकार करने वाला मार्गिक कहलाता था।[66] चिडियों का शिकार करने वाला 'शाकुनिक' कहा जाता था।[67]

महाकाव्य कालीन ग्रंथ रामायण में दशरथ के ऋषिपुत्र को बाण से घायल करने का वर्णन है।[68] एक अन्य स्थान पर मांस एवं चाम प्राप्त करने के उद्देश्य से शिकार खेलने का उल्लेख मिलता है।[69] रामायण में आखेट को एक प्रकार का व्यायाम कहा गया है। प्रत्येक युग में शिकार खेलने की निंदा की गई है।

मौर्य युग में भी शिकार मनोरंजन का प्रमुख साधन था। अर्थशास्त्र में राजाओं के शिकार खेलने के लिए संरक्षित जंगला रखने का निर्देश दिया है।[70]पतंजलि के महाभारत में शिकार को मनोरंजन का बहुत बड़ा साधन बताया है। शिकार को मृगया शब्द से उल्लिखित किया गया है। मृगया मनोरंजन के साधन के साथ व्यवसाय भी था।

पुराणों में भी आखेट के प्रसंग मिलते है। भागवत पुराण के अनुसार शास्त्रों में कही भी पशु हिंसा की विधि नहीं मिलती फिर भी नियमानुसार विधिसम्मत शिकार करने का उल्लेख मिलता है।[71] स्कंद पुराण के नागर खंड[72]

एवं पद्मपुराण के सृष्टि खंड[73] में आया है कि जब पशु पानी पीता रहे, बच्चों की देखभाल करने में लीन हो अथावा मैथुन में प्रवृत्त हो तब उसका शिकार नहीं करना चाहिए।

गुप्तकाल के साहित्य एवं कला से शिकार खेलने की प्रथा का पर्याप्त विवरण मिलता है। गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त की कुछ मुद्राओं पर बाघ के शिकार का दृश्य अंकित है। अतः कहा जा सकता है कि गुप्त सम्राटों को शिकार खेलने का शौक रहा होगा।[74] कालिदास् ने अपने ग्रंथो में शिकार खेलने को शारीरिक व्यायाम की दृष्टि से उचित ठहराया है।

कादम्बरी में शिकारी कुत्तों के झुण्डों का वर्णन आया है जो शिकार के समय हडकम्प मचा देते थे। उस समय के समाज में आखेट प्रक्रिया को क्रीड़ा कहा जाता था।[75] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि उस समय के समाज में शिकार एक मनोरंजन का साधन के साथ ही आजीविका का भी साधन था।[76]

जुआ/शतरंज/द्यूत क्रीड़ा :प्राचीन भारत में द्यूत क्रीड़ा मनोरंजन का प्रमुख साधन था। राजपरिवार एवं जनसामान्य में प्रचलित यह खेल धार्मिक रूप सें भी खेला जाता था। सैन्धव युग मे उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर जुआ और शतरंज के खेले जाने के तथ्य प्राप्त हुए है। सभ्यता के दो प्रमुख केन्द्र हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ो के उत्खनन में द्यूत क्रीड़ा के लिए प्रयुक्त होने वाले पासों की बड़ी संख्या प्राप्त हुई उत्खनित प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि सिंधु सभ्यता कालीन व्यवस्था में जुआ या शतरंज एक प्रचलित खेल रहा होगा।

वैदिक काल में द्यूत क्रीड़ा के सम्बंध में अनेक साक्ष्य उपलब्ध है वाजसनेयी संहिता में जुए को (अक्षराजायकितवम्) अक्ष क्रीड़ा कहा गया है।[77] इसको खेलते समय बहुत से पासों का प्रयोग किया जाता था[78], सामाजिक अव्यवस्थाओं में जुए की सहभागिता होने के कारण वेदों में जुए को सर्वत्र निंदनीय माना गया है। राजसूय यज्ञ के अवसर पर दिग्विजय के प्रतीक के रूप में द्यूत क्रीड़ा की जाती थी। इस तरह इसने धार्मिक अनुष्ठान का रूप ले लिया

था[79], द्यूतशाला में लोगों को ठगा जाता था। अतः वेदों में इसे दुर्व्यसन मानते हुए जुआ तथा जुआरी की निंदा की गई है।[80] रोमिला थापर ने इस संदर्भ में कहा है कि द्यूत क्रीड़ा करने वाले रोते और अपने भाग्य को कोसते परन्तु जुआ खेलना बंद नही करते। फिर भी सब अवगुणों के होते हुए भी जुआ मनोरंजन का लोकप्रिय साधन था।[81]

महर्षि पाणिनि ने ''आकर्षादिभ्यः कन्'' सूत्र के द्वारा आकर्ष क्रीड़ा को चौसर या जुए से सम्बंधित बताया है।[82] जातक ग्रंथों में द्यूत खेलने के लिए द्यूतमंडल सजाया जाता था।[83] प्राचीन पालि और प्राकृत साहित्य में अट्ठपद और दस–पद शब्दों का बार–बार उल्लेख आता है। सम्भवतः यह शतरंज का खेल रहा होगा।[84]

महाभारत में भी शासकों के जीतने की अनिश्चित आशा में अपना सर्वस्त्र लुटा देने के वृत्तांत मिलते है।युधिष्ठिर ने द्यूत खेलकर भी इसकी निंदा की है।[85] युधिष्ठिर स्वयं कहते है कि जुआ खेलने से संपत्ति का नाश, अर्थ की हानि, बकझक और अवश्यभावी विपत्ति आती है।[86] मनु स्मृति में जुआरी की निंदा की गई है[87]

पुराणों में भी जुआ खेलने के उदाहरण मिलते है। हरिवंश पुराण में भी गोल क्रीड़ा को इसी संदर्भ में उल्लिसित किया गया है। यह भी एक प्रकार का जुआ है, जिसमें गोलाकार पासों का उपयोग होता था[88] इसी पुराण में कहा गया है कि मनोरंजन के लिए यादवों की स्त्रियाँ चौसर खेलती थी।[89]

मौर्यकाल में जुआ राजकीय आय के प्रमुख स्त्रोत के साथ ही मनोरंजन का भी प्रमुख साधन था। अर्थशास्त्र में द्यूताध्यक्ष को स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वह जुआ खेलने का समुचित प्रबंध कराए।[90]

गुप्त कालीन ग्रंथों मे आमोद–प्रमोद के इस साधन के संदर्भ में कई साक्ष्य मिलते है। कालिदास ने रघुवंश में इन्दुमती की स्वयंवर सभा में पासा लुढकानें की चर्चा की है।[91] वात्स्यायन ने 64 ललित कलाओं में द्यूतक्रीड़ा का भी उल्लेख किया है[92] और नागरिक को निर्देश दिया है कि वह अपने यहाँ आकर्ष फलक और द्यूत फलक दोनो रखे।[93]

परवर्ती काल में भी जुए की लोकप्रियता के प्रमाण मिलते है। राजा हर्षवर्धन के समय चतुरंग की अत्यधिक लोकप्रियता थी यही बाद में शतरंज के रूप में परिवर्तित होगई।

इन्द्रजाल :इन्द्रजाल का अर्थ है इन्द्रियों का जाल या आवरण, अर्थात् वह विद्या जिससे इन्द्रियाँ जाल से ढंकी सी आच्छादित हो जायें। प्राचीन भारत में इन्द्रजाल की अद्भुत लीला का प्रभाव मानव जीवन से प्रत्यक्ष सम्बंधित था। इन्द्रजाल या जादू मनोरंजन का प्रमुख साधन था।

वैदिक काल में मनोरंजन के साधन के रूप में जादू के खेल का विशिष्ट स्थान था। ऋग्वेद में ''मायावान'' दस्यु[94], मार्यिन शत्रु[95], मृग–रूपी ''मायावी वृत्र[96], ''मायावी'शुष्ण[97] आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है। अर्थात् ऋग्वेद में जादू को माया से सम्बोधित किया गया है। ''माया'' का सरल अर्थ भ्रम या भ्रांति है। यह भी कहा जा सकता है कि माया का अर्थ जिस वस्तु का अस्तित्व नही, जो सर्वथा मिथ्या है, उसी को स्थितिशील और सत्यता से परखने से है। अतः वास्तव मे औरो की आँखों में धूल झौकने का नाम माया है। ऐसे जादूगर जो माया की सृष्टि कर दर्शकों को भ्रम में डालते थे, ऋग्वेद में उनको ''यातुधान'' कहा गया है।[98] इस तरह के जादूगर हॉ को ना में एवं ना को हॉ मं बदलकर अपनी करामात दिखाते थे तथा जनसमुदाय को चकित करते थे।

उत्तर वैदिक ग्रंथो से भी इस संदर्भ में जानकारी प्राप्त होती है। बांस पर चढ़कर विविध प्रकार के जोखिम के अद्भुत खेल दिखाने को भी वाजसनेयी संहिता में जादूगरी कहा है।[99] रामायण में इन्द्रजाल विद्या का प्रयोग प्रायः राक्षस लोगो द्वारा शत्रुओं के विरूद्ध किया जाता था। रावण की बहन शूर्पनखा ने माया द्वारा सुदंर नवयुवती का शरीर धारण कर राम लक्ष्मण को रिझाने का प्रयास किया।[100]

मौर्यकाल में भी जादू विद्या के प्रयोग के विवरण मिलते है। इस समय इसकी राजनैतिक उपयोगिता बढ़ गई थी। अर्थशास्त्र में कुटनीति के प्रयोग में जम्भक विद्या का प्रयोग किया गया है।[101]

पुराणों में भी मायाविद्या के प्रसंग वर्णित है। विष्णुपुराण में राजा प्रद्युम्न द्वारा माया (अष्टमी माया) के प्रयोग का वर्णन है।[102] पद्मपुराण के पाताल खण्ड में महर्षि वाल्मिकि द्वारा लवकुश को गांधर्वी विद्या तथा जालंधरी विद्या सिखाने का उल्लेख है ये विद्याएँ मायावी होती थी।[103]

गुप्तकालीन लोगों का जीवन भी आमोद–प्रमोद से परिपूर्ण था। कामसूत्र में इन्द्रजाल, हस्तलाक्षव (हाथ की सफाई) वलितक योग तथा वैजयिकी–वशीकरण आदि कलाओं को स्थान दिया गया है। अतः उक्त काल में ये लोगो का मनोरंजन किया करती थी।[104]

परवर्ती कालीन साहित्यों में भी जादू का प्रयोग देखने को मिलता है। इस समय इस खेल का प्रयोग राजनीति में शत्रु को चकमा देने या युद्ध जीतने के अभिप्राय से होता था। हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार भारत वर्ष में इन्द्रजाल की अद्‌भुत आश्चर्यजनक लीला सारे संसार मे प्रसिद्ध थी। राजसभा में ऐन्द्रजालिकों के लिए विशिष्ट स्थान दिया जाता था।[105]

आख्यान/कथा :प्राचीन काल से ही मनोरंजन के साधनों में आख्यान, कथा, कहानियों का प्रमुख स्थान है। मनुष्य अपने घर–गृहस्थी के जंजाल, दैनिक जीवन की उलझन तथा निरंतर नीरस जीवन के चलते रहने से झुंझला जाता है। अतः थोडी देर के लिए कल्पना के आगोश में समाना चाहता है। प्राचीन काल में वर्तमान की तरह चित्र–मंदिर या उपन्यास तो थे नही, अतः लोग पौराणिको, कथकों अर्थात् कथा सुनाने वालो द्वारा मन बहलाते थे।

वैदिक कालीन ग्रंथों में इस प्रसंग मे कई विवरण मिलते है। ऐतरेय ब्राह्मण में कथकों का नाम आख्यानविद् था।[106] आख्यानविद् का अर्थ है कथा–कहानी सुनाने वाले। सम्भवतः आख्यान शब्द भी यही से प्रचलित हुआ होगा। सामान्य जनता इन कथा–कहानी के रस में डूबकी लगाती थी और

आनंद मनाती थी। गाथा–नाराशंसी, इतिहास–पुराण[107] भी सुनकर लोग मनोरंजन करते थे। आश्वलायन ग्रह्यसूत्र के अनुसार गाथा–नाराशंसी में उन दिनों के विशेष या प्रमुख व्यक्तियों की प्रशंसा गायी जाती थी।[108]

उत्तर वैदिक काल में भी अनेक श्रेणी के कथा कहानी सुनाकर लोगों का मनोरंजन करने के वृत्तांत मिलते है इन कथाओं को बतकही भी कहा जाता था सुमंगलविलासिनी में हल्की फुल्की कथाओं की एक लम्बी सूची दी गई है जो निम्न है–पशु–पक्षी सम्बंधी कथा, राजकथा, चोरकथा, युद्धकथा, अन्नादि सम्बंधित कथा,जातिकथा,ग्रामकथा,निगमकथा, जनपद कथा, स्त्री कथा, सुरा कथा, स्वास्थ्य सम्बंधी कथा, लौकिक कथा, समुद्र सम्बंधी कथा आदि सभी तरह की कथाएँ इस सूची में सम्मिलित कर ली गई है। इस प्रकार की कथाएँ लोगों के बहलाव का साधन थी।[109]

जैनो के प्राकृत ग्रंथो समवायांगसूत्र,[110] आचारांग सूत्र[111] में भी कथा–कहानियों से मनोरंजन के उल्लेख मिलते है। वैदिक काल में जहाँ आख्यानविद् कथा कहानी सुनाते थे। उत्तर वैदिक काल में इन्हें सूत और मागध कहा जाने लगा। मनुस्मृति[112] तथा वायुपुराण में[113] सूत और मागधों की उत्पत्ति का विशद वर्णन हुआ है।

महाभारत में वर्णित है कि सूत और मागध राजाओं के स्तुति पाठ के अतिरिक्त पौराणिक या कथाकार का काम भी करते थे।[114] मौर्य काल में कथाकारों का उपयोग मन बहलाने के अतिरिक्त भेदिये के रूप में भी हुआ है। गुप्त युग को स्वर्ण युग भी कहा गया है कालिदास ने मेघदूत में अनेक कथाकारों का वर्णन किया है जो उदयन की कृतियों का कथा–कहानी के रूप में सुनाकर लोगों का मनोरंजन करते थे तथा आजीविका भी एकत्रित करते थे।[115]

बाणभट्ट की कादम्बरी के अनुसार राजा शुद्रक समय–समय पर रसीली युक्तियों और कहानी सुनने के लिए राजभवन में गोष्ठी का आयोजन करता था।[116]

गोष्ठीः हास्य विनोद के सार्वजनिक स्थल गोष्ठी/बैठक कहलाते है। विचार–विनियम द्वारा ज्ञान की अभिवृद्धि करने के लिए समय–समय पर जो सांस्कृतिक बैठकों का आयोजन किया जाता था उनका नाम गोष्ठी था। इस प्रकार की बैठको में लोग आमोद–प्रमोद करते थे। नायाधम्मकहाओ[117] से ललित गोष्ठी का वर्णन मिलता है इसके सदस्य सम्पन्न कुल के लोग होते थे तथा विभिन्न प्रकार के क्रिया–कलापों से अपना मनोरंजन करते थे। वर्णित है कि चम्पा नगरी में (ललियाएणामं गोष्ठी) ललित गोष्ठी नाम की एक सभा की जिसके सदस्य देवदत्ता गणिका के साथ क्रीड़ा कौतुक करते थे। कामसूत्र में भी पान गोष्ठी का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार की बैठक नागरिकों के घर आयोजित की जाती थी। ऐसी बैठकों मे नगर शोभाओं के साथ–साथ सुरापान के कार्यक्रम भी किए जाते थे। कभी–कभी उद्यान यात्रा के उपलक्ष में भी पान गोष्ठी आयोजित होती थी।[118] दशकुमार चरित में इस प्रकार की एक गोष्ठी का वर्णन हुआ है।[119] जहाँ रागमंजरी ने गान सुनाये थे। इन बैठको का आयोजन सभामंडप, गणिकालय या किसी नागरिक के घर पर होता था। इन सभाओं में नृत्य, गीत–साहित्य सम्बन्धित विभिन्न कलाकार भाग लेते थे।[120] हर्षचरित में वीर गोष्ठी का उल्लेख मिलता है जिसमें वीरो का गुणगान किया जाता था।[121] आदिपुराण में[122]गोष्ठियों के अनेक भेद वर्णित है। चित्र गोष्ठी, काव्य गोष्ठी, गीत गोष्ठी, जल्प गोष्ठी, नृत्य गोष्ठी, वादित्र गोष्ठी, वीणा गोष्ठी, गीत इत्यादि।

वस्तुतः प्राचीन काल में किसी काम को सुव्यवस्थित एवं मनोरंजन रूप से सम्पन्न करने के लिए जलसा या बैठक आयोजित की जाती थी इस गोष्ठियों से कला, साहित्य को बढ़ावा मिलता था।

उद्यान यात्रा : प्राचीन काल से ही यह प्रथा मनोरंजन का प्रमुख साधन रही है। शांति, सुकुन प्राप्त करने के अभिप्राय से तथा रोजमर्रा की ऊबाउ जिन्दगी में थोड़ा सा परिवर्तन करने के उद्देश्य से लोग सारी चिंताए भुलाकर बाग–बगीचे, उपवन को जाते थे। इस तरह बाहर की शुद्ध हवा खाना स्वास्थ्य की दृष्टि से

अनुकूल तो था साथ ही मनबहलाव का भी प्रमुख जारिया था। प्राचीन प्राकृत एवं पालिग्रंथों, संस्कृत साहित्यों में उद्यान यात्रा के रोचक वृतांत मिलते है। जातक ग्रंथों मे तो उद्यान यात्रा के विवरण में खान–पान की सामग्री, सुगंधित द्रव्य, फूलमाला लेकर जाने का वर्णन है। इन यात्रा में स्त्री–पुरूष दोनों साथ जाते थे।[123] प्रतीत होता है कि इन यात्राओं में मनोरंजन का पूर्ण लाभ मिलता होगा। विनय पिटक से ज्ञात होता है कि वेश्याओं के साथ भी लोग उद्यान यात्रा का आनंद उठाते थे।[124] महावग्ग में वर्णित है कि नवयुवकों–युवतियों के तीस–तीस जोड़े उद्यान क्रीड़ा करने जाते थे।[125] सम्राट अशोक का नाम चण्ड अशोक पड़ा इसके पीछे परिस्थिति का सम्बंध भी उद्यान यात्रा से ही है।[126]

रामायण से ज्ञात होता है कि अयोध्या के नगर निवासी शुद्ध हवा के लिए प्रायः उद्यान यात्रा का कार्यक्रम बनाते थे।[127] महाभारत[128]में उद्यान यात्रा के संदर्भ मे कई उदाहरण मिलते है। श्रीकृष्ण, अर्जुन के साथ सपरिवार यमुना के किनारे घूमने गए थे। इन यात्रा में उन्होने खाना–पीना, नाचना, आसव पान करना, जलक्रीड़ा विभिन्न क्रीड़ा कौतुको से मनोरंजन किया।

गुप्तकालीन लोगों का जीवन आमोद–प्रमोद से परिपूर्ण था अतः वे प्रायः उद्यान यात्रा से मनोरंजन किया करते थे। लोकजीवन में उद्यान यात्रा की विचित्रता का पता कामसूत्र से लगता है। वर्णित है कि सुबह होते ही नागरिको को सजसँवर कर अपने भ्रत्यों एवं गणिकाओं या वार नारियों के साथ उद्यान यात्रा करनी चाहिए।[129] वहाँ पर मन बहलाने के लिए नाटक, जुआ, स्त्रीसंग, पशु युद्ध का आश्रय ले।

परवर्ती कालों मे मनोरंजन के इस साधन में दुर्गंधि आने लगी। स्त्रियों के साथ जाने से उद्यान यात्रा कामक्रीड़ा का माध्यम बन गई। पद्मचूड़ामणि में कुमार गौतम के रनिवास की महिलाओं के साथ उद्यान यात्रा करने का विशद विवरण मिलता है। कामक्रीड़ा को जाग्रत करने के अभिप्राय से ये स्त्रियाँ कभी फूल चूनती, कभी पत्तियाँ नोचती, कभी अशोक के वृक्ष पर लात बरसाती, कभी पुनांग को सहलाती, कभी प्रीतम के कानों में फूल खोंसकर उससे चिपक जाती इत्यादि क्रियाओं से वे मनोरंजन करती थी।[130] उद्यान यात्रा के प्रसंग में प्रेम का

सूत्रपात का भी वर्णन मिलता है। उद्यान यात्रा के समय कुछ अन्य खेलों का भी वर्णन मिलता है। जैसे गुडियों का विवाह या ''पांचालुनयान'', दोला केलि, कदंब युद्ध अर्थात् इसमें उद्यान यात्री दो दलों में विभक्त होकर खेल–खेल में एक दूसरे को कदंब के फूल द्वारा मारने का प्रयत्न करते थे।[131]

वन विहार : प्राचीन समय में वन विहार मन बहलाव का प्रमुख साधन था। वन विहार सामूहिक टोलियाँ बनाकर दूरवर्ती वनों में किया जाता था, अधिकांशतः वन विहार के पीछे कोई न कोई प्रयोजन अवश्य रहता था। प्राचीन कालीन ग्रंथों में वनविहार के वर्णन मिलते है। रामायण से ज्ञात होता है कि वानरस्त्रियाँ कामावेग में वनों में क्रीड़ा करने को तत्पर रहती थी।[132] महाभारत[133] में वर्णित घोष यात्रा इसी प्रकार की एक घटना थी जिसमें पुराने बैर का बदला लेने का मंतव्य दिया था।

नैषधचरित्र में राजा नल अपनी रानी दमयंती को पुरानी वार्त्ता को स्मरण दिलाते हुए कहते है कि एक दिन वन विहार के प्रसंग मे मैने तुमसे धरती पर पड़े पीपल के पत्ते को उठाकर मुझको देने के लिये कहा था। उस समय मेरी बात का गूढ़ अर्थ समझकर तुम बहुत झेप गयी थी।[134] शिशुपाल वध महाकाव्य में यादवों की वन क्रीड़ा का विशद वर्णन मिलता है। वर्णित है कि रैवतक पहाड़ी पर वन खण्ड में यादवों ने स्त्रियों के साथ वन–विहार किया था। स्त्रियाँ चलते समय अपने पैरों में लगे हुए महावर का रंग धरती की छाती पर छोड़ती थी। कुछ रमणियाँ अपने जघन और स्तनों के बोझ से तंग आकर पैर घसीटतें हुए चल रही थी, कुछ अपने प्रियतमों के साथ चलने के लिए दौड़ रही थी। चलते–चलते वे सुकुमार कोंपल तथा फूल तोड़ती जाती थी। कभी शाखाओं के खींचने से उन पर फूलों की झड़ी बरसती थी। जब ये हाथ उठाकर फूल–पत्ती तोडने लगती थी, तब उनकी गहरी नाभि दिखायी देती थी, इससे उनके पतियों में मन में विकार का भाव आ जाता था और वे विभिन्न क्रीड़ाएँ कर के स्त्रियों को छेडते रहते थे। इस प्रकार यह वन विहार लम्बे समय तक चलता रहता था।[135] इस प्रकार कम ही साहित्यों में वन विहार का उल्लेख मिलता है फिर भी

प्राचीन काल में यह स्त्री पुरूष दोनों के लिए मनोरंजन का विशिष्ट साधन रहा होगा।

झूला झूलना/दोला केलिः प्राचीन काल में झूला झूलना मनोरंजन का प्रमुख साधन था। यद्यपि वैदिक साहित्य में झूले का उल्लेख कम हुआ है फिर भी बच्चों के मन–बहलाने, सुलाने, रोते हुए चुप कराने में झूला जरूर उपयोग में आता होगा। कात्यायन श्रोत सूत्र के अनुसार गवामयन यज्ञ के छठे दिन का नाम महाव्रत था। उस दिन राम मंत्रों का उच्चारण करने वाला होता झूले (हिंडोले) पर बैठता था।[136]

पुराणों मे इस क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है। हरिवंशपुराण[137] और विष्णुपुराण[138] में कृष्ण भगवान और बलराम जी के बारें में कहा गया है कि बाल्यकाल में झूले पर झूलना (स्पन्दोलिका) प्रमुख क्रीड़ा कौतुक था। भविष्य पुराण में झूले पर झूलने की क्रीड़ा को हिन्डोलादि क्रीड़ा कहा गया है।[139] वायुपुराण[140] तथा ब्रह्माण्डपुराणों[141] में भी दोला क्रीड़ा के संदर्भ में वर्णित है कि कैलाश पर्वत पर स्त्रियों का दल झूले का आनंद ले रहा था। झूलने पर झूले पर बँधे हुए घण्टों की मधुर ध्वनि से सम्पूर्ण पर्वत गुंजायमान हो रहा था।

वात्स्यायन के कामसूत्र में झूलों को प्रेंखा–दोला से सम्बोधित किया गया है प्रेंखा–दोला की प्रथा वर्षा ऋतु में ही अधिक थी। वर्षा से बचने के लिए ही कामसूत्र में छायादार वृक्षों की घनी छाया में झूला लगाने को कहा गया है।[142] अतः झूले प्राचीन काल में मनोविनोद का महत्वपूर्ण साधन था। राजपरिवार की नारियों से लेकर सामान्य नारियों तक सभी झूले पर झूलकर अठखेलियाँ करती थी। ग्रामीण परिवेश में तो सावन में झूले पर झूलना कृष्ण भगवान के प्रति भक्ति प्रदर्शित करता है। कुट्टनीनतम् में व्रत्तीप्रेंखा (लताओ की बनी हुई दोला) का वर्णन है।[143] हेमचन्द्र आचार्य ने कुमारपाल चरित में दोलाक्रीडा का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। एक–एक झूले पर पति–पत्नी का एक–एक जोड़ा बैठकर मस्ती भरे गीत गा रहा था। स्त्रियाँ भी मद के नशे में चूर थी,

जैसे–जैसे झूला नीचे ऊपर आता जाता था तो देवियों की पायल खन–खन करती थी।[144]

इस प्रकार यह क्रीडा मनोविनोद का निर्दोष साधन थी। स्त्रियों के साथ पुरूष भी इस क्रीडा का आनंद उठाते थे। लेकिन कालांतर में इसमें पवित्रता गायब होने लगी और झूला पुरूषों को स्त्रियों के संसर्ग में लाकर काम चेष्टा करने का साधन बन गया। परवर्ती कालीन कुछ ग्रंथों में इस संदर्भ में प्रमाण मिलते है। कुट्टनीमतम् के अनुसार झूलते समय पुरूष अपनी संगिनी की कोख में बार–बार नाखून गड़ाकर उसको मदनमयी बना देता था।[145] यशस्तिलक चम्पू में[146] भी दोलाक्रीडा के अवसर पर चुम्बन,स्पर्श, आंलिगन जैसे कामभाव युक्त चेष्टाओं का उल्लेख दिया है।

चित्रकारी : प्राचीन भारत में मनोरंजन के साधनों में चित्रकला का विशेष प्रचार था, इस संदर्भ में भारतवर्ष की दो प्राचीन गुफाएँ अजन्ता एवं एलोरा की अद्वितीय चित्रकारी अपने काल की चित्रकला के चरम उत्कर्ष को प्रमाणित करती है। प्राचीन भारत में चित्रकारी सभी उम्र के स्त्री पुरूषों, बच्चों में लोकप्रिय थी फिर भी स्त्रियों के क्रीड़ा एवं मनोरंजन का यह सर्वश्रेष्ठ साधन था। वैदिक साहित्य में भी चित्रकला का प्रचार व्यापक रूप से मिलता है, शतपथ ब्राह्मण में चित्रकला का उल्लेख मनोरंजन के साधनों में वर्णित है।[147]

उत्तर–वैदिक काल में प्रत्येक समृद्ध व्यक्तियों के घरों में चित्रशाला होती थी, चित्रशाला का प्रथम उल्लेख रामायण में रावण की चित्रशाला गृहाणि के रूप में वर्णित है।[148] महाभारत में भी चित्रकला के संदर्भ में कई साक्ष्य मिलते है उस समय चित्रकला अपने पूर्ण चरम पर थी। इसी संदर्भ में एक सम्पूर्ण ग्रंथ नग्नजीत में चित्रलक्षण नाम से लिखा था।[149]

इन विवरणों से स्पष्ट है कि समृद्ध घर की बालिकाओं को उस समय चित्रकला का पूर्ण ज्ञान कराया जाता था। चित्र–विद्या का उल्लेख पालि, प्राकृत और संस्कृत ग्रंथों में कई स्थानों पर मिलता है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में चित्रों के प्रकार मानव, पशु, पहाड़, नदी, आदि का लकड़ी, कपड़े, पत्थर, मिट्टी, हाथी

दाँत पर बनाए जाने का उल्लेख प्राप्त हुआ है।[150] जिनभद्र मुनि रचित कल्पसूत्र में चौंसठ कलाओं में चित्रकारी को भी स्थान मिला है।[151]

मौर्यकाल में अर्थशास्त्र में चित्रकला में उस कलाचार्यो का उल्लेख मिलता है[152] इस काल में चित्रकारी न केवल एक रचनात्मक कला के रूप में था बल्कि मनोरंजन का प्रमुख साधन भी था।

पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड में वर्णन है कि शिव भगवान के क्रीडा गृह की दीवार पर पालतू मोर और राजहंस के चित्र उकेरे हुए थे।[153] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रों की व्याख्या, चित्रों के भेद, चित्रों के उद्देश्य का वर्णन है। चित्र सूच्य प्रकरण में वर्णित है कि समस्त कलाओं में चित्रकला श्रेष्ठ है यह चारो पुरूषार्थो (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को सिद्ध करने वाली विद्या है।[154]

गुप्त काल को प्राचीन भारतीय इतिहास में स्वर्णयुग कहा गया है। इस समय चित्रकारी की चर्चा बड़े व्यापक पैमाने पर होती अभिज्ञान शाकुंतलम्[155] में वर्णित है कि शकुन्तला की सखियों ने चित्रकला की दक्षता और अनुभव के आधार पर ही शकुन्तला हो आभूषणों से सजाया था। वात्स्यायन में कामसूत्र में 64 कलाओं में आलेख्यम् को चतुर्थ स्थान से सुशोभित किया है।[156]

परवर्ती काल के ग्रंथों में भी चित्रकारी का वर्णन मिलता है। हर्षचरित[157] में लोक–परलोक के काल्पनिक दृश्य दिखाने का वर्णन अंकित है। कादम्बरी[158] में सीता हरण के बाद राम ने अपने दुखी मन को शांत करने के उद्देश्य से सीता के चित्र को दीवार या भीत पर बनाने का उल्लेख है। कर्पूर मंजरी[159], नैषधचरित्र[160] एवं विद्धशालभंजिका[161] नाटकों में भीत्ति चित्रों का अंकन वर्णित है।

इस प्रकार प्राचीन भारत चित्रकला का मर्मज्ञ साधक था। इसका ज्वलंत प्रमाण अजंता एवं बेलूर (एलोरा) आदि की गुफाएँ है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार चित्र उन दिनों विरही के विनोद थे, वियोगियों के मेलापक थे, प्रोढों के प्रीति उद्रेचक थें, ग्रहों के श्रृंगार थे, मंदिरों के मांगल्य थे, सन्यासिनों के साधना विषय थे और राहगीरों के सहारे थे। वस्तुतः चित्रविद्या उन दिनों अपने चरम उत्कर्ष को धारण कर रही थी।[162]

संगीत :प्राचीन भारत में मनोरंजन के प्रमुख साधनों में संगीत का मुख्य स्थान रहा है। संगीत के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि सरस्वती के हाथों में वीणा, शंकर के हाथों में डमरू, गाने वाले गांधर्व, वादन करने वाले किन्नर और नृत्य करने वाली अप्सराओं ने संगीत को पैदा किया। वस्तुतः मानव मन की क्रियाशीलता का परिचायक है संगीत। जीवन के रहस्य का भेद खोलकर आत्म ज्ञान की प्राप्ति कराना ही संगीत का उद्देश्य है। मनुष्य की चिंता, तनाव में जो आत्मा को आनंदित करे उसे संगीत कहा है अर्थात् अर्थपूर्ण ध्वनि की जीती जागती प्रतिमूर्ति ही संगीत है। मानव जीवन में मानसिक, आध्यात्मिक आनंद की प्राप्ति में संगीत परम उपयोगी है। संगीत मुख्यतः सामूहिक क्रियाशीलता मानी जाती है, जिसके द्वारा कलाकार अपनी कृतियों को प्रदर्शित कर श्रोताओं की कल्पना शक्ति को उभारकर उन्हें हृदय के तारों से एकीकृत कर देता है। संगीत मानव जीवन का अभिन्न सूत्रधार था। आदिम काल से ही मानव दिन प्रतिदिन की घटनाओं ऋतु परिवर्तन, सूर्य उदित होना, सूर्य अस्त होना, जन्म, मरण, परण जैसी घटनाओं का संगीत के माध्यम से स्वागत करते है।

प्रागैतिहासिक काल से ही भारत में संगीत की समृद्ध परम्परा रही है। इस संदर्भ में नृत्य करती हुई काँसे की मूर्ति का मिलना तथा संगीत के देवता रूद्र अथवा शिव की पूजा अर्चना का उस युग में संकेत मिलना प्रमाणित करता है कि सिंधु सभ्यता में भी संगीत मनोरंजन का प्रमुख साधन रहा होगा। वाराहोपनिषद में संगीत का अर्थ सम्यक् गीतम है।[163] गाने, बजाने एवं नृत्य को ही संगीत कहते है। संगीत नाम इन तीनों के एक साथ व्यवहार से पड़ा है। कौषीतकी ब्राह्मण में नृत्य, गीत और वादित्र को 'शिल्प' कहा गया है।[164]

गायन : वैदिक काल में गायन सम्बंधित पर्याप्त प्रमाण मिलते है। ऋग्वेद में गीत के लिए गीर्, गातु, गाथा, गायत्र, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग व्यवहृत हुआ है। कौषितकी ब्राह्मण में नृत्य, गीत और वादित्र का सामुहिक नाम शिल्प दिया गया है। ऋग्वेदिक काल में गांव–गांव में गवैये बजैये होते थे।[165] गवैये का नाम गाथिन था[166] एवं इनका प्रधान गाथापति कहलाता था।[167] संसार भर में सबसे

प्राचीन संगीत सामवेद मे मिलता है। साम के संगीत के घनिष्ठ संबंध के कारण साम और स्वर पर्याय माने जाने लगे थे। सामवेद में गायक को उद्गाता कहा गया है। यजुर्वेद मे भी स्त्रोत का विशेष महत्व है।[168] अथर्ववेद में लोकगीतों के धार्मिक एवं लौकिक कार्यों में गाने का वर्णन मिलता है। कात्यायन श्रोतसूत्र में वर्णित है कि गवामयन यज्ञ के छठे दिन 'महाव्रत' नाम का एक समारोह होता था। उसमें यजमान की पत्नियाँ बीन बजा कर गाती थी।[169] अतः वैदिक युगीन समाज में संगीत अमोद–प्रमोद का विशिष्ट साधन था। पाणिनी की अष्टाध्यायी में भी तत्कालीन समाज में गीत, वाद्य का प्रचलन मिलता है।[170]

जैनों के प्राकृत ग्रंथों में संगीत कला का विशिष्ट विवरण प्राप्त है। स्थानांग सूत्र में चार प्रकार के गीतों का उल्लेख हुआ है। उत्क्षिप्त, पत्रक, मंदक, रोविंदक। स्थानांग सूत्र में[171] सप्तस्वरों के नाम दिए गए है–सज्ज, रिषभ, गंधार, मज्झिम, पंचम, धैवत और णेसात है। ये सातो स्वर नाभिमण्डल से उत्पन्न होते है। गीत के आकार के बारे में वर्णित है कि वह प्रारम्भ में मंद, बीच में उदात्त और अन्त में हल्का होना चाहिए।[172] राजप्रश्नीय सूत्र में भी संगीत कला का विशद विवरण प्रस्तुत किया गया है।[173] जातको में वर्णित है कि कभी–कभी राजा स्वयं भी गाते थे और गांधर्वो की नियुक्ति भी करते थे।[174]

रामायण में भी संगीत के संदर्भ में अनेक साक्ष्य मिलते है। माता कौशल्या सामगान में दक्ष थी[175] एवं अन्य अनेक अप्सराओं के गायन सम्बंधी विवरण प्राप्त होते है। महाभारत में मनोरंजन के साधन के रूप में संगीत का वर्णन हुआ है। महाभारत में संगीत विद्या के लिए ''गान्धर्व'' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। सात स्वरों (षड़ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, धैवत, पंचम एवं निषाद) का उल्लेख करते हुए आकाश से इनकी उत्पत्ति मानी गई है।[176] अर्जुन ने गायन कला गंधर्व चित्रसेन से सीखी थी वर्णित है कि उन्होनें देवराज इन्द्र के आदेश से गंधर्व विद्या की और ध्यान दिया था।[177] श्रीकृष्ण भी गंधर्व विद्या में निपुण थे। महाभारत में भी गंधर्व विद्या का अत्यधिक प्रसार था। अज्ञातवास के समय अर्जुन विराटदुहिता उत्तरा के संगीत शिक्षक के रूप में विराट द्वारा नियुक्त किये गये थे।[178] राज्यसभा में भी संगीतज्ञों का विशेष आदर किया जाता था। इन्द्रपुरी के ऐश्वर्य

वर्णन में संगीतज्ञों को भी वहाँ का ऐश्वर्य बताया है।[179] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में गायन विद्या को बहुत उच्च स्थान प्राप्त था। रामायण और महाभारत ग्रन्थो के अनुशीलन से यह भी विदित होता है कि राम–रावण और कौरव–पाण्डवों की पुरातन कथाओं को मौखिक रूप में सुरक्षित करने और उनको समाज में प्रचलित करने का कार्य भी तत्कालीन कुशीलवों (गायक, नर्तक, नटों) और चारणों ने किया।[180]

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मौर्य युग की कला संस्कृति का प्रामाणिक चित्रण देखने को मिलता है। कौटिल्य ने गायकों को गुप्तचर की श्रेणी में परिगणित किया है। गायकों की मण्डलियाँ (गाकर, बजाकर, नृत्य करके) संगीत की तीनों अवस्थाओं को साथ में लेकर जीविकोपार्जन करती थी।[181]

गुप्तकाल में भी संगीत आमोद–प्रमोद का प्रमुख साधन था। कालिदास के ग्रंथो में संगीत कला के विवरण प्राप्त है। कुमारसम्भव में विवाह के प्रसंग में पार्वती जी की साज–सजावट करते समय गाना–बजाने का वर्णन मिलता है।[182] रघुवंश में भी लोकगीतों का वर्णन है खेतों की रखवाली करने वाली किसानों की स्त्रियाँ, ईख की झूमती हुई छाया में बैठकर प्रजापालक राजा रघु की कीर्ति कहानियों की तुकबंदी कर गाया करती थी।[183]मेघदूत के अनुसार अपने मन को बहलाने के लिए विरह–विधुरा यक्षिणी वीणा बजाती हुई अपने प्रियतम की कीर्ति गाथाएँ गाती थी।[184]

पुराणों में भी संगीत कला का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। लिंगपुराण में गायकों को निर्देश दिया है कि कमर हिलाते या रगड़ते हुए, सिकुडकर, ओढना ओढकर, हाथ पटकते हुए, मुहँ से जीभ निकालकर, हाथ उठाकर या ऊपर ताकते हुए अपने शरीर पर आँखे गड़ाकर हंसते, रूठते, कांपते हुए नही गाना चाहिए।[185] हरिवंश पुराण में भी गीतों का प्रदर्शन मनोरंजन के लिए होता था। विशेषतः गाथा नामक गीत गाए जाते थे।[186] पद्मपुराण के भूमिखंड में वर्णित है कि संगीत के द्वारा कुल देवताओं को प्रसन्न किया जा सकता है गीत को आश्रय लेकर चारो वेदों की शोभा बढ़ती है।[187]

परवर्ती काल में भी संगीत कला का व्यापक प्रचार था। लोकसंगीत के संदर्भ में कादम्बरी से विदित होता है कि गायिकाओं का एक समूह चन्द्रपीड के राजकीय अतिथिगृह में मनोरंजन हेतु भेजा गया था।[188] शिशुपाल वध से ज्ञात होता है कि क्वार मे किसान पत्नियाँ गाना गाकर, चढ़ाई करने वाले हिरनो से धान की खेती की रखवाली करती थी।[189] अतः वैदिक काल से ही संगीत मनोरंजन का प्रमुख साधन बना रहा गायन के साथ वादित्र यंत्र और नृत्य भी पल्लवित होते रहे।

वादित्र :वाद्य को गीत एवं नृत्य का सहचरी बताया है। इन तीनों से ही संगीत की परिपूर्णता है। सिंधु सभ्यता काल से ही वाद्य के संदर्भ में साक्ष्य मिलते है। जिससे उनकी वाद्य रूचि का पता चलता है। पत्थरों पर उत्कीर्ण चित्र, तबले और ढ़ोल का प्राप्त होना, ढोलक, झांझ, करताल के भी प्रमाण मिलते है।[190] वैदिक काल में भी वाद्य यंत्रों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में वर्णित है कि कंठ संगीत के साथ यंत्रादि बजाए जाते थे।[191] इनमें क्षोणी या वीणा[192], चर्चरी[193], दुंदुभि[194] मुख्य है। उस समय लोग सुरा पीने के बाद सौ तार वाले वाद्य बजाते थे।[195]

महाकाव्य कालीन ग्रंथो मे वाद्य यंत्रो के प्रमाण मिलते है। रामायण में श्रीराम को संगीत, वाद्य एवं चित्र आदि कलाओं का ज्ञाता बतलाया गया है। रावण के अन्तःपुर में वीणा, विपंची, मृदंग, मण्डक, पटह, पणव, डिंडिय तथा आडम्बर नामक वाद्य यंत्र थे।[196] कुशनामा कन्याओं के उद्यान यात्रा के प्रसंग में वाद्य यंत्रों का उल्लेख दिया गया है।[197] महाभारत में भी शंख, मृदंग, भेरी, पणव, आनक, गौमुख, बाँसुरी, वीणा, झल्लीपक आदि वाद्य यंत्रो का उल्लेख मिलता है। मांगलिक कार्यो व युद्ध भूमि में शंख ध्वनि का वर्णन मिलता है।[198] छालिक्य गान में वीणा झल्लीनक, बांसुरी, मृदंग आदि यंत्रों के साथ पाँच गंधर्व मिलकर गाते थे।[199]

बौद्ध ग्रंथो में भी मनोरंजन के रूप में वीणा, तुरीय, पाणीस्वर, मृदंग, मुरज, आलम्बर, भेरी, दुन्दुभि, नगाड़ा, ढोल, शंख, पणव, मंजीरा आदि वाद्यों का[200] प्रचलन था।

जैन ग्रंथ राजप्रश्नीय सूत्र में वाद्य यंत्रो की संख्या 49 बताई गई है।[201] स्थानांग के अनुसार वाद्ययंत्र चार प्रकार के है तत, वितत, घन मुझिर आदि।[202] औपपात्तिक सूत्र में वर्णित है कि जब कुणिय महावीर स्वामी से मिलने गया था तब जुलूस के आगे–आगे शंख, पणव, पटह, भेरि, झल्लरी, मुरज, मृदंग, दुंदुभि आदि वाद्यों को बजाते हुए लोग चल रहे थे।[203]

मौर्यकाल में भी वादकों की मण्डलियाँ हुआ करती थी–वीणा, वेणु, मृदंग आदि प्रमुख वाद्य प्रचलित थे।[204] गुप्तकालीन समाज में भी मनोरंजन का साधनों का विस्तृत प्रयोग किया जाता था। वाद्य यंत्रों का उस समय विशेष प्रचलन था। कलिदास ने अपने ग्रंथो में विभिन्न वाद्यों का वर्णन किया है। **इनमें मुरज[205], पुष्कर[206], मृदंग[207], दुंदुभि[208] मर्दल[209], वेणु[210], कीचक,[211] शंख,[212] तुर्य,[213] पटह,[214]** आदि उल्लिखित है।

पद्मपुराण में जल वाद्य का उल्लेख मिलता है।[215] परवर्ती कालों में भी तंत्रीपटह,अलाबुवीणा, ढ़पली, चमटी, मंजीर, बांसुरी, वीणा, नगाड़ा, बांसुरी, तुरही आदि के वर्णन प्राप्त होते है।[216]

इस प्रकार संगीत में वाद्य यंत्रों का प्रमुख स्थान था। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी[217] ने कहा है कि एक अवसर पर जब संन्ध्या काल में शिव नृत्य कर रहे थे उस समय शिव के गण मृदंग, भेरी, पटह, माण्ड, डिन्डिम, गोमुख, पड़व, दुर्दर आदि बाजे बजा रहे थे।

नृत्य :संगीत के तीनों अंगों में नृत्य का स्थान महत्वपूर्ण है। नृत्य के आचार्य शिव को कहा गया है। किवंदन्ती है कि ब्रह्मा के कहने पर संध्या समय शिव ने नृत्य प्रारम्भ किया था। सिंधु घाटी सभ्यता को ही संगीत के प्रारम्भ का काल माना जाता है। नृत्य बाला की मुद्रा में कांस्य मूर्ति का मिलना तथा संगीत के

देवता शिव की पूजा का प्रचलन। इन तथ्यों से प्रमाणित होता है कि नृत्य उस काल में मनोरंजन का मुख्य साधन था।

वैदिक कालीन समाज में मनोविनोद मे नृत्य का मुख्य स्थान था। ऋग्वेद में नर्त्तन का उल्लेख मिलता है।[218] नर्त्तकी का नाम नृतु था।[219] प्राचीन आचार्यो ने ''नृत्य'' और नृत्त की व्याख्या करते हुए कहा है कि ताल–लय के साथ मेल रखते हुए अंग–संचालन का नाम ''नृत्य'' है। इसे साधारण शब्दों में ''नाच'' भी कहा जाता है एवं नाचते समय शरीर के अंग–प्रत्यंगों को हिला डुला और लहरा कर मानसिक भावों को व्यक्त करने की कला का नाम ''नृत्त'' था।

रामायण में नृत्य[220,] नृत्त[221] और लास्य[222] की प्रविधियों पर प्रकाश डाला गया है। श्रीराम के जन्मोत्सव,[223] राज्याभिषेक,[224] के समय अप्सराओं के नृत्य और गंधवों के गान का उल्लेख मिलता है। इस काल में गणिका तथा शैलूजी के उल्लेख नृत्य कला के संदर्भ में मिलते है।[225] इस युग में मनाया जाने वाला शरत्कालीन कृषि महोत्सव का आयोजन नृत्य–संगीत के साथ हुआ करता था।[226] महाभारत में कई स्थानों पर नृत्य, गीत, संगीत का विवरण मिलता है। इन्द्र की सभा में विश्वाची,घृताची, रंभा, तिलोत्तमा, मेनका, उर्वशी आदि अप्सराओं द्वारा गीत नृत्य प्रस्तुत किये जाने का वर्णन मिलता है।[227]गांधारी की सेवा के लिए नियुक्त की गई वेश्याएँ नृत्य और गीत में पारंगत थी।[228] महाभारत में सुकुमार अंगो वाले लास्य नृत्य का उल्लेख मिलता है।[229] शांति वार्ता के लिए आए कृष्ण का स्वागत नृत्यांगनाओ ने ही किया था।[230]

हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व में छालिक्य नामक नृत्य का उल्लेख हुआ है। इन नृत्य क्रीड़ा में स्त्री पुरूष दोनों भाग लेते थे। इसी ग्रंथ मे सामूहिक नृत्य की एक क्रीड़ा जिसे हल्लीसक कहते है का वर्णन हुआ है।[231]

बौद्ध काल मे भी संगीत, नृत्य, वाद्य के प्रति जनता में विशेष अनुराग था। इस काल में शिक्षा के मंदिर कहे जाने वाले नालन्दा, विक्रमशिला आदि संस्थानों में गान्धर्व निकाय द्वारा कलाएँ सिखाई जाती थी। पतंजलि के महाभाव्य में भी गीत, नृत्य के उल्लेख मिलते है। यहाँ नृत्य को शिल्प न मानते हुए कला कहा है एवं इसे स्त्रियों के संदर्भ में ही कला माना गया है।[232] पतंजलि ने

नाचने वाले को श्रेणियों में विभाजित किया है। नर्तक, नर्तकी, नर्तकीका, नर्तकीतना, नर्त्तकितमा शब्दों का प्रयोग किया गया है।[233] मयुर नृत्य का उल्लेख भी भाष्य में मिलता है।[234]इस प्रकार पतंजलि कालीन समाज में नृत्य द्वारा लोगों का सामुहिक मनोरंजन होता था। नर–नारियों द्वारा सम्पादित नृत्य को हर्षातिरेक का विषय माना जाने लगा था।

मौर्य युग में नगरों में, गाँवों में नृत्य कला का प्रचार–प्रसार था। इस युग में राज्य की और से संगीत शालाओं की व्यवस्था रहती थी। जिनमें सुयोग्य आचार्यो द्वारा नृत्य की शिक्षा गणिका, दासी, अभिनेत्री, गायिका को दी जाती थी।[235]

गुप्तकाल में भी नृत्य के द्वारा मनोरंजन के विवरण मिलते है। वात्स्यायन के कामसूत्र में चौसठ कलाओं में नर्तक को भी स्थान दिया है।[236] कामसूत्र में हल्लीसक क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है।[237] नृत्य की इस विधि में बहुत सी स्त्रियाँ गोलाकार घूमती हुई नाचती रहती है। तथा उनके बीच में एक पुरूष होता है, रासक्रीड़ा का भी उल्लेख इस ग्रंथ में हुआ है।[238]

पुराणों में भी नृत्य संगीत को मनोरंजन का आधार माना गया है। लिंगपुराण में ताण्डव नृत्य शैली की उत्पत्ति का कथन वर्णित है।[239] विष्णुपुराण[240] और भागवतपुराण[241] में नृत्य क्रीड़ा का वर्णन मिलता है।परवर्ती कालों में भी नृत्य संगीत आमोद–प्रमोद का प्रमुख साधन था।

हर्षचरित में रास नृत्य का उल्लेख मिलता है।[242] हर्षचरित में जन्मोत्सव के प्रसंग में नृत्य क्रीड़ा वर्णित है।[243] कर्पूरमंजरी नाटक में 'चल्लि' नाम की एक नृत्य पद्धति का उल्लेख हुआ है।[244]

वेश्या वृत्ति/गणिका : प्राचीन भारतीय समाज में वेश्यावृत्ति को मनोरंजन का साधन माना गया है। वेश्या के संदर्भ में प्राचीन भारतीय साहित्यिक ग्रंथों में गणिका, अप्सरा, जार (गुहाप्रेमी), रखैल, वारांगना, पण्यस्त्री आदि शब्द मिलते है। वास्तव में इन शब्दों की समीक्षा की जाए तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक के स्वरूप एवं कार्यों में अन्तर है। प्रत्येक काल की विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों

में ये गणिकाएँ लोगों के मन बहलाव का जरिया बनी। वस्तुतः वेश्यावृत्ति की प्रथा मनुष्य जाति के सामाजिक संगठन की प्रक्रिया से ही पल्लवित हो रही थी। पैसे या कोई वस्तु लेकर तटस्थ रमणी अपना शरीर संभोग के लिए किसी भी पुरूष को देती थी। इसके पीछे कारण यह था कि आदिम युग में विवाह संस्कार का ज्ञान नही था अतः सभी स्त्रियाँ सामान्य थी। किसी पर किसी का अधिकार नहीं था अर्थात् सभी पुरूष ऐच्छिक रूप से सभी स्त्रियों से कामसेवन कर सकते थे। अतः सदियों से चली आ रही इस भोग लिप्सा को मिटाने के लिए तथा विवाह बंधन की पवित्रता और धार्मिकता सुरक्षित रखने के लिए सभी देश और सभी काल की सामाजिक व्यवस्था में वेश्यावृत्ति को मान्यता मिली। इससे समाज में मर्यादा की स्थापना हुई। स्कंद पुराण के माहेश्वर खण्ड में भी स्त्रियों के यथाकामित्व का उल्लेख दिया गया हे।[245]

प्राचीनकालीन ग्रन्थों के अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वेश्याओं के यहाँ सम्पन्न एवं समर्थवान व्यक्ति ही गोपनीय रूप से अपना डेरा जमाते थे। इन सम्पन्न और संभ्रान्त व्यक्तियों का ये वेश्याएँ मनोरंजन तो करती ही थी साथ ही शिक्षा का साधन भी मानी जाती थी। सहित्यिक अनुशीलन के आधार पर कहा जा सकता है। कि कामांध पुरूष की सारी चोटें अपने सिर पर उठा कर, त्यागमूर्ति वेश्या नीलकंठ के समान मृत्युंजयी बन गई है। वैदिक काल के ग्रंथो में भी वेश्यावृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद में वर्णित है कि ऐसी कन्याएँ जिनकी देखभाल करने वाला भाई, पिता, बंधु आदि नहीं होते थे वे वेश्यावृत्ति को अपनी आजीविका बना लेती थी। ऐसी स्त्रियों को ऋग्वेद में पण्यस्त्री या रूपाजीवा कहा गया है।[246] यजुर्वेद में भी वेश्यावृत्ति को मान्यता मिली है।[247] ऋग्वेद में उल्लिखित है कि ये रूपाजीवाएँ धनार्जन करने या रोजगार की चाह में समन नामक मेले में सम्मिलित होती थी।[248]

रामायण में अनेक स्थलों पर गणिकाओं एवं उनके विभिन्न व्यवसायों का उल्लेख मिलता है। राजदरबार में गणिकाओं का सम्मान होता था। महाभारत में वर्णित है कि गांधारी के गर्भवती रहने के कारण धृतराष्ट्र की सेवा में एक वेश्या रहती थी।[249] ये गणिकाएँ युद्ध में सेनाओं के साथ जाती थी। वेश्याएँ उस समय

अपने गुणों से, नृत्य से तथा कामुक कलाओं से राजदरबारों में पुरूषों के बीच समाज मे सम्माननीय दर्जा प्राप्त करती थी।[250]

मौर्य काल में भी गणिकाओं का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने कलाचार्यो के कार्यों का विवरण भी प्रस्तुत किया है जो इन बाजारू स्त्रियों को नृत्य, गीत, अभिनय, लिपिज्ञान, चित्रकर्म, वाद्य वादन, पुरूषों का भाव ग्रहण, गंध युक्ति, माल्यविधि, संवाहन कला आदि ज्ञान देते थे।[25]

पुराणों मे भी वेश्याओं के कर्तव्यों, नीति–नियमों का विशद रूप से वर्णन हुआ है। मत्स्यपुराण मे वेश्याओं को अनंगव्रत[252] और वेश्याव्रत[253] का पालन करने का निर्देश दिया है। इसी प्रकार यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय वेश्या का दर्शन शुभ माना गया है।[254] ब्रह्मवैवर्त पुराण में वेश्याओं को निंदनीय बताया है। वेश्याएँ संसार के समस्त पापों को अपने सिर पर लेती है, वेश्याओं पर विश्वास रखना मृत्यु को चुनना माना गया है।[255] पुराणों में अनेक स्थानों पर ब्राह्मणों, महर्षियों, राजाओं के वेश्या संसर्ग के वर्णन मिलते है। पुराणों के उपर्युक्त विवरण में गणिकाओं का सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलु पर प्रभाव प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है।

गुप्तकाल में भी मनोरंजन के रूप में गणिकाओं का महत्वपूर्ण स्थान था। वास्तव के जनसभा में सम्मान पाने के अधिकारिणी वे ही गणिका थी जो ''शास्त्र प्रहूत्त बुद्धि'' तथा काम और कर्म दोनों प्रकार की चौसंठ कलाओं में निपुण थी।

वेश्याओं की तुलना कठपुतली से की गई है।[256] काव्यमीमांसा मे वर्णित कथानक के अनुसार वेश्यापुत्री के विवाह की इच्छा व्यक्त करने पर वेश्या माँ ने कहा कि यह क्या अनर्थ करने पर तुली हो हमारे खानदान में किसी पर सतीत्व का लांछन नहीं लगने पाया।[257] समयमातृका मे वेश्याओं के फैंके जाल मे फँसे ग्राहको की निर्बुद्धिता का वर्णन है।[258] एक स्थान पर उल्लेख आया है कि मूर्ख लोग हमारे रचे ढोंग मे फंस जाते है और उसी माया से वेश्याएँ पैसे कमाती है।[259] क्षेमेन्द्र ने कला विलास में वेश्याओं की कला का वर्णन किया है जो इस प्रकार है : वेशकला, नृत्तकला, आँख मारना, कामभाव की थाह लेना, ठगना, मद्यपान, सहलाना, चुम्बन, रति–क्रीड़ा, रूलाई, गान, बहानेबाजी, शूल पीड़ा,

झूठमूठ, छिद्रान्वेषण, कटु भाषण, घर से दुरदुराना, वशीकरण और अन्त में वेश्या बनना प्रमुख है।[260]

नाटक :प्राचीन काल से ही नाटक का मनोरंजनात्मक परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नाटक में नट–नर्तक अपनी विशेष भूमिका निभाकर लोगों का मनोरंजन करते है। वास्तविक जीवन में जिन अनुभवों की प्राप्ति के लिए हम लोग यह कहते है कि काश ''हमारा जीवन ऐसा ही हो जाए'' उस कल्पनीय वातावरण की सुगंधि को थोडी देर के लिए नाटक के माध्यम से महसूस किया जा सकता है। वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से नाटक का प्रमाण नहीं मिलता फिर भी नाट्यसूत्रों की प्रतिष्ठा वैदिक चरण में हुई थी। ब्रह्मा द्वारा रचित नाट्यवेद में ऋग्वेद से पाठ्य सामग्री, सामवेद से गीति तत्व, यजुर्वेद से अभिनय एव अथर्ववेद से रस तत्व सामग्री ली गई है।[261] यजुर्वेद में भी नाटक के संदर्भ में एक–दो परोक्ष प्रमाण मिलते है। वाजसनेयी संहिता में पुरूषमेध यज्ञ के प्रसंग में शैलूल या अभिनेताओं की बलि चढ़ाने का निर्देश मिलता है।[262] इसी शैलूल के संदर्भ में महाभाष्य में वर्णित है कि उत्पत्ति शिलाल ब्राह्मण से हुई थी[263] एवं शिलाल का उल्लेख वैदिक कालीन ग्रंथों में मिलता है। अतः सम्भवतः शिलालि के नटसूत्रों का निर्माण ऋग्वेद शाखा के अन्तर्गत हुआ होगा। मैत्रायणी उपनिषद में स्पष्टतः नटों के बारे में वर्णित है कि वे थोड़े समय के लिए वेशभूषा पहनकर अभिनय करते थे।[264] अष्टाध्यायी में वर्णित एक अन्य सूत्र में आम्नाय को नाट्य नटों का कुल ग्रंथ बताया गया है अर्थात् नटो के धर्म को नाट्य कहा गया है।[265] नाटक के महिला पात्रों को नटियों से उल्लिखित किया गया है। शैलालि शब्द का प्रयोग नट के रूप में भारत मुनि ने नाट्यशास्त्र में, पंतजलि ने महाभाष्य में[266] एवं महर्षि वाल्मीकि ने रामायण[267] में भी नाटक के प्रवर्तक के रूप में वर्णन किया है।

रामायण में शैलूज शब्द का उल्लेख मिलता है यहाँ शैलूज से तात्पर्य नट से है।[268] महाभारत में भी नटों द्वारा मनोरंजन का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ इन्हें बहुरूपिया, शैलूजी, रंगस्त्री, नट, नर्तक आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया

है।[269] राज्यारोहण के अवसर पर नट–नर्तकों द्वारा मनोविनोद के वृत्तांत मिलते है।[270]

जैन प्राकृत ग्रंथों मे भी नाटक कला का विस्तृत वर्णन दिया गया है। स्थानांग सूत्र के अनुसार नाटक चार प्रकार के है अंचित, रिभित, आरभट, भिसोल।[271]

मौर्य युग की कला थाती को साहित्य में सुरक्षित रखने का सर्वप्रथम श्रेय कौटिल्य के अर्थशास्त्र को है। आचार्य कौटिल्य ने कलाकारों की मण्डलियों का वर्णन प्रस्तुत किया है। ये निम्न थे : नट (अभिनेता), नर्तक, गायक, वादक (कुशीलव), वाग्जीव (कथा–कहानी द्वारा मनोरंजन करने वाले), प्लवक (रस्से पर नाचने वाले), सौमित्र (ऐन्द्रजालिक), चारण।[272] कलाकारों की ये मण्डलियाँ नाटक तमाशे दिखाने के लिए एक नगर से दूसरे नगर मे घूमती रहती थी और वहाँ के नाटकग्रहों या प्रेक्षाग्रहों में शुल्क देकर अपनी कला का प्रदर्शन किया करती थी। रंगमंच पर नाटक करके आजीविका चलाने वाले को कौटिल्य ने रंगोपजीवी कहा है। स्त्री व पुरूष दोनों ही रंगोपजीवी होते थे।[273]

पंतजलि के महभाष्य में नाट्याभिनय विषयक प्रचुर सामग्री देखने को मिलती है। महाभाष्य के विभिन्न स्थलों को देखकर ज्ञात होता है कि नट संगीतज्ञ हुआ करते थे। महाभाष्य में नट का प्रयोग अभिनेता के लिए किया जाता था, नटों की स्त्रियाँ नटी कहलाती थी। नट के अभिनेता नामकरण के कारण नटी को अभिनेत्री भी कहा जाता था। इनकी संतान नाटेर नाम से जानी जाती थी।[274]इस प्रकार महाभाष्य के विभिन्न संदर्भो की सामग्री के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पंतजलि के समय तक रंगमंच पर नाटकों के अभिनय का पर्याप्त प्रचलन हो चुका था तथा नाटक नागरिकों के मनोरंजन के प्रमुख साधन बन गए थे।

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र नाट्य कला पर आधारित एक सम्पूर्ण ग्रंथ है। नाटक के उद्भव के बारें में भरत मुनि ने कहा है कि स्वयं ब्रह्माजी ने नाट्यवेद नामक पंचम वेद की सृष्टि की थी।[275] नाट्य कला से सम्बंधित समस्त सिद्वान्तों का उल्लेख नाट्यशास्त्र में मिलता है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि कहते है कि

''यह नाट्य–संसार में वेदों, विद्याओं और इतिहास की गाथाओं की परिकल्पना करने वाला होकर प्रजाजन के मनोविनोद का कर्त्ता होगा।[276]

पुराणों मे भी नाटकों द्वारा मनोरंजन के वर्णन मिलते है विष्णु पुराण[277], अग्निपुराण[278], ब्रह्माण्ड पुराण[279] में भी नाटक सम्बंधी विवरण प्राप्त होते है। विष्णु धर्मोतर पुराण में नाटक का अर्थ है दूसरों की नकल उतारने की कला।[280]

गुप्तकालीन समय सांस्कृतिक दृष्टिकोण की अपेक्षा उत्कृष्ट कहा जाता है। इस काल में कई नाटकों की रचना हुई। कालिदास, भास, अश्वघोष, शुद्रक इस युग के महान नाटककार हुए। कामसूत्र में वात्स्यायन में 64 कलाओं की सूची में अभिनय को सम्मिलित किया है। इनमें पत्र–लेख रचना, दसन–वसन, अंग रागादि लेपन, चित्रयोग, रूप भरना (मेकअप करना), नेपथ्य प्रयोग, नाटक आख्यायिका दर्शन, काव्य समस्यापूर्ति विदेशी कलाओं का ज्ञान, देशी बोलियों का ज्ञान, सुन कर दुहराना, मनसी काव्यक्रिया–आशु काव्य, वस्त्रगोपन (नकाब) आदि कलाओं का उद्देश्य अभिनय क्रिया में सहायता करते जनसामान्य का मनोरंजन करना था।[281] हर्षचरित में भी नाटक के संदर्भ में मनोरंजन का उल्लेख मिलता है।[282]

उपर्युक्त तथ्यों को देखकर निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन समय में नाट्यकला चरम पर थी। अभिनेता तथा दर्शक एक दूसरे को सहयोग करते थे, दर्शक भी काल्पनिक शक्ति एवं बौद्धिक शक्ति का भरपूर प्रयोग कर नाटक का आनंद उठाते थे। इसी प्रकार के वातावरण मे नाटक जनसामान्य का मनोरंजन किया करते थे।

उत्सव/मेले :प्राचीन भारतीय नागरिक उत्सवों का जमकर मजा लिया करते थे। इन उत्सवों में सभी आयु वर्ग के स्त्री, पुरूष, बच्चे भाग लिया करते थे। प्राचीन भारत में अधिकांश उत्सव ऋतु से सम्बंधित होते थे। ये उत्सव सामाजिक, पारिवारिक एवं धार्मिक रूपों में आयोजित होते थे। लोगों को इन उत्सवों के द्वारा हृदय में एकता, आह्लाद और उमंग को व्यक्त करने के अवसर मिलते थे। प्राचीन भारत के प्रमुख उत्सव या मेले निम्न प्रकार है :

समन : वैदिक काल में आस–पास के गाँवों के आर्यों का हृदय संघबद्ध करने के अभिप्राय से मेलों और जलसों का आयोजन किया जाता था। ऋग्वेद में इसी संदर्भ में समन नामक मेले का वर्णन मिलता है। यह मेला ग्रामीण क्षेत्रों में लगता था। इसमें आस–पास के ग्रामीण तथा कलाकार भाग लेते थे। कवि[283], धनुर्धारी[284]अपनी कला का प्रदर्शन कर जनसामान्य को मनोरंजन करते थे। सालंकारा महिलाएँ भी मेले में मनोविनोद हेतु उपस्थित रहती थी।[285]

कौमुदी महोत्सव : इस महोत्सव के प्रमाण जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों में मिलते है। यह प्रत्येक चार माह पर सावन, फाल्गुन, आषाढ़ कार्तिक की पूर्णिमा अथवा शरद पूर्णिमा के समय मनाया जाता था।[286] सात दिनों तक मनाये जाने वाले इस पर्व में राजा, ग्रहस्थ, सन्यासी, विद्वान, बच्चे, वृद्ध सभी आनंद को प्राप्त होते थे। नगर को भव्यता के साथ सजाया जाता था।[287] सम्पूर्ण नगर के लिए आज का दिन अवकाश का होता था।[288] इन मेलों में संगीत, नृत्य, गीत आदि के आयोजन होते थे। इस प्रकार इन उत्सवों में नागरिक खुब धूम मचाते, घूमते फिरते, खाते–खिलाते थे।[289] वात्स्यायन ने कौमुदी महोत्सव को देशव्यापी उत्सव कहा है।[290] भोज में इसे कौमदी प्रचार कहा है।[291]

मदनोत्सव या बसन्तोत्सवः पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में इन उत्सव का उल्लेख किया है।[292] महाभारत में भी बसन्तोत्सव का वर्णन अनेक प्रसंगों में मिलता है।[293] यह उत्सव माघ की शुक्ला पंचम तिथि को मनाया जाता था। इस दिन सम्पूर्ण नगर मधुर संगीत, नृत्य तथा मृदंग के मधुर घोष से मुखरित हो उठता था, रंग खेला जाता था और अबीर–गुलाल छिड़का जाता था।

कामसूत्र में भी अनेक प्रकार से बसन्तोत्सव मनाने का उल्लेख मिलता है। इसमें नर–नारी कई दिनों तक आनंद मनाते थे।[294] कामसूत्र मे होलिका नामक एक अन्य उत्सव आया है कि बसन्तोत्सव में आयोजित होता था।[295]

शालभंजिका महोत्सवः यह उत्सव शाल वन में मनाया जाता था। जातक ग्रन्थों में वर्णित है कि महादेवी सहेलियों के साथ शाल वन में खेलने चली गयी और एक शालवृक्ष के तने के पास पहुंची तब फूलों से लदी हुई एक टहनी को थामने के लिए उन्होने हाथ बढाया। देवी के हाथ बढाते ही वह टहनी अपने आप झुक गयी। देवी ने उसे पकड़ लिया। ऐसी दशा में उसे प्रसव वेदना का अनुभव हुआ।[296] अवदान शतक[297]में भी शालभंजिका उत्सव का उल्लेख मिलता है। नगर के आस पास के शाल वनों में हजारो लोग एकत्र होकर साखू के फूल तोडते, नाचते, गाते और खेलते कूदते, रमते फिरते थे।

कुछ अन्य उत्सवः सुरानक्खत[298],जयपान मंगलोत्सव[299],सुशनक्षत्र पर्वोत्सव हस्तिमंगलोत्सव[300], यक्षरात्रि महोत्सव, कर्षणोत्सव एवं गिरव्जैसमज्ज[301], उदकक्ष्वेडिका, पुष्पावचायिका, अभ्यूषखादनिका, अशोकोत्तंसिका पर्वोत्सव आदि उत्सव प्राचीन काल में मिलते है। इन उत्सवों में सम्पूर्ण नर–नारी विविध क्रिया कलापों द्वारा मनोरंजन करते थे।

इनके अतिरिक्त पारिवारिक उत्सवों में जन्मोत्सव, विवाहोत्सव भी मनोविनोद के प्रमुख साधन थे। धार्मिक उत्सवों में रथयात्रा महोत्सव, देवताओं की पूजा महोत्सव, यज्ञ महोत्सव, तीर्थ यात्रा महोत्सव आदि प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में उत्सव संस्कृति के परिचायक रहे है तथा सम्पूर्ण समाज एवं परिवार के मनोरंजन के विशिष्ट साधन रहे है। इनके अतिरिक्त सौन्दर्य प्रसाधन, आभूषण, वस्त्र, श्रृंगार, केशविन्यास, मद्यपान, खान पान की सामग्री भी प्राचीन भारतीयों के आमोद–प्रमोद के प्रमुख साधन थे।

मनोरंजन के उपर्युक्त साधनों को देखकर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय जीवन में मनोरंजन का महत्वपूर्ण स्थान था। मानव अपनी चिंता में फँसे जीवन में कुछ पल आनंद, उत्साह प्रेरणा के साथ बिताना चाहता है ऐसी स्थिति में मनोरंजन उसके जीवन में अमृत के समान है। मानव सभ्यता के विकास के क्रम से ही मनोरंजन का दौर शुरू होता है तथा कई अच्छे और

बुरे पहलुओं से गुजरते हुए ये मनोरंजन के साधन सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, मानसिक जीवन को प्रभावित करते रहे है। राष्ट्र के विकास में भी इन्होने भागीदारी निभाई है फिर भी इन मनबहलाव के साधनों का परिमित उपयोग परमावश्यक है। इनकी उचित व्यवस्था करके ही बडी समस्याओं जैसे जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी आदि से छुटकारा मिल सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऐतरेय ब्राह्मण, 2/25, 4/7–8, 5/1/1–4
2. वही, 4/7
3. पंचविंशति ब्राह्मण, 7/2/1–2
4. विन्सेन्ट स्मिथ, पृ. 122
5. दीघनिकाय,1/12,जातक,पृ. 214 तथा विनयपिटक पृ. 214
6. चीनी यात्री फाह्यान का यात्रा वृतांत
7. कथासरित्सागर, पृ. 6 एवं 352
8. हरिवंश पुराण, 34/18–31
9. ऋग्वेद 1/8/2, 5/58/4.
10. अथर्ववेद, 5/22/4, 20/70/18
11. अष्टाध्यायी, 4/2/57
12. वही, 2/2/27
13. जातक, 4/81/2
14. वही, 4/80/82
15. विनय पिटक, हिन्दी संस्करण, प्रष्ठ 529
16. महाभारत 4/13/14
17. औपपातिक सूत्र, 31
18. नायाधम्मकहाओ 1/1/24
19. अंतगडदसाओ, प्रष्ठ 20
20. कल्पसूत्र 4/60
21. अंतगडदसाओ, प्र. 20
22. इंडिका, प्रष्ठ 6/9
23. नैषध चरित्र 21/5–6
24. कुमार पाल चरित्र, 2/1–20
25. चारूदत्त, पहला अंक

26. मृच्छकटिकम्, दूसरा अंक
27. कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति पृ. 48
28. चुल्लवग्ग,5/1/3/5
29. कल्पसूत्र 4/60,नायाधम्मकहाओ 1/1/24
30. अष्टाध्यायी,1/526–533
31. रामायण, 6/40/13
32. महाभारत, 3/111/16
33. जातक, 4/30
34. धम्मपद अत्थकथा, 1/179
35. सूत्रकृतांग, 1/4/2
36. स्कंद पुराण,माहेश्वर खण्ड 2/38
37. मालविकाग्निमित्र, अंक 4 पृ. 335
38. रघुवंश 16.83 कराभिघातोत्थित कुन्दुकेय मालोक्य बालाति कुतूहलेन।
39. कथासरित्सागर, पृ. 189
40. राधाकुमुद मुखर्जी हिन्दु सभ्यता पृ. 30–32
41. ए.ए मैकडोनल एवं ए. बी कीथ, वैदिक इन्डेक्स, भाग–2 पृ. 21
42. रामायण, 6/35/32
43. महाभारत, शांतिपर्व 139–60
44. जातक 3/134, 4/431, 6/418
45. वही पृ. 82, जातक 3 पृ. 244
46. पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, 122/38
47. स्कंदपुराण–कार्तिक मास माहात्म्यम्, 10/32
48. हरिवंश पुराण, 2/20/16
49. कुमारसम्भव 5/26
50. ऋतुसंहार, अंक 3
51. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 6 पृ. 107, अंक 1 पृ. 14
52. वृहत्संहिता, पृ. 88–1

53. कादम्बरी, पृ. 94—95 एवं 150—151
54. काव्यमीमांसा पृ. 101
55. जातक, 1 / 295
56. वही, 1 / 323
57. हरिवंश पुराण 2 / 88
58. कादम्बरी, 1 / 45
59. रघुवंश, 19 / 9—10
60. गौडवहो, पृ. 161—166
61. पद्मचूड़ामणि, 7 / 27—50
62. शिशुपाल वध काव्य, 8 / 1—62
63. कथाकोश प्रकरण पृष्ठ 57—58
64. रमेशचन्द्र मजूमदार, हेमचन्द्रराय चौधरी तथा कालिलिंकर रत्त भारत का वृहद इतिहास, प्राचीन भारत— I पृ. 26
65. अष्टाध्यायी, 5 / 4 / 126
66. काशिका, 1 / 1 / 68, पृ. 435
67. अष्टाध्यायी, 5 / 4 / 61
68. रामायण, 2 / 63 / 20
69. वही, 3 / 43 / 31
70. अर्थशास्त्र, पृ. 49
71. भागवत पुराण 4 / 26 / 6—8
72. स्कंदपुराण, नागर खंड, 10 / 1—12
73. पद्मपुराण, सृष्टि खंड, 18 / 254
74. रमेशचन्द्र मजूमदार, हेमचन्द्र राय चौधरी तथा कालिलिंकर रत्त भारत का वृहद इतिहास, प्राचीन भारत— I पृ. 168—169
75. कादम्बरी, पृ. 63
76. हर्षचरित पृ. 132
77. वाजसनेयी संहिता, 30 / 18 / 16—27

78. ऋग्वेद,1/41/9, 7/86/6
79. तैत्तिरीय संहिता, 1/8/4/12, शतपथ ब्राह्मण, 5/4/4/63
80. ऋग्वेद, 10/34
81. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास पृ. 36
82. अष्टाध्यायी, 5/2/64
83. जातक, 1/293
84. सूत्रकृतांग, 1/9/17 अट्ठावयम् न षिक्षेत्
85. महाभारत, 2/60/5
86. वही, 3/13/9
87. मनुस्मृति, 3/159
88. हरिवंश पुराण, 3/111
89. वही, 2/128/9
90. अर्थशास्त्र,अध्याय 20/1''दूताध्यक्षो द्युतमेक मुखं कारयेत''
91. रघुवंश, 6/18
92. कामसूत्र,पृ. 29
93. वही, 1/4/12
94. ऋग्वेद, 1/16/9
95. वही, 1/39/2
96. वही, 1/80/7
97. वही, 1/11/7
98. वही, 1/35/10, 10/87/2
99. वाजसनेयी संहिता, 30/31,तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/4/17/1
100. रामायण, 3/17/9–11
101. अर्थशास्त्र, पृ. 395
102. विष्णुपुराण, 5/27/18
103. पद्मपुराण, पाताल खण्ड, 37/113
104. कामसूत्र पृ. 29

105.हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद पृ. 145

106.ऐतरेय ब्राह्मण, 3/35/1

107.अथर्ववेद, 15/6/4, शतपथ ब्राह्मण, 11/5/6/8

108.आश्वलायन ग्रहसूत्र, 3/3

109.सुमंगलविलासिनी 1/89

110.समवायांग सूत्र, 4/1

111.स्थानांग सूत्र, 7/3—48

112.मनुस्मृति, 10/11

113.वायु पुराण, 61/137

114.महाभारत, 1/1—1

115.मेघदूत, पृ. 32

116.कादम्बरी पृ. 9, 205, 427

117.नायाधम्मकहाओ, 1/16, 79—80

118.कामसूत्र, 1/4/38—39

119.दशकुमार चरित्र, 2/2

120.वही, 1/434—36

121.हर्षचरित, पृ. 71

122.आदिपुराण, 14/190—192

123.जातक, 4/390

124.विनयपिटक, पृ. 390

125.महावग्ग, 1/14/1

126.दव्यावदान, पृ. 373—4

127.रामायण, 2/60/9, 2/67/17, 6/125/28

128.महाभारत, 1/22/14—16

129.कामसूत्र, 1/439—40

130.पद्मचूड़ामणि, 7—6—20

131.कामसूत्र, 1/4/42

132. रामायण, 4/25/17 ततः क्रीडामहे सर्वावनेषु मदनोत्कटा

133. महाभारत, 3/237

134. नैषधचरित्र 20–96 अखत्थदलसंकाशं गुह्यं

135. शिशुपाल वध महाकाव्य, 7/1–75

136. कात्यायन श्रोत सूत्र 13/3/2

137. हरिवंश पुराण 2/14/10

138. भविष्य पुराण, 1/13/58

139. दोला तंवित सम्पति वनिता संघसविते। ध्वजैलंवित दोलानां घण्टानां मिनराकुले। वायु पुराण, 54/35

140. ब्रह्मपुराण, 2/25/31

141. कामसूत्र, पृ. 45

142. कुट्टनीमतम्, श्लोक 670

143. कुमारपाल चरित्र, 3/19–25

144. कुट्टनीमतम्, श्लोक 223

145. यशस्तिलक चम्पू, 1/596

146. शतपथ ब्राह्मण, 7/4/1–24

147. रामायण 5/6/36 चित्रशाला ग्रहाणि 2/10/13

148. अजयमित्रशास्त्री का लेख–''नग्नजीत और उसका चित्रलक्षण'' सम्मेलन पत्रिका, भाग–49, संख्या 1 पृ. 15–2

149. श्नव्याकरण सूत्र, 2/5/16

150. कल्पसूत्र, 5/211

151. अर्थशास्त्र, 2/27/41

152. कुमार संभव,5/58

153. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3/45/38

154. अभिज्ञान शाकुन्तलम् पृ 119

155. कामसूत्र 1/3/16

156. हर्षचरित 5/214

157.कादम्बरी 1/47

158.कर्पूर मंजरी, पहला अंक

159.नैषधचरित्र 18/12/26

160.विद्धशाल भंजिका–पहला अध्याय

161.हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ. 66

162.वाराहोपनिषद, संगीत, ताल, लय, वाद्य वंश गतापि मौलिस्थ कुम्भररिक्षगधीर्नरीव–दृष्टव्य

163.द्यष्टोत्तरशतोपनिषद्, निर्णय सागर प्रति पृ.529

164.कौषीतकी ब्राह्मण, 295

165.ऋग्वेद, 1/28/5, 6/47/29

166.वही, 1/7/1

167. वही,1/43/4

168.सायण–ऋग्वेद भाष्य भूमिका

169.कात्यायन श्रोतसूत्र 18/3/21

170.अष्टाध्यायी 5/1/129, 3/1/147, 4/1/81

171.स्थानांग सूत्र 4/4/40

172..वही, 7/2/1–20

173.राजप्रश्नीय सूत्र, 3/8

174.जातक, 3/409

175.रामायण, अयोध्या पर्व, 20/15

176.महाभारत, शांति पर्व 184/39,40 हरि, विष्णु 85 वाँ अध्याय

177.महाभारत, वनपर्व 44/6–10, हरि, विष्णु 148 वाँ अध्याय

178.वही, विराट पर्व अध्याय, 11

179.जयन्ती च ललन्ती च रहः पर्यचदत्तथा।

180.गंधर्वा तुंबुरू श्रेष्ठाः कुशला गीत सामसु। वही, वन पर्व 43/28–32 गीत वादित्र कुशलाःसम्यक् ताल विशारदा। सभा पर्व 4/38, 39

181.वाचस्पति गौरोला, भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण, पृ. 121

182.अर्थशास्त्र, 1/7/1/3, 1/13/17—1, 4—79, 4/2

183.कुमारसंभव, 7/10

184.रघुवंश, 4/20

185.मेघदूत उत्तर मेघ, 26

186.लिंगपुराण, 2/3

187.हरिवंशपुराण, 86/13—15, 9/26

188.पद्मपुराण, भूमिखण्ड, 46/24—27

189.कादम्बरी, पृ. 1—52

190.शिशुपाल वध काव्य, 6/49, 12/43

191.जयनारायणपाण्डेय, पुरातत्व विमर्श पृ. 302 एवं मैकक्रिण्डल, इण्डस सिविलाइजेशन पृ. 141

192.ऋग्वेद, 9/66/8

193.वही, 2/35/13

194.वही, 2/43/3

195.वही, 1/18/5

196.वही, 1/9/10

197.रामायण, 10/37/45, सुंदर काण्ड

198.रामायण, 1/32

199.महाभारत, सभा पर्व 53/17, विराट पर्व 72/27

200.छालिक्य गानं बहुसविधानं तछेव गंधर्व मुदा हरन्ति। वही, विष्णु पर्व, अध्याय 148

201.महावग्ग, ललित विस्तर, दीघनिकाय, 251

202.राजप्रश्नीय सूत्र, 1/50

203.स्थानांग सूत्र 8/13

204.औपपातिक सूत्र, 31

205.अर्थशास्त्र, 2/43/27/7

206.मेघदूत 1—60, कुमारसंभव 6/40, मालविकाग्निमित्र 1/22

207.मेघदूत 2–5, रघुवंष 19–14, मालविकाग्निमित्र 1/21

208.रघुवंश, 13–40, 16/13

209.वही 10/76

210.ऋतुसंहार, 2/1 तथा 4

211.रघुवंश, 19/35

212.वही 2/12, कुमार संभव 1/8

213.वही 6/9, 7/63, 1/64

214.वही 3/39, 6/56

215.वही, 9/71

216.पद्म पुराण, पृ. 220, श्लोक 82

217.हर्षचरित, चतुर्थ उच्छवास

218.हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद पृ. 122

219.ऋग्वेद, 1/10/1

220.वही 1/92/4

221.रामायण, 2/20/10

222.वही, 4/5/17

223.वही, 2/69/4

224.रम्याश्च जनसम्बाधा नट नर्तक संकुला। वही, 1/18/18

225.वही, अयोध्या सर्ग 3/4/15

226..वही, 1/10/5

227.वही, 1/32

228.महाभारत, शांतिपर्व 191/16

229.वही, 1/1/8, 5–9

230.वही विष्णु पर्व 4/11–8

231.वही, उद्योग पर्व 51–64हरिवंश पुराण 2/89/67

232.महाभाष्य, 7/1/74, पृ. 70

233.वही, 6/3/42 पृ. 329

234.''प्रियांमयूराः प्रतिर्ननृतीति यद्धतत्वं मखर ननृतीषि दृष्टः।'' वही पृ. 338

235.अर्थशास्त्र, 3/27

236.कामसूत्र, पृ. 29–30

237.वही, 2/10–25

238.वही

239.लिंग पुराण 1/106

240.विष्णु पुराण, 5/13/14

241.भागवत पुराण, 10/33

242.हर्षचरित 2/78

243.वही, 4/32

244.कूर्परमंजरी, पृष्ठ 100

245.स्कंद पुराण, 16/41

246.ऋग्वेद 4/5/5, अथर्ववेद 1/17/1

247.यजुर्वेद,30/15

248.ऋग्वेद, 4/58/8

249.महाभारत, आदि पर्व, 115–29

250.वही उद्योग पर्व 86–115

251.अर्थशास्त्र, अध्याय 27

252.मत्स्य पुराण 70/33

253.वही 70/26

254.वही 243/17

255.ब्रह्मवैवर्त पुराण, 4/2/3/26–41

256.कुट्टनीमतम्–303–323

257.काव्यमीमांसा पृ. 89–90

258.समयमातृका, 23/26

259.वही, 25/37

260.कलाविलास, 4/2–1

261.जग्राहनाट्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेवच यजुर्वेदा दभिनयान्रसा चाथर्वणादीपि।। नाट्यशास्त्र 1/17

262.वाजसनेयी संहिता, 30/6, तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3/4/2/1

263.महाभाष्य 4/3/111

264.मैत्रायणी उपनिषद, 4/2

265.नटांना धर्म आम्नायो वा नाट्यम्, वही, 4/3/129

266.महाभारत 4/1/114

267.रामायण, 2/83/5, 6/34/42–43

268.वही

269.महाभारत, विष्णु पर्व 16/30, शांति पर्व 36/25, उद्योग पर्व 94/38

270.वही, सभा पर्व 30/48

271.स्थानांग सूत्र, 4/4/40

272.अर्थशास्त्र 2/27

273.वही

274.महाभाष्य 2/1/69

275.नाट्यशास्त्र,1/17

276.वही 1/29

277.विष्णुपुराण 2/6/22

278.अग्निपुराण 338–342

279.ब्रह्माण्ड पुराण 4/37/8

280.विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3/20/1

281.कामसूत्र अंक।, पृ. 261

282.हर्षचरित

283.ऋग्वेद, 2/16/7, 9/97, 47

284.वही, 6/75/3

285.वही, 1/124/

286.उम्मदत्ती जातक, 527

287..जातक, 1 पृ. 433, 499, 508, 527

288.वही

289.जातक, 6/329, 1/25, 6/328

290.कामसूत्र 1/4/42

291.श्रृंगार प्रकाश, 15/6

292.अष्टाध्यायी, 6/2/74

293..महाभारत, आदिपर्व, 2/9/8

294.कामसूत्र,1/4/43

295.वही,1/4/60

296.जातक 1/52

297.अवदानशतक 1/201

298.जातक 6/161, 1/362, 1/489, 5/11, 3/100

299.वही 6/393, धम्मपद अत्थकथा 1/193

300.जातक, 163–246–49, 4–91

301.चुल्लवग्ग 5/2–6, 6/2/7

अध्याय–षष्ठम (अ)

जैन पुराणों में प्रतिपादित मनोरंजन

6.4 पद्मपुराण में प्रतिपादित मनोरंजन

1. मनोरंजन के साधन

2. उल्लेख

3. महत्व

षष्टम अध्याय (अ)

पद्मपुराण आचार्य रविषेण द्वारा रचित 734 वि.स. (667 ई.) का ग्रन्थ है। जैन पुराणों में राम के पद्म नाम को स्वीकार करके पुराणों की रचना की गई है। रामकथा भारतीय साहित्य का सबसे अधिक प्राचीन, व्यापक, रोचक एवं सम्मानीय विषय रहा है। रामकथा की तीन धाराएँ कथा साहित्य में प्रचलित है– हिन्दु, बौद्ध तथा जैन। तीनों ही धर्मावलम्बी राम को अपना आदर्श महापुरुष मानते है।

जैन परम्परा में राम को त्रैसठ शलाका पुरुषों में वासुदेव के रुप में गिना जाता है और उनके जीवन सम्बन्धित अनेक बड़े–बड़े पुराण भी रचे गए है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम इतने अधिक लोकप्रिय पुरुष हुए है कि उनका वर्णन न केवल भारतवर्ष के साहित्य में हुआ अपितु भारतवर्ष के बाहर भी सम्मान के साथ उनका निरुपण किया गया है। पद्मपुराण संस्कृत जैन कथा साहित्य का आद्य ग्रन्थ माना जाता है। आचार्य रविषेण ने इस ग्रन्थ में तत्कालीन युग की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थिति का सम्यक् विवेचन किया है। इन्हीं कथानकों में मनोरंजन के तत्व यदा–कदा बिखरे पड़े है जो कथावस्तु को रोचकता प्रदान करने के साथ ही तत्कालीन युग की सांस्कृतिक छवि को प्रस्तुत करते है। पद्मपुराण में मनोरंजन के लिए क्रीड़ा शब्द आया है। क्रीड़ा के चार प्रकार बताए गए है।[1]

1. **चेष्टा**[2]
2. **उपकरण**[3]
3. **वाक् क्रीड़ा**[4]
4. **कलाव्यत्यसन**[5]

शरीर से उत्पन्न होने वाली क्रीड़ा चेष्टा कहलाती है। गेंद आदि खेलना उपकरण है। उक्त दोनों क्रीड़ाएँ शारीरिक मनोरंजन के अन्तर्गत समाहित है। नाना प्रकार के सुभाषित कहना वाक् क्रीड़ा है। जुआँ आदि खेलना कलाव्यत्यसन है। ये दोनों क्रीड़ाएँ मानसिक मनोरंजन में वर्णित है। इनके

अतिरिक्त सीता शास्त्र निरुपित चेष्टाओं द्वारा उज्ज्वल क्रीड़ा करती थी।[6] पद्मपुराण में प्रतिपादित मनोरंजन के साधनों को निम्न प्रारुपों में विभक्त किया जा सकता है।

1. **शारीरिक मनोरंजन**
2. **मानसिक मनोरंजन**
3. **राजनैतिक मनोरंजन**
4. **सामाजिक मनोरंजन**
5. **धार्मिक मनोरंजन**
6. **आर्थिक मनोरंजन।**

शारीरिक मनोरंजन :

पद्मपुराण में वर्णित शारीरिक मनोरंजन के साधनों में स्नान क्रिया, कन्दुक क्रीड़ा, पशु–पक्षी क्रीड़ा, जल क्रीड़ा, युद्धक्रीड़ा आदि मुख्य रुप से उल्लिखित है। उपरोक्त चुस्ती–फुर्ती के कृत्यों द्वारा पद्मपुराण कालीन समाज के लोग मनोरंजन करते थे।

स्नान :शरीर को स्निग्ध व चित्त को प्रसन्न रखने के लिए स्नान एक आवश्यक नित्य कर्म है। पद्मपुराण से उस समय के राजवर्ग की ही स्नान विधि का विशेष रुप से पता लगता है। साधारण वर्ग की स्नान क्रिया द्वारा मनोरंजन का कोई वर्णन उपलब्ध नहीं है। पद्मपुराण में रावण के स्नान समारोह की विधि का विवरण दिया गया है।[7] स्नान कराने का कार्य नवयौवनवती स्त्रियाँ करती थी।[8] रावण को इन लीलावती स्त्रियों ने स्नान के पूर्व सुगंधित उबटन लगाया फिर **रजत कलश[9], स्वर्ण कलश[10], कमल के पत्रपुटों से[11] सफेद[12], लाल रंग[13]** के कलशों से अभिषेक कराया। तत्पश्चात् उत्तम आसन पर बैठकर स्नान करने के पश्चात् रावण ने अलंकार धारण किए।[14]

पद्मपुराण से ज्ञात होता है कि स्नान के पूर्व व्यायाम भी किया जाता था तथा सिर में सुगंधित आँवले का पंक लगाया जाता था। स्नान के योग्य वस्त्र

भी पहने जाते थे, स्नान के योग्य आसन एवं विविध कलशों को स्थापित किया जाता था।[15] चक्रवर्ती सनत्कुमार को स्नान विधि करते हुए देवकुमारों ने देखा और उनके रुप सौंदर्य की अद्भूत प्रंशसा की।[16] अतः स्नान वास्तव में शरीर सौंदर्य को बढ़ाने के साथ साथ मनोविनोद में भी सहायक था। स्नान के पूर्व सुगंधित हितकारी तथा मनोहर वर्ण वाले तेल की मालिश की जाती थी फिर शरीर के अनुकूल सुगंधित पदार्थो का उबटन किया जाता था।[17] उबटन के बाद राजा को पूर्व दिशा की ओर मुख कर स्वर्ण, मणि निर्मित चौकी पर बिठाया जाता था।[18] इस समय शरीर को घिसना, पानी छोड़ना आदि की लय से सहित मन को हरण करने वाले तथा सब प्रकार की साज साम्रगी से युक्त बाजे बजाए जाते थे।[19] विद्याधर स्त्रियों ने राम, लक्ष्मण एवं सीता का गन्धोदक से परिपूर्ण स्वर्ण, मरकत मणि, हीरा, स्फटिक मणि तथा इन्द्रनील मणि निर्मित कलशों से अभिषेक किया।[20] स्नान विधि अत्यन्त सुखकारी थी तथा मन को सन्तुष्ट करती थी। राम ने मोहवशात् मृत लक्ष्मण को इस सुख का आश्रय देने के लिए स्नान भूमि में ले जाकर स्नान विधि कराई।[21]

जलक्रीड़ा : पद्मपुराण में अनेक जगहों पर जल क्रीड़ा का मनोरम एवं आकर्षक चित्रण किया गया है। नदी, तालाब, वापिका, सरोवर आदि स्थानों पर स्नान करते समय यह क्रीड़ा की जाती थी। जल क्रीड़ा में स्त्रियाँ एवं पुरुष समान रुप से भाग ले कर मनोरंजन करते थे। पद्मपुराण में राजा दशानन की जलक्रीड़ा का सुन्दर वर्णन मिलता है। एक बार दशानन जब मेघरव नामक पर्वत पर स्वच्छ जल से भरी वापिका पर पहुँचा तो वापिका में छह हजार कन्याएँ उस समय जल क्रीड़ा में लीन थी।[22]वह वापिका विभिन्न वर्णो के कमलपुष्पों से तथा क्रोंच, हंस, सारस, चकवा आदि पक्षियों से शोभायमान थी।[23]जलक्रीड़ा में संलग्न उन कन्याओं में से कुछ कन्यायें दूर तक उड़ने वाले जल के फव्वारे से क्रीड़ा कर रही थी और कुछ विनोद करने वाली सखियों से दूर हटकर अकेली–अकेली ही घूम रही थी। कोई कन्या शैवाल से सहित कमलों के समूह में बैठकर दाँत दिखा रही थी अपनी सखियों के लिए कमल की आशंका उत्पन्न

कर रही थी।[24]कोई कन्या पानी को हथेली पर रख दूसरे हाथ की हथेली से उसे पीट रही थी और उससे मृदंग जैसा शब्द निकल रहा था। कोई कन्या भ्रमरों के समान गा रही थी।[25]दशानन इस दृश्य को देखकर क्रीड़ा करने की इच्छा से उनके बीच चला गया तथा वे कन्याएँ भी उसके साथ क्रीड़ा करने के लिए बड़े हर्ष से तैयार हो गई[26] तथा कामदेव के वशीभूत हो गई।[27]

जलक्रीड़ा यंत्र भी जलक्रीड़ा के समय मनोरंजन में वृद्धि करते थे। माहिष्मति नगरी के राजा सहस्त्ररश्मि ने उत्कृष्ट कलाकारों के द्वारा नाना प्रकार के जलयंत्र बनवाए थे। उन सब यंत्रों का आश्रय कर सहस्त्ररश्मि ने नर्मदा नदी में उतरकर नाना प्रकार से क्रीड़ाएँ की।[28]राजा के साथ यंत्र निर्माण को जानने वाले ऐसे अनेक मनुष्य थे जो समुद्र का भी जल रोकने में समर्थ थे।[29]अतः सहस्त्ररश्मि अपनी इच्छानुसार नर्मदा में भ्रमण कर रहा था। यंत्रों के प्रयोग से नर्मदा का जल क्षणभर में रुक गया था। इसलिए नाना प्रकार की क्रीड़ा में निपुण स्त्रियाँ उसके तट पर भ्रमण कर रही थी।[30]शरीर का लेप घुल जाने के कारण जो नखक्षतों से चिन्हित स्तन दिखला रही थी। ऐसी कोई स्त्री अपनी सौत के लिए ईर्ष्या उत्पन्न कर रही थी। जिसके समस्त अंग दिख रहे थे। ऐसी कोई उत्तम स्त्री लजाती हुई दोनों हाथों से बड़ी आकुलता के साथ पति की ओर पानी उछाल रही थी। कोई स्त्री सौत के नितम्ब स्थल पर नखक्षत देखकर क्रीडाकमल की नाल से पति पर प्रहार कर रही थी। कोई एक स्वभाव की क्रोधिनी स्त्री मौन लेकर निश्चल खड़ी रह गई थी। तब पति ने चरणों में प्रणाम कर उसे किसी तरह सन्तुष्ट किया।[31] किसी स्त्री ने चन्दन के लेप से पानी को सफेद कर दिया था तो किसी ने केशर के द्रव से उसे स्वर्ण के समान पीला बना दिया था।[32]उत्तमोत्तम स्त्रियों से घिरे मनोहर रुप के धारक राजा सहस्त्ररश्मि ने स्त्रियों के साथ निम्न प्रकार से क्रीड़ा की।[33]किसी को देखकर, किसी को स्पर्श कर, किसी के प्रति कोप प्रकट कर, किसी के प्रति अनेक प्रकार की प्रसन्नता प्रकट कर, किसी को प्रणाम कर, किसी के ऊपर पानी उछाल कर, किसी को कर्णाभरण से ताड़ित कर, किसी को धोखे से वस्त्र खींच कर, किसी को मेखला से बाँधकर, किसी के पास से दूर हटकर, किसी को भारी डांट

दिखाकर, किसी के साथ सम्पर्क कर, किसी के स्तनों में कम्पन उत्पन्न कर, किसी के साथ हँस कर, किसी के आभूषण गिरा कर, किसी को गुदगुदाकर, किसी के प्रति भौंह चलाकर, किसी से छिपकर, किसी के समक्ष प्रकट होकर तथा किसी के प्रति अन्य प्रकार से विभ्रम दिखाकर इस प्रकार राजा सहस्त्ररश्मि यंत्र के द्वारा छोड़े गए जल के बीच में काम उत्पन्न करने वाली अनेक उत्कृष्ट स्त्रियों के साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करता था। राम एवं लक्ष्मण भी जलक्रीड़ा के समय अनेक उत्तमोत्तम विधियों का प्रयोग करते थे। कभी वृक्षों के समूह पर चढ़ कर जल में कूदते थे। कभी अनुपम चेष्टाएँ करते थे।[34]

राम एवं सीता की जलक्रीड़ा के प्रसंग में वर्णन है। राम एवं सीता उत्तम गीत गाते हुए हथेलियों के आघात अद्भूत(जलवाद्य) जल का बाजा बजाते थे। यह जलवाद्य मधुर, सुन्दर और विचित्र ध्वनि कर सभी को आमंत्रित करता था। रामचन्द्र जी पानी में गोता मार कर बहुत दूर लम्बे जाकर कमलवन में छिप जाते है। तद्नन्तर सीता भी उनका अनुगमन कर क्रीड़ा करती थी।[35] राम, सीता और लक्ष्मण की यह जलक्रीड़ा उन्हें वन में भी अत्यधिक सुख प्रदान कर मनोरंजन कर रही थी।

जलक्रीड़ा संसार के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने का प्रमुख साधन भी थी। पद्मपुराण में वर्णित है कि राजा भरत जब वैराग्य की ओर अग्रसर थे तब उन्हें संसार, शरीर, भोगों के प्रति आकर्षित करने के लिए राम, लक्ष्मण तथा भरत की अनेक रानियाँ जलक्रीड़ा के लिए निवेदन करती है। भरत उनकी प्रार्थनाओं को नहीं टाल सका और उनके साथ उसने जलक्रीड़ा की।[36]

राजमहलों में दीर्घिका भी बनी होती थी जोकि उत्तमोत्तम बगीचों से युक्त, फूलों से सुशोभित, उत्तम सीढ़ियों से युक्त एवं क्रीड़ा के योग्य थी।[37] दीर्घिका के बीच में क्रीड़ा वापियाँ बनाकर विहारस्थल बनाए जाते थे।[38]

कन्दुक क्रीड़ाः पद्मपुराण में आचार्य रविषेण ने क्रीड़ा के भेद किए है इनमें उपकरण क्रीड़ा का भी वर्णन किया गया है। गेंद से खेलना उपकरण क्रीड़ा कहलाती है।[39] तत्कालीन युग में गेंद खेलकर मनोविनोद किया जाता था। विशेष रुप से कन्या वर्ग में यह साधन लोकप्रिय था। महेन्द्रनगर के राजा महेन्द्र

की पुत्री अंजना सुन्दरी के गोलाकार भ्रमण करते हुए कन्दुक क्रीड़ा का वर्णन मिलता है।[40] पद्मपुराण में कन्दुकक्रीड़ा का ज्यादा वर्णन नहीं मिलता। जो वर्णन प्राप्य है उससे यहीं प्रतिभाषित होता है कि इस क्रीड़ा में कन्यायें विशेष रुचि रखती थी।

युद्ध क्रीड़ा : पद्मपुराण में युद्ध के प्रसंग में युद्ध–क्रीड़ा, युद्ध महोत्सव आदि का वर्णन आया है।[41] प्राचीन काल से ही युद्ध को बड़े उत्साह और शान के साथ लड़ा जाता था। नाना प्रकार के बड़े बड़े वादित्रों, घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की गर्जना, पैदल सैनिकों को बुलाने के शब्द, योद्धाओं की सिंहनाद, चरणों की जय–जय ध्वनि, नटों के गीत तथा उत्साह बढ़ाने में निपुण महाशब्द युद्ध के उत्साह को सूचित करते थे।[42] राम–रावण के युद्ध में रावण के गर्वीले सैनिक झुण्ड बनाकर अत्यधिक हर्ष से युक्त हो शस्त्र चमकाते हुए रणभूमि में उछलते जा रहे थे।[43] वे योद्धा परस्पर एक दूसरे को आच्छादित कर लेते थे। एक दूसरे के सामने दौड़ते थे, एक दूसरे से स्पर्धा करते थे, एक दूसरे को जिताते थे, उन से जीते जाते थे, उन्हें मारते थे, उनसे मारे जाते थे और वीरगर्जना करते थे।[44] इस प्रकार वे युद्ध भूमि में क्रीड़ा करते थे।

सुरसुन्दर व दशानन के युद्ध में दशानन के शरीर के अंग युद्ध रुपी महोत्सव पाकर इतने अधिक फूल गए और रोमाचों से कर्कश हो गए कि आकाश में बड़े कढ़िनाई से समा सके।[45] रावण ने लक्ष्मण के विरुद्ध युद्ध करते समय बहुरुपिणी विद्या का प्रयोग किया। रावण का सिर लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से बार–बार कट जाता था। फिर भी वह बार–बार देदीप्यमान कुण्डलों से सुशोभित हो उठता था। एक सिर कटता था तो दो सिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो उससे दुगुनी वृद्धि को प्राप्त हो जाते थे। दो भुजाएँ कटती थी तो चार हो जाती थी, चार कटती थी तो आठ हो जाती थी। हजारों सिरों और अत्यधिक भुजाओं से घिरा रावण ऐसा जान पड़ता था मानो अगणित कमलों के समूह से घिरा हो।[46] युद्ध में विजयी होने पर उत्तमोत्तम पटल, शंख, झर्झर बाजे तथा बंदीजनों के समूह द्वारा जयनाद भी किया जाता था।[47] इस

प्रकार योद्धाओं के बीच महायुद्ध भय को भी भय उत्पन्न तो करता ही था, उत्तम पुरुषों को आनन्द प्रदान करने में तत्पर था।[48]

मानसिक मनोरंजन : पद्मपुराण में वर्णित मानसिक मनोरंजन के साधनों में जुआ (द्यूत क्रीड़ा), चित्रकला, इन्द्रजाल, कथा, गोष्ठी, छः ऋतुओं के भोग, विद्यानिर्मित क्रीड़ाएँ उल्लेखनीय है।

द्यूत क्रीड़ा : प्राचीन भारतीय समाज में जुआ मनोरंजन का लोकप्रिय साधन था। पद्मपुराण में द्यूत को कला के रुप में स्वीकार किया गया है।[49]स्त्रियाँ भी इस खेल को बहुत उत्साह से खेलती थी।[50] ब्राह्मण भी उस समय जुआ खेलते थे। एक जगह लक्ष्मण को अपना परिचय देते हुए रुद्रभूति करता है– ''मैं कौशाम्बी नगरी के विखानल नाम के पवित्र ब्राह्मण की स्त्री प्रति सन्ध्या से उत्पन्न पुत्र हूँ तथा शस्त्र तथा जुए की कला का पारगामी हूँ।[51] एक अन्य प्रसंग में शकुना ब्राह्मणी के पुत्र मृदुमति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जुए में सदा जीतता था, अत्यन्त चतुर था, कलाओं का घर था और कामोपभोग में सदा आसक्त रहता था। इस तरह वह नगर में सदा क्रीड़ा किया करता था।[52] पद्मपुराण में जुए को मनोरंजन का साधन मानते हुए इसकी निन्दा भी की गई है। जुए को समस्त दोषों का कारण बताते हुए दूर रहना ही श्रेयस्कर बताया है।[53] अत्यधिक जुआ खेलने वाले जुआरियों के लेनदार हो जाते है तथा शंकावश अपने पिता या स्वजन की भी मृत्यु के कारण बनते है। पद्मपुराण में द्यूत क्रीड़ा की गणना दुष्ट चेष्टाओं में की गई है।[54]

चित्रकला: पद्मपुराण कालीन समाज में मनोरंजन के अन्य बहुत से साधनों में चित्रकला का विशेष रुप से प्रचलन था। चित्रकर्म के द्वारा भावनाएँ व्यक्त की जाती थी। तुलिका एवं वर्त्तिका की सहायता से चित्र बनाए जाते थे। विरही अंजना, पति पवनंजय का चित्र बनाती थी तो निर्बलता के कारण दुखी अंजना के हाथ से बार–बार तुलिका छूट जाती थी।[55] पद्मपुराण में चित्र के दो भेद वर्णित है। 1. शुष्क चित्र 2. आर्द्र चित्र।

शुष्क चित्र के दो भेद है।[56] – 1.नाना शुष्क 2. वर्जित

आर्द्रचित्र के भेद : चन्दन आदि के द्रव्य से उत्पन्न होने वाला आर्द्रचित्र अनेक प्रकार का है। कृत्रिम और अकृत्रिम रंगों के द्वारा पृथ्वी, जल तथा वस्त्र आदि के ऊपर इसकी रचना होती है। यह अनेक रंगों के सम्बन्ध से संयुक्त होता है।[57]

पद्मपुराण में पट्टशाला का भी उल्लेख मिलता है जोकि जिनालयों में हुआ करती थी।[58] इसमें भित्ति चित्रों का भी अंकन किया जाता था। मंदिरों की स्वर्णमयी लम्बी चौड़ी दीवारों पर मणिमय चित्रों से चित्त को आकर्षित करने वाले चित्रपट फैलाए जाते थे।[59] स्वर्णमयी दीवालों और मणियों के अभाव में भी उस समय चित्रपट मंदिर की दीवालों पर फैलाने की परम्परा रही होगी। इन चित्रपटों में अधिकतर जिनेन्द्र भगवान के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले चित्रपट ही फैलाए जाते थे।[60]

इनके अतिरिक्त पंच वर्णो के रत्नमय सुन्दर चूर्णो से नाना प्रकार के बेल बूटे भी बनाए जाते थे।[61] पद्मपुराण के 28वें पर्व में रुषित नारद द्वारा सीता का सुन्दर चित्र बनाने का उल्लेख मिलता है।[62] इस चित्र को विद्धचित्र कहा जा सकता है क्योंकि रविषेण ने इसकी विशेषता प्रत्यक्ष के समान (प्रत्यक्षमिव अर्थात् यथार्थ के समान दिखाई दे, ऐसा) कही है। इस चित्र में अंकित बहिन सीता को देखकर भामण्डल शीघ्र ही लज्जा, शस्त्रज्ञान तथा स्मृति से रहित हो गया।[63] वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छवास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीर को वह चाहे जहाँ उपेक्षा से डालने लगा।[64] उसे न रात्रि में नींद आती थी, न दिन में चैन पड़ता था। वह दिन–रात उसी के ध्यान में मग्न रहता था। सुन्दर उपचारों से उसे कभी सुख नहीं मिलता था।[65] वह पुष्प, सुगंधित पदार्थ तथा आहार से द्वेष करने लगा मानो उन्हें विषमय समझता हो।[66] उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी हो गई मानो उसे भूत लग गया हो। तद्नन्तर बुद्धिमान पुरुषों ने उसकी आतुरता का पता लगाया[67] नारद के प्रकट होने पर लोगों ने उनसे पूछा– यह कोई नागकुमार देवी की अंगना है या पृथ्वी पर आई हुई किसी कल्पवासी देव की स्त्री, किस तरह की देवी है।[68]

वास्तव में चित्रपट देखकर उस समय युवक, युवती आकर्षित हो जाया करते थे एवं कामदेव के पाँच वर्णो के वशीभूत हो जाते थे। हनुमान और पद्मरागा एक दूसरे के चित्रपट देखकर ही प्रीति को प्राप्त हुए।[69] हरिषेण का चित्र देखकर जयचन्द्रा ने संकल्प लिया कि यदि इस पुरुष के साथ मेरा मिलन नहीं होता है तो मैं मृत्यु का वरण कर लूंगी।[70]इस प्रकार चित्रपट मन को आनंदित कर वर–वधु का सम्बन्ध भी निश्चित करते थे। चित्रपटों पर महापुरुषों के चरित एवं पुराणों की भी रचना की जाती थी।[71]

जीव–जन्तुओं के चित्र भी अंकित किए जाते थे। हरिण, चमरी– गाय, सिंह, हाथी तथा अन्यान्य जीवों के सुन्दर–सुन्दर चित्र अंकित किए जाने का उल्लेख मिलता है।[72]आद्रचित्रों में रावण द्वारा सीता का चित्र बनाए जाने का प्रसंग मिलता है जिसे रावण बनाता था तथा फिर उसे आँसुओं से गीला करता था।[73] पद्मपुराण में स्वर्ण से निर्मित आसन तथा सोने के स्थान बनाए जाने का उल्लेख मिलता है।[74] मांगलिक कार्यो में चित्रों की रचना कर आनन्द की प्राप्ति की जाती थी।

इन्द्रजाल : इन्द्रजाल शब्द का प्रयोग इन्द्र के जाल (माया) के अर्थ में हुआ है। मनोरंजन के लिए अलौकिक साधनों से अलौकिक सिद्धियों का प्रदर्शन इन्द्रजाल है। पद्मपुराण में इन्द्रजाल को स्वप्नजाल भी कहा गया है। वर्णित है कि श्रुतसागर मुनि महाराज महारक्ष विद्याधर को वैराग्य का उपदेश देते हुए कहते है कि जो करोड़ों कल्प तक प्राप्त होने वाले देवों के भोगों से तथा विद्याधरों के मनचाहे भोग–विलास से संतुष्ट नहीं हो सका, वह तू आठ दिन तक प्राप्त होने वाले स्वप्न अथवा जाल (इन्द्रजाल) सदृश भोगों से कैसे तृप्त होगा।[75] इन्द्रजाल का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। यह दर्शकों के मन का वशीकरण कर उन्हें आकर्षित करता है। इन्द्रजाल की विभिन्न चेष्टाओं के द्वारा लोग मनोरंजन करते है। रावण भी विद्या सिद्ध होने पर विद्याओं का प्रभाव जानने के लिए मन्दोदरी के साथ क्रीड़ा करता है। रावण कभी एक होकर भी अनेक रुप धरकर समस्त स्त्रियों के साथ समागम करता था। कभी सूर्य के समान सन्ताप

उत्पन्न करता था तो कभी चन्द्रमा के समान चाँदनी छोड़ने लगता था। कभी अग्नि के समान ज्वालाएँ छोड़ता था तो कभी मेघ के समान वर्षा करने लगता था, कभी वायु के समान बड़े–बड़े पहाड़ों को चला देता था तो कभी इन्द्र जैसा प्रभाव जमाता था। कभी समुद्र बन जाता था, कभी पर्वत हो जाता था, तो कभी मदोन्मत्त हाथी बन जाता था और कभी महावेगशाली घोड़ा हो जाता था। वह क्षणभर में पास, क्षणभर में दूर, क्षणभर में दृश्य, अदृश्य, महान, सूक्ष्म, भयंकर आदि रुप धारण कर मनोरंजन करता था।[76]

इन्द्रजाल के माध्यम से रुप बनाकर भी लोगों का मनोरंजन किया जाता था। राम एवं लक्ष्मण ने नृत्यकारिणी का वेश बनाकर अतिवीर्य की राजसभा में अद्भूत नृत्य चेष्टाएँ दिखाकर इन्द्रजाल की भाँति अतिवीर्य को वश में कर लिया।[77] सीता को प्राप्त करने हेतु रावण कई मायावी प्रयोग करता है। सीता का सामीप्य चाहने के लिए वह हाथी, सिंह, सांप, वानरों का मायावी प्रयोग कर उसे भयभीत करता है।[78] वास्तविक सुग्रीव और मायामयी सुग्रीव का भी विस्तृत वर्णन दिया गया है। स्त्रियाँ भी माया का उपयोग कर अनेक प्रकार का रुप बना लेती थी। चन्द्रनखा ने राम एवं लक्ष्मण को आकर्षित करने के लिए सुन्दर युवती का वेश धारण किया था।[79]

कथा/कहानी/आख्यान : आधुनिक काल में तो मन–बहलाव के अनेक साधन है परन्तु प्राचीन काल में लोग कथा–कहानियाँ सुनकर मनोरंजन करते थे। यह प्रवृत्ति आदिम काल से चल रही है। वर्तमान में भी प्रचलित है। पद्मपुराण में कथा एवं कथाकारों का विस्तृत विवरण मिलता है। 36वें पर्व में वर्णित है कि राम, लक्ष्मण एवं सीता स्वेच्छानुसार पृथ्वी पर विहार करते हुए नाना प्रकार के स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाओं और देवों के समान रमण करते हुए वैजयन्तीपुर के समीपवर्ती मैदान में पहुँचते है।[80] **पद्मपुराण में लोक कथा[81], पुराण कथा[82] प्राणेश कथा[83], हास्य कथा[84], मनोहर कथा[85], भक्तों की कथा[86], शूरवीरों की कथा[87]** इत्यादि का उल्लेख मिलता है। राम जब आत्मीय जनों से मिलते है तो वे प्रमादरहित हो उत्तमोत्तम कथायें कहते हुए सुख से उनके साथ

रात्रि व्यतीत करते है।[88] वनवास के समय राम–लक्ष्मण सघन पत्तों वाले द्रुमखण्ड में बैठकर मनोहर–मनोहर कथाओं से सीता का मनोविनोद करते थे।[89]

गोष्ठी :पद्मपुराण में अनेक स्थानों में गोष्ठी का प्रसंग आया है। इसके माध्यम से समाज के हर वर्ग शिक्षित–अशिक्षित एवं सामान्य लोगों का यथासंभव मनोरंजन होता था। हास्य विनोद के सार्वजनिक स्थल गोष्ठी कहलाते थे।[90] पद्मपुराण में वर्णित है कि किष्कुपुर नगर का स्वामी महोदधि स्त्रियों के साथ महामनोहर उत्तुंग भवन के शिखर पर सुन्दर गोष्ठी रूपी अमृत का स्वाद लेता था। इस सुन्दर गोष्ठी को चारूगोष्ठी भी कहा गया है।[91] जब गोष्ठियों में राजाओं के गुणों की चर्चा होती तब विद्धज्जन सबसे पहले नभस्तिलक नगर के राजा मार्तण्डकुण्डल का नाम लेते थे।[92] पद्मचरित में वीरपुरूष की गोष्ठी[93], विद्वानों की गोष्ठी[94] तथा मूर्खगोष्ठी[95] का वर्णन मिलता है।

सामाजिक मनोरंजन :

मनोरंजन के सामाजिक आयामों के अन्तर्गत संगीत, उत्सव, खान–पान, सौदर्य प्रसाधन, बाल क्रीड़ा, वन क्रीड़ा, दोला क्रीड़ा, क्रीड़ा पर्वत तथा अन्य पारिवारिक उत्सवों को सम्मिलित किया जाता है। उपर्युक्त समस्त साधन मनुष्य के व्यस्ततम जीवन को सुखमय एवं आनन्दप्रिय बनाते थे। पद्मपुराण में वर्णित मनोरंजन के सामाजिक साधनों का वर्णन निम्न प्रकार है।

संगीत : प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन के प्रमुख साधनों में संगीत का प्रमुख स्थान है अतीत काल से संगीत के माध्यम से मानव जीवन में रस, उत्साह, उमंग एवं कार्य उत्प्रेरित क्षमताओं की अभिवृद्धि हुई है। पद्मपुराण के अनुसार गीत, नृत्य, वादित्र इन तीन का एक साथ होना नाट्य कहलाता है।[96] संगीत को अभिनव गुप्त ने नाट्य का प्राण कहा है, अतः इसका प्रयोजन नाट्य से भिन्न नहीं है।[97] उपर्युक्त तथ्य को दृष्टिगत करते हुये मनोरंजनात्मक साधन

के रूप में संगीत को गायन, वादन, नृत्य इन तीन उपखण्डों में वर्गीकृत किया गया हैं।

गायन : पद्मपुराण में अनेक स्थानों पर गीतों का उल्लेख मिलता है।[98] ग्रन्थ में गांधर्वशास्त्र के अनेक परिभाषिक शब्द जैसे स्वर[99], वृत्ति[100], मूर्च्छना[101], लय[102], ताल[103], जाति[104], ग्राम[105] का प्रयोग हुआ है तथा उनमें से अनेक का विस्तार से वर्णन भी किया गया है। पद्मपुराण में अनेक स्थानों पर गायन द्वारा मनोरंजन के उदाहरण मिलते है। दिक्कुमारी देवियाँ माता मरूदेवी की गर्भावस्था के समय उत्तम गान द्वारा उनका मनोरंजन करती थी।[106] पद्मपुराण में यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, तुम्बरू, नारद और विश्वावसु, चारणों, नटों द्वारा गाने के उल्लेख मिलते है।[107] भगवान के अभिषेक महोत्सव के समय यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, तुम्बरू, नारद और विश्वावसु का उत्कृष्ट मुर्च्छनाए करते हुए अपनी–अपनी पत्नियों के साथ मन और कानों को हरण करने वाले सुन्दर गीत गाते है।[108] गन्धर्व देवों में भी हा–हा, हू–हू, तुम्बरू, नारद और विश्वावसु की गायन कला को श्रेष्ठ बताया गया है।[109] संगीत के लिए संगीतगृह भी बने होते थे जहाँ विविध सुरों की लहरियाँ प्रवाहित होती रहती थी।[110]

बंदीजन मंगलपाठ के उच्चारण करते थे।[111] स्त्रियाँ भी किसी भी शुभ कार्य के पहले मंगलगीत गाती थी।[112] चारणों की रम्य वाणी भी मंगल का बोध कराती थी।[113] इनके अतिरिक्त राजा भी गीत संगीत द्वारा मनो–विनोद करते थे। दशानन के जिनेन्द्र स्तुति से सम्बन्ध रखने वाला गीत गाने का उल्लेख है जिसे सुनकर धरणेन्द्र भी रोमांच को प्राप्त हो जाता है।[114] राम, लक्ष्मण भी वन में मुनिराज की वन्दना करते है तो उत्तम और मधुर अक्षरों में बड़े आदर से तत्वपूर्ण गान करते है। वे गाते है कि जो महायोग के स्वामी है, धीर–वीर है तथा उत्तम चेष्टाओं से सहित है, उत्तम भाग्य के धारक जिन मुनियों ने उपमा से रहित, अखण्डित तथा तीन लोक में प्रसिद्ध 'अर्हत्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया है। मान की विधि को जानने वाला राम–लक्ष्मण के गान से तिर्यंचों के चित्त भी कोमलता को प्राप्त हो गए।[115] संगीत राजाओं को जगाने का कार्य भी

करता था। भामण्डल के सुखदायी–कर्ण और मन को हरण करने वाले भावपूर्ण दिव्य संगीत को सुनकर महाराज भरत नींद से जाग उठते है।[116]

रानियाँ भी गायन कला में श्रेष्ठ होती थी। सीता वन में ताल का शब्द देती हुई धर्ममय गीतों का उच्चारण करती थी। तब पति राम व देवर लक्ष्मण स्वर से स्वर मिलाकर साथ–साथ गाते थे।[117] रानी कैकेयी ने भी संगीत शास्त्र में विद्वता प्राप्त की थी। वह स्वर, वृत्ति, मूर्च्छना, लय, ताल, जाति, ग्राम का तालमेल जानती थी।[118] पद्मपुराण में सात स्वरों[119] का उल्लेख दिया गया है। षड़ज, ऋृषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद। रानी कैकेयी इन सात स्वरों के द्वारा संगीत को भली–भांति जानती थी।

कर्णप्रिय गीत भय को भी दूर भगा देते थे। वर्णित है कि गन्धर्व सिंह भगाकर सती अंजना की रक्षा करता है तथा भयभीत अंजना को स्वरों की सूक्ष्मता को जानने वाला गन्धर्व, कम को नहीं छोड़ता हुआ, मघ्यम, ऋषभ, गान्धार, षड़्ज, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरों व तीन वृत्तियों द्रुता, मध्या, विलम्बिता व इक्कीस मूर्च्छनाओं का यथास्थान प्रयोग कर उत्तम गान गा रहा था। वह गन्धर्व देवों के गवैया जो हाहा–हू हू के समान उनचास ध्वनियों का प्रयोग कर जिनेन्द्र भगवान के गुणों की स्तुति कर रहा था। यह मनोहर गान सुनकर अंजना व सखी बसन्तमाला का हृदय आद्र हो जाता है।[120]

युद्ध के आरम्भ होने की सूचना भी संगीत के माध्यम से दी जाती थी। चारणों की जय–जय ध्वनि, नटों के गीत, महाशब्द मिलकर युद्ध के रोमांच को बढ़ाते थे। साधारण वर्ग से लेकर राजपरिवार के पुरुषों एवं स्त्रियों में भी संगीत का प्रचलन था। पद्मपुराण में उल्लिखित संगीत शास्त्र के पारिवारिक शब्दों की तुलना भरतमुनि के नाट्य शास्त्र से की जा सकती है।

वादनः गायन को संगीत का रुप देने के लिए वादक वाद्य यंत्रों का प्रयोग करता था। पद्मपुराण कालीन समाज में मनोरंजन के साधन के रुप में विभिन्न वाद्य यंत्रों का उल्लेख मिलता है जो निम्न है– **वीणा**[121], **पणिघ**[122], **वेणु**[123],

मृदंग[124], बंश[125] (बांसुरी)[126], मुरज[127], झर्झर (झांझ)[128], आनक[129] (नगाड़ा), शंख[130], भेरी[131], तूर्य[132], काहल[133], दुन्दुभि[134], झल्लरी[135] (झालर), पटह[136], तंत्री[137] (वीणा), ढक्का[138], मर्दल,[139] घण्टा[140], कासिके (मंजीरा)[141], भम्भा, लम्पाक, धुन्धु, मण्डुक, झम्ला, अम्लातक, हक्का, हुंकार, दुन्दुकाणक, हेतुगंजा, दुर्दुर[142] आदि। इन वाद्य वृन्द को वादित्र, तूर्य कहा गया है।[143] किसी उत्सव, शोभायात्रा, मंगल अवसर और युद्ध के समय सभी वाद्यों का समवेत या एकाकी वादन किया जाता था।

उपर्युक्त वाद्यों के अतिरिक्त वेणु,[144]झल्लरी,[145] काहल,[146] पटह,[147] पाणिघ (तबला)[148] मर्दल[149], मंजीरा[150], पणव[151], मुरज[152], झांझ[153], ताली[154], बाजा[155], सिंहनाद[156] आदि वाद्यों का उपयोग भी मनोरंजन के लिए किया जाता था। पद्मपुराण में जलवाद्य का भी उल्लेख किया गया है। जोकि जलक्रीड़ा के समय हाथों के प्रयोग से बजाया जाता था[157] पद्मपुराण में तत्, सुषिर, अवनद्ध, घन वाद्यों के अतिरिक्त ऐसे भी वाद्यों को मनोरंजन के लिए प्रयुक्त किया गया है जिनके नाम का केवल उल्लेख ही है। इनका विस्तृत विवरण एवं उक्त चारों प्रकार के वाद्यों से सम्यता न होने के कारण इनकी केवल तालिका प्रस्तुत की जा रही है। इन वाद्यों के नाम निम्न है– **अम्लातक[158], गुंजा[159], झर्झर[160], दुंदुकाणक[161], भंभा[162], मण्डुक[163], रटित[164], लम्प[165], लम्पाक[166], सुन्द[167], हक्का[168], हुँकार[169], हेतुगुंजा[170], हैका[171]** आदि।

पद्मपुराण में उद्यानों में वादनशालाओं के निर्मित करने का भी उल्लेख मिलता है। वास्तव में किसी अन्य साधन को सम्मिलित किए बिना ही संगीत के मूल आधार स्वर एवं लय के द्वारा वाद्य संगीत मनुष्य को आनन्ददायक होता है। पद्मपुराण कालीन समाज में मनोरंजन के साधन के रुप में गीत के साथ वाद्यों का भी प्रयोग होता है एवं वाद्यों का स्वतंत्र रुप से भी प्रयोग होता था। इसके माध्यम से समाज के हर वर्ग के लोग मनोरंजन करते थे।

नृत्य द्वारा मनोरंजन : पद्मपुराण में कई स्थानों पर नृत्य द्वारा मनोरंजन किए जाने का उल्लेख मिलता है। नृत्य साधारण वर्ग से लेकर राजपरिवार में भी

मनोरंजन का महत्वपूर्ण साधन था। वर्णित है कि जब अंगद लंका नगरी में प्रवेश करता है तो साधारण चपल मनुष्य उसके रथ के आगे बाँसुरी, वीणा, मृदंग आदि बाजों के अनुरुप श्रृगांरपूर्ण उत्तम नृत्य करते जाते थे।[172] राजपरिवार की रानियाँ, राजा भी नृत्य का आनन्द उठाते थे तथा भूमिगोचरी तथा विद्याधर के यहाँ नृत्य कला के सीखी जाने का वर्णन मिलता है।[173] नाभिराज के पुत्र जन्म महोत्सव के समय देवता हर्षित हो नृत्य करते है।[174] नृत्य सीखने के लिए नृत्यशालाएँ बनी होती थी।[175] जहाँ नर्तकाचार्य नृत्य की शिक्षा देते थे।[176]

पद्मपुराण में नृत्य के तीन भेद बताए गए है[177]–1. अङगहाराश्रय 2. अभिनयाश्रय 3. व्यायामिक। इनके अवान्तर भेद भी होते है। इन सभी नृत्यों को करते समय पैरों में नूपुर पहने जाते थे। जिनकी झनकार आकर्षक होती थी।[178] राजा सहस्त्रार के यहाँ छब्बीस हजार नृत्यकार नृत्य द्वारा राजसभा में मनोरंजन करते थे।[179]

पशुओं भी नृत्य के द्वारा आनन्द की प्राप्ति करते थे। राजा सहस्त्रार के पुत्र जन्मोत्सव पर मनुष्यों की तो बात ही दूर रही, हाथियों ने अपनी चंचल सूँड ऊपर उठाकर गर्जना करते हुए नृत्य किया था।[180] मयूर भी जिनेन्द्र भक्ति के समय अपनी पिच्छी फैलाकर हर्षपूर्वक नृत्य करते थे।[181] पद्मपुराण में जटायु पक्षी के नृत्य का भी उल्लेख आया है। जब सीता ताल का शब्द देती हुई धर्ममय गीतों का उच्चारण करती थी और पति राम और देवर लक्ष्मण उसके स्वर में स्वर मिलाकर साथ–साथ गाते थे। तब सूर्य के समान कान्ति को धारण करने वाला जटायु हर्षित होकर नृत्य करता था।[182]

युद्धक्रीड़ा के समय भी नृत्य द्वारा मनोरंजन किए जाने के उल्लेख प्राप्त होते है। राजपरिवार की स्त्रियों के द्वारा भी सुन्दर नृत्य किया जाता था। सीता सुन्दर नृत्य के लिए आवश्यक बातों को जानती थी। उसने मुनि का आहार सम्पन्न होने पर सुन्दर नृत्य प्रस्तुत किया।[183]

स्त्री वर्ग के साथ ही पुरुष वर्गे मे भी नृत्य लोकप्रिय था। वर्णित है कि राम एवं लक्ष्मण माया से नृत्य कारिणी का वेश बनाते है। तथा राजा अतिवीर्य

की राजसभा में नृत्य द्वारा मनोरंजन करते है। वे नृत्य कारिणी स्त्रियाँ सर्वप्रथम चौबीस तीर्थंकरों को भक्तिपूर्वक नमस्कार करती है। फिर तेवा तेवा की अव्यक्त ध्वनि के साथ पुराणों में प्रतिपादित वस्तुओं का गाना शुरु करती है। नृत्यकारिणियाँ नृत्य की विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से सबके चित्त को आकर्षित करती है। स्वयं राजा अतिवीर्य भी नृत्य को देखकर उनकी तरफ खींचा चला आता है।

पद्मपुराण में वर्णित है कि नर्तकों को समवेत स्वर में गाना चाहिए। दर्शक की सन्तुष्टि से ही प्रदर्शन सार्थक होगा। इसीलिए दर्शकों को संतुष्ट करने के लिए उनके नेत्र का रुप लावण्य से, श्रवण को मधुर स्वर से एवं मन को छवि तथा स्वर से आबद्ध करना चाहिए।[184] सोमेश्वर ने उत्सव, जय, हर्ष, काम, त्याग, विलास, विवाद तथा परीक्षा आदि आठ अवसरो पर नृत्य कराने की व्यवस्था दी है। पद्मपुराण में प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव के अभिषेकोत्सव पर आनन्द नामक नृत्य अभिनीत करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[185] पद्मपुराण में नीलांजना नृत्य का भी उल्लेख प्राप्त होता है जिससे कि वैराग्य उत्पन्न होता था।[186] अतः पद्मपुराण कालीन समाज में नृत्य सभी वर्गों में मनोरंजन का प्रमुख साधन था। ग्रन्थ मे ललित कला की चौसठ कलाओं में नृत्य कला का भी समावेश है अतः स्पष्ट है कि इस कला के माध्यम से नागरिक मनोरंजन करते थे। पद्मपुराण में गायन, वादन, नृत्य के एसे अनेको उदाहरण मिलते है। जिनसे तत्कालीन समाज सामूहिक रुप से मनोरंजन करता था।

संगीत के ये तीनो पहलुओं एक दूसरे के बिना सम्पूर्ण नहीं माने जाते है। अतः तीनों का सम्मिलित रुप ही संगीत को चरम सीमा पर पहुँचा कर दर्शकों को आनन्दित करता है। पद्मपुराण में विभिन्न उत्सर्व, हर्ष, विजय, विलास, विरह, वेदना आदि कई दृश्यों में सगींत की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है जो कि सबके चित्त को आकर्षित करती हैं।

मदिरा सेवन/मद्यपान[187] : पद्मपुराण में प्रंसगानुसार स्थान–स्थान पर मदिरा पान के उल्लेख मिलते है। स्त्री व पुरुष दोनों मदिरा पान द्वारा मनोरंजन करते थे।

कामक्रीड़ा के सहायक द्रव्यों में इसकी प्रमुखता बतलाई गई है। मदिरा के नशे में मस्त स्त्री–पुरुषों का चित्रण मिलता है। रात्रिकाल में मदिरा के प्रसंग में क्रीड़ाएँ की जाती थी। उस समय कितने ही लोग ताम्बूल, गन्धमाला आदि देवोपन उपभोग से मदिरा पीते हुए अपने वल्लभाओं के साथ क्रीड़ा करते थे। नशा में निमग्न कोई एक स्त्री मदिरा के प्याले में प्रतिबिम्बित अपना ही मुख देख ईर्ष्यावश नीलकमल से पति को पीट रही थी। स्त्रियों ने मदिरा में अपने मुख की सुगंधि छोड़ी थी और मदिरा ने उसके बदले स्त्रियों के नेत्रों में अपनी लालिमा छोड़ी थी। कोई एक स्त्री मदिरा में पड़ी हुई अपने नेत्रों की कान्ति को नीलकमल समझ ग्रहण कर रही थी। अतएव पति ने उसकी चिरकाल तक हँसी की। कोई एक स्त्री यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी फिर भी धीरे–धीरे उसे इतनी अधिक मदिरा पिला दी गई कि वह काम के योग्य कार्य में प्रौढ़ता को प्राप्त हो गई अर्थात् प्रौढ़ स्त्री के समान कामभोग के योग्य हो गई। उस मदिरारुपी सखी ने लज्जारुपी सखी को दूरकर उन स्त्रियों के पति के विषय में ऐसी क्रीड़ा कराई जो उन्हें अत्यन्त इष्ट थी अर्थात् स्त्रियाँ मदिरा के कारण लज्जा छोड़ पतियों के साथ इच्छानुकूल क्रीड़ा करने लगी। जिनके नेत्र घूम रहे थे तथा बार–बार मधुर अध कटे शब्दों का उच्चारण हो रहा था ऐसी स्त्रियों और पुरुषों की मन को हरण करने वाली चेष्टा होने लगी। पीते–पीते जो मदिरा शेष बच रही थी उसे भी दम्पत्ति पी लेना चाहते थे। इसलिए तुम पिओ, तुम पिओ, इस प्रकार जोर से शब्द करते हुए प्याले को एक–दूसरे की ओर बढ़ा रहे थे।[188] किसी सुन्दर पुरुष की प्रीति प्याले में समाप्त हो गई थी। इसलिए वह वल्लभा का आलिंगन कर नेत्र बन्द करता हुआ उसके मुख के भीतर स्थित कुरले की मदिरा का पान कर रहा था।[189] मृत लक्ष्मण को मोहवश रामचन्द्र जी जीवित समझकर कहते है कि हे लक्ष्मीधर (लक्ष्मण), तुम्हें ये उत्तम मदिरा निरन्तर प्रिय रहती थी सो खिले हुए नीलकमल से सुशोभित पानपात्र में रखी हुई इस मदिरा को पिओ।[190]

मनोरंजन के साधन के रुप में वर्णित होने के बावजूद भी मद्यपान के सम्बन्ध में पद्मपुराण में वर्णित है कि मद्यपायी के वचन विद्वानों को कभी नहीं मानना चाहिए।[191] इस प्रकार अन्य पेय पदार्थो में इक्षु रस[192], मधु[193] का उल्लेख

आया है। स्त्री–पुरुषों की कामक्रीड़ा के बीच मधु सहायक द्रव्य का काम देता था। सैनिकों में मधुपान प्रचलित था।[194]

उत्सव :अतीत से भारतीय समाज में अनेक मनोरंजनात्मक उत्सवों के आयोजन का प्रचलन था। इन उत्सवों के आयोजन में स्त्री–पुरूष सभी का सामूहिक रूप से योगदान होता था। उत्सवों को मनाने में हृदय के आह्लाद और उमंग को व्यक्त करने के अवसर प्राप्त होते है। प्राचीन कालीन अनेक उत्सवों में विवाहोत्सव का प्रमुख स्थान रहा है। पद्मपुराण में विवाह के अवसर पर अनेक आयोजनों का उल्लेख पाया जाता है। राम, लक्ष्मण तथा भरत के विवाहोत्सवों के समय मिथिला नगरी, पताका, तोरण और मालाओं से सजाई गई, बाजार के लम्बे–चौड़े मार्ग घुटनों तक फूलों से व्याप्त किये गये। समस्त घरों में शंख और तुरही के मधुर स्वर किये गये।[195] उस समय धन से सब लोक इस तरह भर दिया गया कि जिससे 'देहि अर्थात देओ' यह शब्द महाप्रलय को प्राप्त हो गया था अर्थात बिल्कुल ही नष्ट हो गया था। विवाहोत्सव में आमंत्रित राजाओं को भी परम सम्मान दिया जाता था। राम, लक्ष्मण और भरत ने विवाहोत्सव के तद्नन्तर अयोध्या में प्रवेश किया। इस समय तुरही के विशाल शब्द किये गये। उत्तम शरीर को धारण करने वाली बहुओं को देखने के लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़कर बड़ी व्यग्रता से राजमार्ग में आ गये।[196] पद्मपुराण के अनुसार जब राजा मय पुष्पान्तक विमान में बैठाकर रानी मन्दोदरी को रावण के यहाँ ले जाने लगा तब पुरनारियों ने मंगलगीत गा कर कन्या को विदा किया था।[197]

विवाह के पहले स्वंयवर विधि का आयोजन कराया जाता था। इस पद्धति में पुत्री का पिता अनेक लोगों को आमंत्रित करता था। ऊँचे–ऊँचे मणिमय सिंहासनों पर राजाओं को बैठाया जाता था। स्वयंवर मण्डप में इस समय वीणा, बांसुरी, शंख, मृदंग, झालर, काहल, भेदी तथा मर्दक आदि विविध बाजों द्वारा महाशब्द किया जाता था।[198] बंदीजन मंगलपाठ का उच्चारण करते थे।[199] इस समय स्वयंवर में आये राजाओं की चेष्टायें आकर्षक प्रतीत होती थी। ये चेष्टायें

काम के वेग से प्रेरित थी। जो स्वयंवर की उत्सुकता को बढ़ा रही थी। प्रतिहारी क्रम–क्रम से कन्या को राजाओं का परिचय देती जाती थी। अन्त में जिस वर को चाहती थी उसके गले में वर माला डाल दी जाती थी।[200] तदनन्तर लोगों के द्वारा विभिन्न प्रकार के कौतुक और मंगलाचार के साथ कन्या का पाणिग्रहण होता था।[201] कभी पिता द्वारा कन्या के लिए विशेष वर का निर्धारण हो जाने पर भी किसी विशेष कारणवश कोई आवश्यक शर्त रखदी जाती थी कि जो उस शर्त को पूरा करेगा उसे ही कन्या दी जावेगी। इसी प्रसंग में पद्मपुराण में वर्णित है कि राजा जनक यह शर्त रखते है कि जो भी वज्रावर्त धनुष को चढ़ा देगा, उसी से सीता का विवाह होगा। राम शर्त के अनुरूप वस्त्र ऊपर उठाकर निःशंक धनुष उठा लेते है।[202] इस समय सम्पूर्ण नर–नारी आश्चर्य से युक्त हो जाते है। मयूर खुशी से झूम कर पिच्छों का मण्डल फैलाकर नृत्य करने लगते है। आकाश में 'साधु' 'साधु' इस प्रकार कहकर देवतागण अपने हर्ष को व्यक्त करते है तथा फूलों के समूह की वर्षा करते हुए व्यंतर नृत्य करने लगते है, इस प्रकार सम्पूर्ण नगरी आमोद–प्रमोद में मग्न हो जाती है।

जन्मोत्सवः पुत्र जन्म के उपलक्ष में बहुत भारी जन्मोत्सव किया जाता था। पद्मपुराण में पुत्र उत्पत्ति को बान्धवजनों के हर्ष और सम्पदा का उत्तम कारण माना गया है।[203] पुत्र जन्म के अवसर पर शंख और तुरही के शब्दों से सम्पूर्ण दिशाएँ गुंजायमान की जाती थी। नगर की स्त्रियाँ नृत्य करते समय नुपुरों की झनकार के साथ अपने पैर पृथ्वी पर पटकती थी।[204]

इच्छानुसार धन दान में दिया जाता था। मनुष्य और पशु दोनों के लिए यह आनंद के क्षण हुआ करते थे। वर्णित है कि राजा सहस्त्रार के घर पुत्र जन्म होने पर हाथियों ने भी उस समय अपनी चंचल सूंड उठाकर गर्जना करते हुए नृत्य किया था।[205] दशानन का जन्म होने पर पिता ने पुत्र का बड़ा भारी जन्मोत्सव मनाया ऐसा जन्मोत्सव जिसमें प्रजा पागल के समान अपनी–अपनी इच्छा के अनुसार विभिन्न प्रकार के कार्य करती थी।[206] ऐसे उत्सवों में समस्त

भाई बन्धु और सम्बन्धी सम्मिलित होते थे।[207] राम का जन्म होने पर पिता दशरथ ने महाविभव से सम्पन्न समस्त भाई बन्धुओं युक्त बड़ा भारी जन्मोत्सव किया।[208] नामिराज ने भी पुत्र जन्म का महोत्सव किया जिससे इन्द्र का आसन कम्पित हो गया और भवन वासी देवों के भवनों में बिना बजाएँ ही शंख बजने लगे। व्यंतरों के भवनों में भेरि के शब्द, ज्योतिषी देवों के घर में सिंहों की गर्जना तथा कल्पवासी देवों के घरों में घण्टा शब्द करने लगे। इस प्रकार उत्कृष्ट गान, नृत्य, तालियों के द्वारा देवतागण भी महोत्सव में सम्मिलित हुये।[209] पुत्र जन्म का महोत्सव पिता के घर या नाना के घर मनाया जाता था। इस प्रकार मनुष्यों को उन्मत्त बनाने वाले इस महाआनन्द में व्यक्ति सामाजिकता के सुख का अनुभव किया करते थे।

नगर प्रवेशोत्सव : राजा के युद्ध से लौटने पर, नव वधु आगमन पर या विशिष्ट कार्य के निर्विध्न पूर्ण होने पर सम्पूर्ण नगर में उत्सवों का आयोजन किया जाता था। राजा हाथी पर बैठकर बड़ी धूमधाम से नगर में प्रवेश करता था। बन्दीजन उसकी स्तुति करते थे। राजा के दोनों ओर चँवर ढुलाये जाते थे। सफेद छत्र की राजा पर छाया की जाती थी। नृत्य करते हुए लोग उसके आगे–पीछे चलते थे। झरोखे में बैठी हुई स्त्रियाँ उसे अपने नयनों से देखती थी। रत्नमयी ध्वजाओं से नगर की शोभा बढ़ाई जाती थी। नगर में ऊँचे ऊँचे तोरण खड़े किये जाते थे, गलियों में घुटने तक फूल बिछायें जाते थे और केसर के जल से समस्त नगर सींचा जाता था।[210]

राम, लक्ष्मण एवं सीता के अयोध्या आने पर भरत सैकड़ों अर्घो से उनकी पूजा करते है, नगर में प्रवेश करने पर धक्का धूमी के साथ चलने वाले यानों, विमानों, घोड़ों, रथों और हाथियों की घटाओं से अयोध्या के मार्ग अवकाश रहित हो गये थे। इस समय तुरही के शब्द तथा करोड़ों शंखों के शब्दों से मिश्रित भंभा और भेरियों के शब्द होने लगे थे। बड़े–बड़े नगाड़ों के जोरदार शब्द तथा बिजली के समान चंचल लम्प और धुन्धओं के मधुर शब्द गम्भीरता को प्राप्त हो

रहे थे। हैक नामक वादियों की हुँकार से सहित झालर, अम्लातक, हक्का और गुन्जा रटित नामक वादित्रों के महाशब्द,, काहलों के अस्फुट और मधुर शब्द, निविडता को प्राप्त हुए हलहला के शब्द, अट्टाहास के शब्द, घोड़े, हाथी, सिंह और व्याघ्रादि के शब्द, बाँसुरी के स्वर से मिले हुए नाना प्रकार के संगीत के शब्द, भांड़ों के विशाल शब्द, बंदीजनों के विरद पाठ, सूर्य के समान तेजस्वी रथों की मनोहर चीत्कार, पृथ्वी के कम्पन्न से उत्पन्न हुये शब्द और इन सबकी करोड़ों प्रकार की प्रतिध्वनियों के शब्द सब एकसाथ मिलकर विशाल शब्द कर रहे थे। इस समय राम, लक्ष्मण को जयवंत रहो, बढते रहो, जीते रहो, समृद्धिवान हो इत्यादि शब्दों के आशीर्वाद मिल रहे थे। नगर की स्त्रियाँ अपना सब काम छोड़कर उन्ही की वार्ता कर रही थी। इस प्रकार सम्पूर्ण नगर में आनन्द मनाया जा रहा था।[211]

बसन्तोत्सवः पद्मपुराण के अनुसार यह उत्सव बसन्त ऋतु में मनाया जाता था। समकालीन साहित्यों से भी इसकी पुष्टि होती है। कालिदास ने इसे बसन्तोत्सव, कृतूत्सव तथा वसन्तावतार नाम से पुकारा है। इसमें सभी नर–नारी सम्मिलित होते थे तथा इसके माध्यम से मनोरंजन करते थे। पद्मपुराण के अनुसार आमोद का अर्थ सुगंधि है और हर्ष भी।[212] अतः जिस प्रकार बसन्त ऋतु नेत्रों को हरण करने वाली अकथनीय पुष्पसम्पदा को पाकर जगत्प्रिय सुगन्धि को प्राप्त होती है। उसी प्रकार इस ऋतु में रमण करने वालों को यह आमोद–प्रमोद या हर्ष की प्राप्ति कराती है। बसन्त ऋतु में पेड़–पौधों, की सुदंरता तो बढ़ती थी साथ ही पशु–पक्षी भी अपना प्रेम व्यक्त कर आनन्द मनाते थे। भ्रमरों की गुंजार, कोयल के मधुर शब्द लोगों को व्याकुलता उत्पन्न करते थे। चारों ओर भ्रमण करता हुआ भ्रमर अपने पंखों की वायु से थकी हुई भ्रमरी को श्रमरहित करता था।[213] हरिण दूर्बा के प्रवाल उखाड़–उखाड़ कर हरिणी के लिए देकर उसके मन में प्रेम उत्पन्न कर रहा था हाथी हथिनी के लिए खुजला रहा था। अशोक के वृक्ष, पलाश के सघन वृक्षों की लतारुपी स्त्रियाँ वृक्ष रुप पुरुषों का आंलिगन कर रही थी। इस ऋतु में प्रेम रुपी बंधन में बंधे स्त्री–पुरुष पल–भर के लिए

भी एक–दूसरे का वियोग सहन नहीं कर पाते थे।[214] वास्तव में बसन्त मौसम के विधानों में कामार्चन का स्थान ही महत्वपूर्ण रहा है लेकिन पद्मचरित में वर्णित है कि सीता के दोहद के बहाने जिनेन्द्र भगवान की अर्चना हेतु राम द्वारा सीता तथा नगरवासियों सहित बसन्त ऋतु में उत्सव मनाया जाता है एवं वे सभी उद्यान गमन पर जाते थे। बसन्त के मनोहारी रुप को देखने ,सीता के दोहद एवं जिनेन्द्र पूजा हेतु राम प्रतिहारी से कहते है कि बिना विलम्ब किए मत्रियों से कहो कि जिनालयों में अच्छी तरह पूजा की जाए। सब लोग बहुत भारी आदर के साथ महेन्द्रोदय उद्यान में जाकर जिन मंदिरों की शोभा करे। तोरण, पताका, लम्बूष, घंटा, गोले, अर्धचन्द्र, चंदोबा, अत्यन्त मनोहर वस्त्र तथा अत्यन्त सुन्दर उपकरणों के द्वारा लोग सम्पूर्ण पृथ्वी पर जिन–पूजा करे। निर्वाण–क्षेत्रों के मंदिर विशेष रुप से विभूषित किए जाए तथा सर्वसम्पत्ति से सहित महाआनन्द बहुत भारी हर्ष के कारण प्रयुक्त किए जाए।[215] राम की आज्ञानुसार विशाल मंदिरों के द्वारों पर उत्तम हार आदि से अंलकृत पूर्ण कलश स्थापित किए गए। मंदिरों की स्वर्णमयी लम्बी चौड़ी दीवालों पर मणिमय चित्रों से चित्त को आकर्षित करने वाले उत्तमोत्तम चित्रपट फैलाए गए। खंभों के ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियों के दर्पण लगाए गए। गवाक्षों (झरोखों) के आगे स्वच्छ झरने के समान मनोहर हार लटकाए गए। मनुष्यों के जहाँ चरण पड़ते थे ऐसी भूमियों में पाँच वर्ण के सुन्दर रत्नमय चूर्ण से नाना प्रकार के बेल–बूटे खींचे गए। जिनमें सौ अथवा हजार कलिकाएँ थी तथा जो लम्बी डंडी से युक्त थे, ऐसे कमल उन मंदिरों की देहलियों पर, अन्य स्थानों पर रखे गए। हाथ से पाने योग्य स्थानों में मत्त स्त्री के समान शब्द करने वाली छोटी–छोटी घण्टियों के समूह लटकाए गए जिनकी मणिमय डण्डियाँ थी। ऐसे पाँच वर्ण के कामदार चमरों के साथ बड़ी बड़ी हाँड़ियाँ लटकाई गई। नाना प्रकार की मालाएँ फैलाई गई। अनेक की संख्याओं में जगह–जगह बनाई गई विशाल वादन शालाओं, प्रेक्षकशालाओं (दर्शकगृहो) से वह उद्यान अंलकृत किया गया।[216]

नगरवासी, देशवासी स्त्रियाँ, मंत्रियों और सीता के साथ राम इन्द्र के समान बड़े वैभव से उस उद्यान की ओर चले। यथायोग्य ऋद्धि को धारण करने

वाले लक्ष्मण तथा हर्ष से युक्त एवं अत्यधिक अन्न–पान की सामग्री सहित शेष लोग भी अपनी–अपनी योग्यतानुसार जा रहे थे। वहाँ जाकर देवियाँ मनोहर कदली गृहों में तथा अतिमुक्तक लता के सुन्दर निकुंजों में महावैभव के साथ ठहर गई तथा अन्य लोग भी यथायोग्य स्थानों में सुख से बैठ गए। हाथी से उतर कर राम ने विशाल सरोवर में सुखपूर्वक क्रीड़ा की। पश्चात् फूलों को तोड़ कर जल से बाहर निकलकर सीता के साथ पूजन की। दिव्य सामग्री से जिनेन्द्र भगवान की पूजा की।[217] उद्यान में राम ने अमृतमय आहार, विलेपन, शयन, आसन, निवास, गंध तथा माला आदि से उत्पन्न होने वाले शब्द, रस, रुप, गंध और स्पर्श सम्बन्धी उत्तम सुख प्राप्त किये।[218]

बसन्तोत्सव में मुख्यतः होलिकोत्सव के दृश्य भी मिलते है। बसन्त ऋतु में फूलों का पराग, सुंगधित चूर्ण सब ओर फैल कर महोत्सव मना रहा था।[219] वात्स्यायन ने कामसूत्र में ऐसा उल्लेख किया है कि बसन्तोत्सव में मुख्यतः होलिकोत्सव का आयोजन किया जाता था।[220] पद्मपुराण में हालाकि इस प्रकार का कोई स्पष्ट विवरण नहीं है। फिर भी समाज में प्रचलित यह आयोजन लोगों को आकर्षित करता होगा।

मदनोत्सव : पद्मपुराण में सुग्रीव की कन्या मदनोत्सवा को मदन के उत्सव स्वरुप कहा है।[221] इस सन्दर्भ में अन्य कोई विवरण उपलब्ध नहीं है फिर भी समकालीन साहित्यों से इसकी पुष्टि होती है कि उस समय मदनोत्सव के आयोजन में स्त्री पुरुष आनन्द में रत रहते थे। जैन दर्शन में पुराणकारों ने सात्विकता को दृष्टिगत रखते हुए इस उत्सव के बारे में इसलिए विशेष प्रकाश नहीं डाला होगा। वास्तव में मदनोत्सव चैत्र शुक्ल द्वादशी को प्रारम्भ होता था। उस दिन लोग व्रत रखते थे। अशोक वृक्ष के नीचे मिट्टी का कलश स्थापन किया जाता था। उसमें सफेद चावल भर दिए जाते थे। नाना प्रकार के फल और ईख विशेष रुप पूजोपहार का काम करती थी। कलश को सफेद वस्त्र से ढक दिया जाता था और श्वेत चन्दन छिड़का जाता था। कलश के ऊपर एक ताम्रपत्र रखा जाता था और उसके ऊपर कदलीदल बिछाकर कामदेव और रति

की प्रतिमा बनाई जाती थी। नाना भांति के गंध–धूम और नृत्य–वाद्य से कामदेव को प्रसन्न करने का भी प्रयत्न किया जाता था। इसके दूसरे दिन अर्थात् चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भी मदन की पूजा होती थी और सुसज्जित भाव से स्तुति की जाती थी। चैत्र शुक्ल चतुर्दशी की रात को केवल पूजा ही नहीं होती थी, नाना प्रकार के अश्लील गान भी गाये जाते थे और पूर्णिमा के दिन छककर उत्सव मनाया जाता था।[222] वास्तव में इन उत्सवों से आनन्द तो आता ही था साथ ही आध्यात्मिक चेतना, सामाजिक एकता और समानता की भावना जागृत होती थी।

विजयोत्सवः राजा जब युद्ध में शत्रु पर विजय प्राप्त कर अपनी राजधानी में पहुँचता था तो वह बड़े उल्लास से विजयोत्सव का आयोजन करता था। सम्पूर्ण नगर को रत्नमय ध्वजाओं से सुसज्जित किया जाता था। राजमहल की गलियों में घुटनों तक फूल बिछाए गए थे और केशर के जल से समस्त नगर सींचा गया था। इस समय नृत्य, गीत आदि विभिन्न तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया जाता था। विजय में उपलब्ध धन का वितरण सैनिकों एवं निर्धनों में किया जाता था। यह उत्सव कई दिनों तक निरन्तर चलता रहता था।[223]

दोला केलि या झूला झूलना : पद्मपुराण कालीन समाज में दोला या झूला मनोरंजन का लोकप्रिय साधन था। यह क्रीड़ा स्त्री पुरुष दोनों का ही मनोरंजन करती थी। पद्मपुराण में लंका के राजा विधुत्केश की क्रीड़ाओं का वर्णन करते हुआ कहा गया है कि राजा विद्युत्केश उन बेशकीमती झूलों पर झूलता था जिसमें बैठने का अच्छा आसन बनाया गया था जो ऊँचे वृक्ष से बंधे थे तथा जिनकी उछाल बहुत लम्बी होती थी।[224] प्रेंखा दोला का भी वर्णन मिलता है।[225] प्रेंखा दोला की प्रथा वर्षा ऋतु में ही अधिक थी। ये वाटिका में सघन छाया में लगाए जाते थे। यह क्रीड़ा परस्पर समरसता भी उत्पन्न करती थी। राम, लक्ष्मण

वन में वृक्ष पर लटकती लता पर सीता को बैठाकर बगल में दोनों ओर खड़े होकर सीता को झूला झूलाकर मनोविनोद करते थे।

प्राचीन भारत में दोला केलि का समाज में विशेष प्रचार था, किन्तु कालान्तर में यह निर्दोष क्रीड़ा भी कलुषित हो गई और यह स्त्रियों के कामभाव को जागृत करने का एक महत्वपूर्ण साधन बन गया। इसका थोड़ा बहुत विवरण पद्मपुराण में मिलता है। एक स्थान पर दशानन के साथ क्रीड़ा करती हुई कन्याओं की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए कहा गया है कि उस अपूर्व समागम के कारण उन कन्याओं का कामरुपी रस लज्जा से मिश्रित हो रहा था, अतः उसका मन दोला पर आरुढ़ हुए के समान अत्यन्त आकुल हो रहा था।[226]

वनक्रीड़ा :प्राचीन भारतीय समाज में मनोविनोद के लिए वनविहार के लिए यात्रा करने का उल्लेख मिलता है। यह क्रीड़ा सामूहिक रुप से भाग लेने वाले पति–पत्नियों तथा नायक–नायिकाओं के प्रेमालिङ्गन, हास–परिहास आदि के लिए अपूर्व अवसर प्रदान करती थी। यह मनोरंजन उद्यान यात्रा के समान था किन्तु वन क्रीड़ा व उद्यान यात्रा में अन्तर केवल इतना ही था कि उद्यान यात्रा निकटवर्ती किसी उपवन या निजी उद्यान में होती थी, किन्तु वन–विहार दूरवर्ती वनों में टोलियों के साथ किया जाता था। पद्मचरित में कहीं कहीं उद्यान और वन एक दूसरे के पर्यायवाची हो गये है।[227] इस प्रकार के अनेक उद्यानों तथा उनमें होने वाले अनेक प्रकार के आमोद–प्रमोदों का वर्णन पद्मपुराण में अनेक स्थानों पर किया गया है। ये उद्यान नैसर्गिक रुप से सुन्दर तो हुआ ही करते थे, इसके साथ ही साथ मनुष्य अनेक आकर्षक वस्तुओं का संयोग उपस्थित कर उसे और अधिक सुन्दर और आकर्षक बनाकर आमोद–प्रमोद किया करता था।

प्रमद वन में स्नान क्रीड़ा के योग्य कमलों से सुशोभित मनोहर वापिकाएँ थी। स्थान–स्थान पर पानीयशालायें तथा अनेक खण्डों से युक्त सभागृह थे।[228] वहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षों से घिरे एवं फलों से लदे नारंग और बीजपुर आदि के वृक्ष थे। इस प्रमदवन में वृक्षों की सब जातियाँ थी।[229] वहाँ

मंद–मंद वायु से नृत्य करती हुई वापिकायें राजहंस पक्षियों के समान ऐसी जान पड़ती थी मानो कोकिलाओं के आलाप से युक्त सघन वनों की हँसी ही का रही हो। उसमें अशोकमालिनी नाम की वापी थी जो कमलपत्रों से सुशोभित तथा स्वर्णमय सोपानों से युक्त और विचित्र आकार वाले गोपुरों से अलंकृत थी।[230] इसके अतिरिक्त वह उद्यान झरोखे आदि से अलंकृत उत्तमोत्तम लताओं से आलिंगित मनोहर गृहों तथा जलकणों से युक्त निर्झरों से सुशोभित था।[231]

प्रमद वन में महारक्ष विधाधर का अपने अन्तःपुर के साथ क्रीड़ा करने के लिए जाने का उल्लेख है।[232] राजा प्रमदवन में अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करता था। कभी स्त्रियाँ उसे फूलों से ताड़ना करती थी और कभी वह फूलों से स्त्रियों को ताड़ना करता था। कोई स्त्री अन्य स्त्री के पास जाने के कारण यदि ईर्ष्या से कुपित हो जाती थी तो वह चरणों में झुककर उसे शान्त कर लेता था। इस प्रकार कभी आप स्वयं कुपित हो जाता था तो लीला से भरी स्त्री उसे प्रसन्न करती थी। कभी यह त्रिकुटाचल के तट के समान सुशोभित अपने वक्षःस्थल से किसी स्त्री को प्रेरणा देता था तो अन्य स्त्री उसे भी अपने स्थूल स्तनों के आंलिगन से उसे प्रेरणा देती थी। वास्तव में प्रमद वन मनोविनोद के अनेक नैसर्गिक साधनों जैसे अव्यक्त मधुर शब्दों के साथ इधर–उधर मंडराते पक्षी समूह, खिले हुए फूलों से सुशोभित वृक्षों का समूह सघन पल्लवों की समीचीन छाया से युक्त लता मण्डप, अनेक विशेषताओं वाली वापी (नदी, सरोवर आदि) पानीयशाला एवं स्नानागृह जहाँ स्त्री पुरुष स्नान कर जलक्रीड़ा का आनन्द लेते थे। उत्तमोत्तम झरने, पर्वतीय प्रदेश जहाँ चढ़ने के लिए सीढ़ी का प्रयोग किया जाता था, रत्नमयी भूमि एवं सघन व विभिन्न प्रकार के वृक्षों की छाया मन बहलाव का प्रमुख साधन थी। पद्मपुराण में वर्णित है कि विद्युत्केश व उसकी स्त्रियाँ प्रमद वन में झूला झूल कर, सरोवर क्रीड़ा[233] कर, पुष्पादिप्रचया क्रीड़ा[234], सुवर्णमय पर्वतों पर चढ़ना[235] इत्यादि क्रीड़ायें करते थे। इसी प्रसंग में दशानन के मेघरव पर्वत पर बनी वापिका में छः हजार कन्याओं के साथ जलक्रीड़ा करने का वर्णन मिलता है।[236] राम, लक्ष्मण, सीता भी महावन में प्रवेश कर क्रीड़ा करते थे।[237]

बालोपयोगी मनोरंजनः बालोंपयोगी मनोरंजन के साधनों में खिलौनों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन्ही खिलौनों के माध्यम से वे अपने जीवन में भविष्य की तैयारी भी करते रहते है। इसके अभाव में उनके जीवन मे नीरसता आ जाना स्वभाविक है। परिणाम स्वरूप न केवल बच्चों का शरीरिक एवं मानसिक विकास अवरूद्ध होता है। बल्कि उनके जीवन में हतोत्साह का बीजारोपण होता जाता है। इस दृष्टि से खिलौना बच्चों के लिए न केवल मनोरंजन का साधन है, वरन् उनके जीवन में खिलौने को तोड़–मरोड़ कर कुछ सीखने की स्वाभाविक प्रवृत्ति भी उत्पन्न होती है। ऐसे परिप्रेक्ष्य में जहाँ कलाकार के लिए खिलौना बनाना एक कला है वहीं बच्चों के लिए मनो–विनोद का साधन।

पद्मपुराण कालीन समाज में भी बच्चों के मनोरंजन के लिए विभिन्न प्रकार के खिलौने बनाएँ जाते थे। बाल्यवस्था की स्मृति के द्योतक होने के कारण ये किसी–किसी की अमूल्य धरोहर हो जाते थे। पद्मपुराण में वर्णित है कि क्षुद्र नाम के मनुष्य के पास एक मयुरपत्र का खिलौना था। एक दिन वह खिलौना हवा में उड़ गया और राजा के पुत्र को मिल गया। उस कृत्रिम मयूर के निमित्त शोक करता हुआ वह अपने मित्र से बोला कि मित्र! यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर पत्र दे दो।[238] खिलौने मिट्टी, लकड़ी आदि से बनाए जाते थे। खिलौना बनाने की क्रिया पुस्तकर्म कहलाती थी।

पद्मपुराण कालीन समाज में यंत्र से चलने वाले, यंत्ररहित, छिद्रसहित खिलौने, छिद्ररहित खिलौने भी बालकों के मनो–विनोद के साधन थे।[239] उपयुक्त उल्लेखो से यह प्रतिभासित होता है कि बच्चों के मनोरंजन के लिए अनेक प्रकार के खिलौने बनाने की कला का विकास उस समय तक अच्छी तरह हो गया था।

शालभंजिकाः मनुष्य अपने जीवन को आनन्दमय एवं सुखकारी बनाना चाहता है परिणामस्वरूप वह आनन्द उत्पन्न करने वाली वस्तु को देखता है, उसका जीवन

में उपयोग करता है। यह पुतलिका दर्शन अथवा शालाभंजिका मुर्तियों में चार चांद लगाती है एवं अत्यन्त मनोहर एवं आनन्द उत्पन्न करने वाली होती है। यह शालभंजिका प्राणी को मोहित एवं आकर्षित करने के लिए पर्याप्त थी। शालभंजिका का अर्थ पद्मपुराण में पुतलिका या लकड़ी की पुतली के रूप में वर्णित है। आरम्भ में यह स्त्रियों की एक क्रीड़ा थी। खिले हुए साल के नीचे एक हाथ से उसकी डाली झुकाकर फूल चून–चून कर स्त्रियाँ यह खेल–खेलती थी।[240] मथुरा में कुषाण कालीन वैदिक स्तम्भों पर निर्मित इस प्रकार की स्त्रियाँ दर्शित है जिनको स्तम्भ शालभंजिका कहा गया है।खम्बे पर बनी हुई स्त्री मूर्ति के लिए चाहे वह किसी मुद्रा में हो, यह शब्द गुप्तकाल में चल गया था[241], खम्भे में लगी हुई इसी पुतली का वर्णन आचार्य रविषेण ने **'स्तम्भ सभासक्तामगृहीता शालभंजिकाम्'** पद द्वारा व्यक्त किया है।[242]

ये शालभंजिकाएँ क्रीड़ा के रूप में प्रदर्शित कर मनोरंजन का माध्यम बनी। पाणिनी की अष्टाध्यायी में प्राचां क्रीड़ायां नित्यं क्रीड़ा जीविकयों और संज्ञायाँ सूत्रों के उदाहरणों में शालाभंजिका, उद्दालक पुष्पभंजिका आदि कई क्रीड़ाओं के नाम आये है, जो पूर्वी भारत में प्रचलित थी।[243] शालभंजिका महलों में भी होती थी। वर्णित है कि सीता के महल के उर्ध्व भाग में अनेक लीलायुक्त पुतलियाँ स्थापित की गई थी। जो बार–बार जय–जय शब्द का उच्चारण करती थी तथा जब वह परिवार के लोगों को बुलाती थी तब 'आज्ञा देओ' इस प्रकार के संभ्रम सहित शरीर रहित परम कोमल वचन उच्चारित करती थी।[244] शालभंजिका धीरे–धीरे क्रीड़ा एवं मनो–विनोद के साधन के रूप में प्रयक्त की जाने लगी।

पुतलिका इतनी सुन्दर होती थी कि लोगों को आकर्षित करती थी। पुतलिका की सुन्दरता एवं स्थिरता के कारण कथाकार इसे साहित्य में उपमित करने लग गये। पद्मपुराण में आचार्य रविषेण ने अंजना को इसी तरह की उपमा प्रदान की है। वर्णित है कि पान की लाली से रहित होने के कारण अंजना के होंट अत्यन्त धूसरवर्ण के थे और वह ऐसी जान पड़ती थी मानों उसी खम्भे में उकेरी हुई मैली पुतली ही हो।[245] गुप्तकाल में समकालीन साहित्यों में इसके

कई रोचक विवरण उपलब्ध होते है। शालभंजिका राजा–महाराजा प्रमदवनों, यंत्रधारा आदि में इनके अंगों से पानी की धारा बहते हुए रमणीय एवं मोहक बन गयी, इस शालभंजिका का वर्णन कालीदास ने योषित मूर्ति के रूप में किया है।[246] इस प्रकार मूर्तिकार ने वर्णित शालभंजिका उद्भव 2000 वर्ष पूर्व से लेकर आज तक के साहित्य में मिलता है, जोकि मनोरंजन का साधन थी।

कठपुतली : हमारे देश में कठपुतली का नाच मनोरंजन का प्राचीन साधन है पद्मचरित में लकड़ी से बनी, मिट्टी से बनी तथा सांचे में ढलकर बनी कठपुतलियों का वर्णन मिलता है। उपमा के रूप में वर्णित है कि कठपुतली जिस प्रकार स्वयं चेष्टा नहीं करती उसी प्रकार दास भी स्वयं चेष्टा नहीं करता वह मालिक का गुलाम होती है, कटपुतली को पद्मपुराण में यंत्र यंत्रबिम्बेषु कहा है।[247] कामसुत्र में वात्स्यायन ने सूत्रक्रीड़ा को एक कला माना है[248] अवदानकल्पलता में गुडियों के नाच का नाम यंत्रपुन्नक लीला दिया गया है। आज भी यत्र–तत्र कठपुतली का नाच दिखाई पड़ता है।[249]

सामाजिक मनोरंजन के उक्त साधनों के द्वारा पद्मपुराण कालीन समाज में लोग मनोरंजन किया करते थे।

आर्थिक मनोरंजन :

प्राचीन भारतीय समाज में प्रचलित मनोरंजन के विभिन्न साधनों का तुलनात्मक अध्ययन करने से ऐसा परिलक्षित होता है कि बहुत से ऐसे मनोरंजन के साधन थे जिनका मूल उपदेश व्यक्ति, परिवार और समाज को मात्र मनोरंजन प्रदान करना होता था, लेकिन कतिपय ऐसी भी मनोरंजनात्मक परम्पराएँ प्रचलित थी, जो इस सीमा से ऊपर उठकर व्यावसायिक स्वरूप में परिवर्तित हो गयी थी। पद्मपुराण कालीन समाज में नाटक, नट–नर्तक एवं गाणिका न केवल मनोरंजन के साधन के रूप में प्रयुक्त हुआ है, बल्कि वे लोगों के भरण–पोषण अथवा आजीविका के प्रमुख स्त्रोत बन गये। आर्थिक मनोरंजन के ये साधन निम्न है।

नाटक : पद्मपुराण के अनुसार गीत, नृत्य, वादित्र इन तीनों का एक साथ होना नाट्य कहलाता है।[250] पद्मपुराण में नाट्यकला के सम्बन्ध में नट, नर्तक आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। वस्तुतः नटों के धर्म या अम्नाय को नाट्य कहते है।[251] पद्मपुराण में एक से एक बढ़कर नाट्यशालाओं और अनेक की संख्या में बनायी गयी प्रेक्षकशालाओं (दर्शकग्रहों) का होने का उल्लेख किया गया है।[252] नट रंगभूमि में[253] पात्र के अनुरूप अभिनय करता है। कभी राजा तो कभी दास बनता है तथा दर्शकों का मनोरंजन करता है। अतः नट की सम्पूर्ण क्रियाएँ विचित्र होती है। पद्मपुराण में वर्णित है कि संसार में प्राणियों की चेष्टाएँ नट की चेष्टाओं के समान विचित्र होती है।[254] वास्तव में नाट्य की सफलता या नटों की विचित्र चेष्टाएँ ही लोकरंजन का कारण है। भगवान आदिनाथ का जन्म होने पर सौधर्म इन्द्र आनन्द नाटक कर उत्सव मनाता है।[255] राम, लक्ष्मण एवं सीता के स्वागत में वंश स्थलपुर के राजा सुरप्रभ ने मनोरंजन के लिए नाट्य का आयोजन किया[256],

गणिकाः प्राचीन भारतीय समाज में वेश्याओं का अस्तित्व विद्यमान था। यह मनोरंजन का ऐसा साधन था जिसके द्वारा सम्पन्न लोग आमोद–प्रमोद हेतु इस वृत्त का अनुसरण करते थे। पद्मपुराण में चार प्रकार की नारियों का इस संदर्भ में उल्लेख हुआ है। **1. वारांगना 2. गणिका 3. वेश्या 4. वारवनिता।** इनमें वारांगना व वारवनिता को श्रेष्ठ माना गया है। यह राजमहलों में नियुक्त की जाती थी। राजा के सम्मुख नृत्य, गायन, वादन के अतिरिक्त इनका मुख्य कार्य राजा के अतिथियों का सत्कार एवं मनोरंजन करना भी था। पद्मपुराण में वारांगनाओं के प्रातःकालीन जयनाद को मंगलसूचक माना गया है।[257] वारवनिताएँ भी मधुर गान गाकर राजा का मनोरंजन करती थी।[258] गणिकाओं का स्थान वेश्या से अधिक उंचा होता था। गणिकाएँ राज्य की सम्पत्ति समझी जाती थी। लक्ष्मण ने सिंहोदर और वज्रकर्ण की जब मित्रता करादी तब सिंहोदर ने वज्रकर्ण को अपने राज्य का आधा भाग, चतुरंग सेना तथा धन आदि के साथ आधी गणिकाएँ भी वज्रोदर के लिए दी।[259] राजा के मनोरंजन के लिए

बहुसंख्यक गणिकाएँ नियुक्त की जाती थी। ये गणिकाएँ वेश्या के समान राजा के व्यक्तिगत कार्य का सम्पादन नहीं करती थी। मृच्छकटिक में गणिका बसन्तसेना ऐसी उच्च चरित्रा और गुणसम्पन्न गणिका थी जो गणिका वर्ग के लिए आदर्श थी।[260] गणिका के निमित्त युद्ध भी हो जाया करते थे। पद्मपुराण में राजा श्रीषेण के पुत्रों में गणिका को लेकर युद्ध का वर्णन मिलता है।[261]

वेश्या वर्ग जो रूप यौवन के द्वारा जीविकोपार्जन करती थी पद्मपुराण में इन्हें विलासिनी कहा गया है। ये वेश्यायें भी उस समय अच्छा मनोरंजन करती थी।[262] पद्मपुराण में वेश्या को मनोरंजन के परिप्रेक्ष्य में श्रेष्ठ वस्तु माना गया है।[263] इन वेश्याओं के अनेक कार्य थे। ये गुणों से लोगों का स्वागत करती थी, नृत्य से मनोरंजन करती थी। पद्मपुराण में वर्णित है कि रावण के लंका में प्रवेश करने पर उत्तमोत्तम वेश्याओं ने नृत्य कर स्वागत किया था।[264] वेश्यायें सदैव सच्चाई से दूर रहती है वे सर्वदा झूठ पर निर्भर रहती है। पद्मपुराण में वेश्या की संगत पाप का कार्य बताया गया है। कामलता[265], मदनलता[266] एवं बसंन्तडमरा वेश्याओं के उदाहरण पद्मपुराण में मिलते है जो रूप यौवन के द्वारा धनी सेठों का मनोरंजन कर उन्हें कंगाल कर देती है एवं स्वयं मालामाल हो जाती है।

ये वेश्याऐं रुप योवन के द्वारा व्यक्ति को आकर्षित करती थी और इनके जाल में फंसने के बाद उन्हें लूटती है। इसी माया से वेश्याऐं पैसा कमाती है। वेश्याऐं स्वयं तो दरिद्रता से युक्त होती थी साथ ही परिवार में अन्य बन्धुवर्ग सम्पदा को प्राप्त हो जाते थे। पद्मपुराण में पोदनपुर नगर में बसन्तडमरा वेश्या का चित्रण हुआ है जो कि वेश्याओं में उत्तम थी। मृदुमति ने उसमें आसक्त होकर उसके माता–पिता व अन्य बंधुजनों को दरिद्रता से मुक्त कर दिया था। जिससे वे समस्त इच्छित पदार्थो को प्राप्त कर राजा–रानी जैसी लीला को प्राप्त हो रहे थे।[615] वेश्याएँ धर्म को भी धारण करती थी। पद्मचरित में मदना नामक वेश्या के मुनिराज के समक्ष सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का उल्लेख है।[267]

शिकार/मृगयाजीविना :पद्मपुराण में मृगया–विनोद क्रीड़ा या शिकार को व्यसन माना गया है।[268] शिकारी के लिए पद्मपुराण में व्याध एवं लुब्धक शब्द का प्रयोग आया है। शिकार को मृगरमण भी कहते थे। शिकार मनोरंजन का बहुत बड़ा साधन था। पद्मपुराण में वर्णित है कि एक समय दशांगपुर का राजा वज्रकर्ण शिकार खेलने के लिए जीवों से भरी अटवी में जाता है तो अटवी में ध्यानस्थ मुनिराज उससे कहते है कि ये वन निरपराधी, क्षुद्र, दयनीय, मृग, जो अनाथ है, चंचल नेत्रों के धारक है, निरंतर उद्विग्न रहते है, जंगल के तृण और पानी से बने शरीर को धारण करते है, अनेक दुखों से व्याप्त है, भयभीत होने के कारण रात्रि में भी निद्रा को प्राप्त नहीं होते है, उत्तम आचार के धारण कुलीन पुरुषों द्वारा मारे जाने योग्य नहीं है।[269] पक्षियों का शिकार भी मनोरंजन का साधन था तथा उन्हें बेचकर जीविकोपार्जन भी किया जाता था। पक्षियों का शिकार करने वाले को पद्मपुराण में लुब्धक कहा गया है[270] तथा शिकार योग्य पक्षी को शकुन कहकर संबोधित किया है।[271] सामान्यतः शिकार धनुष बाण द्वारा किया जाता था। मृगया मनोरंजन का साधन भी था और व्यवसाय भी। पद्मपुराण में व्याध के धनुष लेकर शिकार के लिए प्रवृत्त होने का उल्लेख आया है।[272]

अहिंसा प्रधान धर्म होने के कारण अत्यधिक वर्णन का पद्मपुराण में अभाव है लेकिन समकालीन साहित्यों में इसकी लोकप्रियता सूचित होती है। पद्मपुराण में मृग एवं पक्षी शिकार का ही उल्लेख मिलता है।

राजनैतिक मनोरंजन :

प्राचीन भारत में मनोरंजन की अनेक विधाओं और परम्पराओं का प्रचलन अतीत काल से चला आ रहा है। ऐसे प्रमुख मनोरंजन में राजनैतिक मनोरंजन का विशिष्ट स्थान है प्रारम्भ से ही राजसभा में मनोरंजन का सहारा लिया जाता था। इस प्रकार के मनोरंजनात्मक उत्सवों का मुख्य उद्देश्य न केवल राजा या राजदरबारियों का मनोरंजन करना था बल्कि इसका सीधा सम्बन्ध सामान्य जनता की मनोरंजनात्मक अभिरूचि से भी था। राजा के राज्यरोहण के अवसर

मनोरंजनात्मक उत्सवों का आयोजन किया जाता था। वंश परम्परा के अनुसार राज्याभिषेक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं पवित्र संस्कार माना गया है। पद्मपुराण में राज्याभिषेक के समय के उत्सवों का विवरण प्राप्त होता है। राजसिंहासन पर अधिष्ठित होने से पहले राजाओं का राज्याभिषेक होता था। इस अवसर पर अनेक राजा उपस्थित रहते थे।[273] प्रजा, राजा से राज्यभिषेक स्वीकृत करने की प्रार्थना करती थी।[274] अभिषेक के समय विशाल शब्द किया जाता था, शंख, भेरी, दुंदुभि, ढक्का, झालर, तुर्य, बांसुरी आदि बाजे बजाये जाते थे।[275] मंगलमय गीत, विभिन्न प्रकार के मनोहर नृत्यों का आयोजन किया जाता था।[276]

सर्वप्रथम परम विभूति के साथ भावी राजा को अभिषेक के आसन पर आरूढ़ किया जाता था। फिर चाँदी, सुवर्ण तथा नाना प्रकार के कलशों से अभिषेक किया जाता था।[277] इसके बाद राजा को मुकुट, अंगद, केयूर, हार, कुण्डलों से विभूषित कर दिव्य मालाओं, वस्त्रों तथा उत्तमोत्तम विलेपनों से राजा को चर्चित किया जाता थ।[278] इस अवसर पर राजा का जय– जयकार कर अभिनंदन किया जाता था।[279] राजा के अभिषेक के बाद उसकी पटरानी का भी अभिषेक होता था। पद्मपुराण में राम एवं लक्ष्मण के राज्यभिषेक के अवसर पर विभिन्न उत्सवों का विवरण मिलता है।

राम की पटरानी सीता तथा लक्ष्मण की पटरानी विशल्या का भी जय–जयकार एवं बड़े वैभव के साथ अभिनन्दन कर अभिषेक किया गया था।[280] राजसभा के चारों ओर बहुत बड़ा खुला मैदान होता था जहाँ पर बहुत से लोग आकर बैठते थे। यह मैदान राजमहल की दीवारों से घिरा रहता था। राजमहल के झरोखों से स्त्रियाँ झाँककर सभा में होने वाले कार्यक्रमों को देखा करती थी।[281] महाभारत में सभाओं का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। इन सभाओं में मनोरंजन द्यूत, आमोद, वादविवाद तथा प्रतियोगिता की जाती थी।[282] पद्मपुराण में इसी परम्परा में नृत्य सभा का वर्णन मिलता है जहाँ इस प्रकार की नर्तकियों ने नृत्य किया कि वे नर्तकियाँ जिस स्थान में ठहरती थी, सारी सभा उसी स्थान में अपने नेत्र लगा देती थी। सारी सभा के नेत्र उसके रूप से, कान मधुर स्वर से और मन रुप तथा स्वर दोनों से मजबूत बंध गये थे। सामन्त लोग नर्तकियों

को पुरस्कार देते–देते अलंकार रहित हो गये थे, उनके शरीर पर केवल पहनने के वस्त्र ही बाकी रह गये थे।[283] उक्त क्रियाकलाप एक तरफ तो राजकीय औपचारिकता की पूर्ति करता ही था, वहीं दूसरी तरफ इस प्रक्रिया के माध्यम से साम्राज्य के जनसमूह का मनोरंजन भी होता था।

धार्मिक मनोरंजन :

मनोरंजन मुख्य रूप से सामाजिक व्यवस्था का अंग कहा गया है लेकिन सामाजिक एवं धार्मिक समन्वय की स्थिति में प्राचीन भारतीय कुछ धार्मिक परम्पराओं एवं व्यवस्थाओं को भी मनोरंजन का एक विशिष्ट साधन माना गया है जिसके माध्यम से जहां एक तरफ धार्मिक प्रयोजनों की प्राप्ति होती है वहीं इससे लोगों का मनोरंजन होता है।

पद्मपुराण कालीन समाज में भी लोग जिन की पूजा, अष्टान्हिक महोत्सव, पंचकल्याणक महोत्सव, आहारदान महोत्सव, चैत्यालय में प्रतिमा विराजने का महोत्सव इत्यादि मंगल एवं शुभ कार्यों द्वारा मनोरंजन की अनुभूति करते थे। कुछ परम्पराएँ निम्न है।

जिन पूजाः जिन पूजा द्वारा उस समय आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति होती थी। जिन मन्दिर में बड़ी श्रद्धा के साथ जय–जय शब्द का उच्चारण करते हुए पूजा की जाती थी। इस आनन्द में पूजा करने वाले और पूजा सुनने वाले दोनों डूब जाते थे और आनन्द विभोर होकर नृत्य करने लगते थे।[284] पद्मपुराण में वर्णित है कि जो जिन मन्दिर में गीत, नृत्य तथा वादित्रों से महोत्सव करता है। वह स्वर्गों में परम उत्सव को प्राप्त होता है।[285] जिन मन्दिरों में तोरण, पताका, घण्टा, लम्बूष, गोले, अर्धचन्द्र, चन्दोबा, अत्यन्त महोहर वस्त्र तथा अत्यन्त सुन्दर उपकरणों के द्वारा जिन पूजा की जाती थी।[286] जिन मन्दिरों में महाआनंद के साथ सजावट की जाती थी। मन्दिरों के विशाल द्वार को उत्तम हार आदि से अलंकृत कर पूर्ण कलश स्थापित किए जाते थे।[287] मन्दिर की सुवर्णमयी लम्बी दीवारों पर मणिमय चित्रों से चित्त को आकर्षित करने वाले उत्तमोत्तम चित्र पट

फैलाये जाते थे।[288] खम्भों के ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियों के दर्पण लगाये जाते थे तथा झरोखें के अग्र भाग में स्वच्छ झरने के समान मनोहर हार लटकाये जाते थे। भूमि पर पाँच वर्ण के रत्नमय सुन्दर चूर्णो से नाना प्रकार के बेल–बूटे खींचे जाते थे।[289] देहली पर कमल एवं छोटी–छोटी घण्टियों के समूह लटकाए जाते थे। इस प्रकार विभिन्न मालाओं से मन्दिरों को सुसज्जित किया जाता था। पूजा के समय सुगंधित जल से[290], दूध की धारा से[291], दही के कलशों से[292], घी[293] से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किया जाता था। भक्तिपूर्वक जिन मन्दिर में रंगावली का उपहार चढ़ाया जाता था।[294] तीनों कालों में जिनेन्द्र देव की वन्दना की जाती थी।[295] रत्न तथा पुष्पों से[296], भावरूपी फूलों से[297], पूजा की जाती थी। चन्दन तथा काला गुरू आदि से उत्पन्न धूप चढ़ाई जाती थी।[298] दीप दान का भी प्रचलन था[299] छत्र, चमर, फानूस, पताका, दर्पण आदि से जिन मन्दिर सजाये जाते थे। इस प्रकार लोग महाआनन्द के वातावरण के साथ सामूहिक रूप से पूजा कर मन बहलाते थे। हनुमान चिर काल तक वीणा बजाकर, बार–बार स्तुति कर, पूजा कर, वन्दना कर तदनन्तर सब जिन मन्दिरों पर उत्तम फूल बरसाये[300]।

अष्टाह्निक महोत्सवः जैन मान्यता अनुसार इस पृथ्वी पर आठवां नन्दीश्वर द्वीप है उस द्वीप में 52 जिनालय बने हुए है यह पर्व फाल्गुन, कार्तिक और आषाण मास के अन्त के आठ दिनों में मनाया जाता है। पद्मपुराण में वर्णित है कि फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा तक अष्टाह्निक महोत्सव आने पर नन्दीश्वर द्वीप में स्वर्ग से देवगण पूजा करने के लिए जाते है। चूकिं मनुष्य वहां नहीं जा सकते इसलिए वे इन आठ दिनों के आने पर यहीं पूजा करते है। पद्मपुराण में इस पर्व का प्राचीन रूप हमें उपलब्ध होता है। इस समय लोग परम् हर्ष से युक्त होकर अहिंसा पालन करने का संकल्प लेते थे तथा पूजा तथा अभिषेक करते थे। मन्दिरों को पताकाओं से अलंकृत किया जाता था।[301] एक से बढ़कर एक सभाएँ, प्याऊ, मंच, पट्टशालाएँ, मनोहर नाट्यशालाएँ तथा बड़ी–बड़ी वापिकाएँ बनाई जाती थी।[302] जिनालय स्वर्णादि की पराग से

निर्मित नाना प्रकार के मण्डलादि से निर्मित एवं वस्त्र तथा कदली आदि से सुशोभित उत्तम द्वारों से शोभा पाते थे।[303] जो दूध, घी से भरे रहते थे, जिन के मुख पर कमल ढके जाते थे, जिन के कण्ठ में मोतियों की माला लटकती थी, जो रत्नों की किरणों से सुशोभित होते थे, जिन पर विभिन्न प्रकार के बेल–बूटे देदिप्यमान होते थे तथा जो जिन प्रतिमाओं के अभिषेक के लिए इकट्ठे किये जाते थे, ऐसे हजारों कलश गृहस्थी के घरों में दिखाई देते थे।[304] मन्दिरों में कर्णिकार, अतिमुक्तक, कदम्ब, सहकार, चम्पक, पारिजातक तथा मंदार आदि फूलों से निर्मित अत्यन्त उज्ज्वल मालायें सुशोभित होती थी। भौरें सुगंधि के कारण उन पर मण्डराया करते थे।[305]

राजा दशरथ अष्टाह्निक महापर्व में जिनेन्द्र भगवान की महिमा करने के लिए जाता है। उस समय उसकी समस्त स्त्रियाँ, पुत्र तथा बन्धुजन बड़े आनन्द के साथ कार्य करते थे, कोई मण्डल बनाने के लिए बड़े आदर से पाँच रंग के चूर्ण पीसने लगा, कोई नाना प्रकार की रचना करने में निपूण मालाएँ गुथने लगा।[306] कोई जल को सुगंधित करता, कोई पृथ्वीं को सींचता, कोई नाना प्रकार के उत्कृष्ट सुगंधित पदार्थ पीसता[307] कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रों से जिन मन्दिर के द्वार की शोभा करता तथा कोई नाना धातुओं के रस से दिवालों को अलंकृत करता[308] इसके बाद उत्तमोत्तम सामग्रियों को एकत्रित कर तुरही के विशाल शब्द के साथ जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किया जाता इस प्रकार राजा दशरथ के सम्पूर्ण परिवार के साथ जिन पूजा कर आनन्द मनाये जाने उल्लेख मिलता है।[309]

अभिषेक का गंधोदक मस्तक पर लगाया जाता था।[310] इस अवसर पर उत्तमोत्तम नगाड़ों, तुरही, मृदंग, शंख तथा काहल आदि वादित्रों से मन्दिर में विशाल शब्द होता था।[311] कहीं कहीं पर बड़ी धूमधाम से नगर में जिनेन्द्र भगवान का रथ भी निकलवाया जाता था।[312]

जिन पूजा के प्रसंग में राजाओं का मिलन भी हो जाता था। पद्मपुराण में नन्दीश्वर द्वीप की वन्दना करने के बाद अन्जना व पवनंजय का कैलाश पर्वत पर सम्बन्ध निश्चित करने का उल्लेख है। अतः अष्टाह्निका महापर्व उन दिनों

बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था जिसमें लोग आनन्द एवं उत्साह प्रकट करते थे।[313]

पंचकल्याणक महोत्सव : कल्याणक पाँच होते है गर्भ, जन्म, तप, केवल ज्ञान, मोक्ष। ये कल्याणक तीर्थकरों के होते है। प्राचीन साहित्य में तीर्थकर के पंचकल्याणक देवों द्वारा मनाये जाने के उल्लेख प्राप्त होते है। पद्मपुराण में इन पंचकल्याणकों के द्वारा विशेष आनन्द प्राप्ति का उल्लेख आया है वर्तमान में भी ऐसी ही क्रियाये करके लोग धार्मिक रूप से मनोरंजन करते है।

गर्भ महोत्सव (गर्भकल्याणक): पद्मपुराण में भगवान ऋषभदेव के गर्भ महोत्सव का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। जब ऋषभदेव के गर्भावतार का समय हुआ, उस समय इन्द्र की आज्ञा से संतुष्ट हुए दिक्कुमारियाँ माता मरूदेवी की सेवा में नियुक्त की गई।[314] ये देवियाँ श्री, ह्रीं, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी माता मरूदेवी के मन बहलाने के लिए निम्नलिखित कार्य करती थी।

1. वृद्धि को प्राप्त हो, आज्ञा देओ, जीवित रहों इत्यादि शब्दों का सम्भ्रम के साथ उच्चारण[315]।
2. ह्रदयहारी गुणों के द्वारा स्तुति करना[316]।
3. वीणा बजाकर गुणगान करना[317]।
4. अमृत के समान आनन्द देने वाला आश्चर्यजनक गीत गाना[318]।
5. कोमल हाथों से पैर पलोटना[319]।
6. पान देना[320]।
7. आसन देना[321]।
8. हाथ में तलवार लेकर सदा रक्षा करने में तत्पर रहना[322]।
9. महल के भीतरी ओर बाहरी द्वार पर माला, स्वर्ण की छड़ी, डण्डे और तलवार आदि शस्त्र लेकर पहरा देना[323]।
10. चमर ढुराना[324]।
11. वस्त्र लाकर देना[325]

12. आभूषण लाकर उपस्थित करना[326]।

13. शय्या बिछाने के कार्य में लगना[327]।

14. बुहारना[328]।

15. सुगन्धित द्रव्य का लेप लगाना[329]।

16. भोजन पान के कार्य में व्यग्र होना[330]।

17. बुलाने आदि का कार्य[331]।

इस प्रकार गर्भ महोत्सव की क्रियाएँ आनन्द के साथ सम्पन्न कर माता का मनोरंजन किया जाता था।

जन्मकल्याणक (जन्माभिषेकोत्सव) : तीर्थकर के जन्म के अवसर पर इन्द्र का आसन कम्पायमान हो जाता है।[332] और समस्त सुर तथा असुर 'क्या है?' शब्द बोलने लग जाते है, उस समय भवनवासी देवों के भवनों में बिना बजाये शंख बजते है। व्यंतरों के भवनों में अपने आप भेरियों का शब्द होता है[333] ज्योतिषी देवों के घर अकस्मात् सिंह की गर्जना होती है और कल्पवासी देवों के घर अपने आप ही घण्टा बजने लगता है।[334] इन्द्र अवधि ज्ञान से तीर्थकर के जन्म का समाचार ज्ञात करता है। तत्पश्चात इन्द्र भगवान के माता–पिता की नगरी के लिए ऐरावत हाथी पर सवार हो प्रस्थान करता हैं।[335] इस समय देवों द्वारा नृत्य करके, तालियाँ बजाकर, सेना को उन्नत बनाकर, समस्त लोक में फैलने वाला सिंहनाद करके, विक्रिया से अनेक वेश बनाकर, उत्कृष्ट गाना गाकर आनन्द मनाया जाता है।[336] इसके पश्चात कुबेर के द्वारा नगरी की रचना की जाती है। उस नगरी को विशाल कोट, परिखा तथा ऊँचे–ऊँचे गोपुरों के शिखरों से युक्त किया जाता है।[337] इसके बाद इन्द्र देवों के साथ नगर की प्रदक्षिणा कर इन्द्राणी के द्वारा प्रसूतिकागृह से जिन बालक को बुलवाता है।[338] इन्द्राणी प्रसूतिकागृह में जाकर पहले जिन माता को नमस्कार करती है फिर माता के पास मायामयी बालक रखकर जिन बालक को उठाकर इन्द्र को सौंप देती है। सौधर्म इन्द्र भगवान को गोदी में बैठाता है, अन्य देव छत्र, चमर आदि ग्रहण करते है, बाद में सुमेरू पर्वत की पाण्डुकशिला पर विशाल कलशों से

भगवान का इन्द्रादि देव अभिषेक करते है। पश्चात इन्द्र उन्हें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर स्तुति करता है। इसके बाद अन्य देवों के साथ अपने स्थान को चला जाता है।[339] अभिषेक के समय देवों ने भेरी, मृदंग तथा शंख के जोरदार शब्द किये। यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, तुम्बरू, नारद और विश्वावसु ने उत्कृष्ट मुर्च्छनायें करते हुए अपनी पत्नियों के साथ मन और कानों को हरण करने वाले गीत गाये। लक्ष्मी भी बड़े आदर के साथ वीणा बजाने लगी। उत्तमोत्तम देवों द्वारा गायन, वादन एवं नृत्य किया गया, देवियों का गंध से युक्त अनुलेपन कर भगवान का उद्धर्तन किया गया। इस प्रकार जन कल्याणक सम्बन्धी अत्यन्त आनन्ददायक क्रियायें देवों ने सम्पन्न की। पद्मपुराण में प्राचीन रूप उपलब्ध होता है। वर्तमान में यहीं क्रियायें पंचकल्याणक के समय सम्पन्न की जाती है। सामान्य जन इसमें भाग लेकर आमोद–प्रमोद करते है।

दीक्षा कल्याणक (दीक्षा महोत्सव) : वैराग्य का कारण उपस्थित होने पर तीर्थंकर दीक्षा लेने को उद्यत होते है। तब स्वर्ग से लौकान्तिक देव आकर अनुमोदन करते है।[340] इसके पश्चात उत्तम पालकी पर सवार हो भगवान घर से बाहर निकलकर उद्यान आदि रमणीक स्थान में पहुंचते है।[341]

उस समय बाजों की झनझनाहट और नृत्य करते हुए देवों के लिए प्रतिध्वनि पूर्ण शब्द से तीनों लोकों का अन्तराल भर जाता है।[342] उद्यान पहुंचकर भगवान माता–पिता तथा बन्धुजनों से दीक्षा लेने की आज्ञा लेते है फिर ऊँ नमः सिद्धेश्यः कहकर भगवान दीक्षा लेकर मुट्ठियों से केशलुंचन करते है। इन्द्र उन केशों को रत्नमयी पिटारे में रखकर क्षीर सागर में निक्षिप्त करता है।[343] इस प्रकार समस्त देव, दीक्षाकल्याणक सम्बन्धी उत्सव मनाकर यथा स्थान चले जाते है।[344]

केवल ज्ञान कल्याणक (केवल ज्ञान महोत्सव) : शुक्ल ध्यान के प्रभाव से मोहनीय कर्म का क्षय हो तीर्थंकर को लोक और उपलोक को प्रकट करने वाला केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।[345] केवल ज्ञान के साथ ही बहुत भारी भामण्डल

उत्पन्न होता है। उसके प्रकाश के कारण दिन–रात का भेद नहीं रह जाता।[346] जहां तीर्थकर को केवल ज्ञान होता है वहीं एक अशोक वृक्ष प्रकट हो जाता है।[347] तत्पश्चात देव नाना प्रकार के फूलों की वर्षा करते है।[348] क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान भारी शब्दों से युक्त देवों द्वारा बजाये दुंदुभि बाजे बजने लगते है। भगवान के दोनों ओर दो यक्ष चमर ढुराते है मेरू के शिखर के समान तथा सूर्य की किरणों को तिरस्कृत करने वाला एक सिंहासन उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त मोतियों की लड़ियों से विभूषित छत्रत्रय उत्पन्न होता है। इस प्रकार समवशरण के बीच सिंहासन पर विराजमान भगवान की शोभा अवर्णनीय हो जाती है।[349] इन्द्र भी इस अवसर पर अपने–अपने परिवारों के साथ वन्दना के लिए वहां आते है।[350]

निर्वाण कल्याणक (निर्वाण महोत्सव) : तीर्थकर की निर्वाण प्राप्ति के समय भी इन्द्रादिक देव आकर उत्सव करते है। उक्त पंचकल्याणक महोत्सव सबसे बड़ा धार्मिक कार्य है इसमें समस्त बन्धुजन एकत्रित होकर हर्षोल्लास के साथ अध्यात्मिक मनोरंजन करते थे।

आहार दान महोत्सव : निग्रंथ मुनि को शुद्ध आहार कराया जाता था। इसे ही आहार दान कहा गया है। राम, सीता जब वन में थे तो उन्होंने युगल मुनि को आहार कराया वह आहार वन में उत्पन्न हुई गायों और भैंसों के ताजे और मनोहर घी, दूध और उनसे निर्मित मावों से बना था खजूर, आम, नारियल, बेर आदि फलों तथा शास्त्रोक्त शुद्धि से निर्मित विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों से उन मुनियों की पारणा करवायी गई थी।[351]

इस समय देवों ने अपना आनन्द निम्न प्रकार प्रकट किया।[352]

1. **दुंदुभि नाद करना।**
2. **वायु का धीरे–धीरे बहना।**
3. **धन्य, धन्य देवों का मधुर शब्द करना।**

4. **आकाश से पांच वर्णों की सुगंधित पुष्पवृष्टि।**
5. **विभिन्न वर्णों के दिव्य रत्न की वृष्टि।**
6. **नाना रस पूर्ण अनेक प्रकार के नृत्य करना।**

राजा श्रेयांस ने भी भगवान आदि नाथ को प्रदक्षिणा देकर अपने केशों से उनके चरणों का मर्दन कर आनन्द के आँसुओं से उनका प्रक्षालन किया, रत्नमयी पात्र से अर्घ देकर उनके चरण धोये उन्हें विराजमान कर कलश में रखा हुआ इक्षु का शीतल जल लेकर विधिपूर्वक श्रेष्ठ पारणा कराई, इस प्रकार आहार दान महोत्सव सम्पन्न किया।[353]

तदयुगीन समाज में आहार दान महोत्सव द्वारा आनन्द का सृजन किया जाता था। मनोरंजन की उपर्युक्त वर्णित परम्पराओं के अतिरिक्त उस समय चैत्यालय में प्रतिमा विराजने का भी महोत्सव बहुत आनन्द के साथ मनाया जाता था।[354] जो वर्तमान में भी प्रचलित है। सम्पूर्ण नर–नारी इसमें भाग लेते थे। पद्मपुराण में नन्दीश्वर द्वीप जाने का[355] तथा सीता द्वारा विभिन्न जिन मन्दिरों के दर्शन करने का उल्लेख मिलता है। वास्तव में यह तीर्थ यात्रा का ही अंग था जिसमें आनन्द की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती थी। तीर्थयात्रा करने से मन को जैसी शान्ति मिलती है वह वर्णनातीत है। यह एक आध्यात्मिक मनोरंजन ही तो है, जिसकी सुखद अनुभूति तीर्थयात्रा करके ही की जा सकती है।

पद्मपुराण युगीन समाज में मनोरंजन के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक रूपों के अतिरिक्त मनोरंजन के अन्य विविध साधन थे। कुछ जातियाँ या वर्ग जिनके नाम पद्मपुराण में उल्लिखित है, मनोरंजन का कार्य करती थी।

1. **विदूषक[355] – ये अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेश तथा बोली आदि के द्वारा जनता को हंसाते थे। कलह में प्रेम रखना तथा हास्य विनोद के कार्य में इनको प्रसिद्धि प्राप्त थी।**
2. **ताम्बूलिक[356] – पान बेचने वाले ताम्बूलिक कहलाते थे।**
3. **वेश्या[357] – जो रूप यौवन द्वारा जीविकोपार्जन एवं मनोरंजन करती थी।**

4. लासक[358] – यह नृत्य द्वारा जीविकोपार्जन करते थे।
5. गीत शास्त्र कौशलकोविद्[359] – जो संगीत शास्त्र के विद्वान थे।
6. विट[360] – वेश्याओं के साथ चलकर मनोरंजनार्थ क्रियाओं को सम्पादित करते थे।
7. चारण[361] – ये राजसभा में या जनता के समक्ष गीत गाकर मनोरंजन करते थे।

इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में लोग **पर्वतारोहण**[362], **काम क्रीड़ा**[363], **कुसुमाचय**[364], **पुष्पादिप्रचया क्रीड़ा**[365], **विविध कलायें जैसे धनुर्वेद**[366], **मिट्टी बांस, पत्तों से बर्तन तथा उपयोगी सामान बनाना**[367], **उक्ति कौशल कला**[368], **पत्रच्छेद क्रिया**[369], **लेप्यकला**[370], **कठपुतली**[371], **कदलीकनानच्छेद क्रीड़ा**[372] द्वारा मनोरंजन किया करते थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पद्मपुराण 24/671
2. वही, 24/671
3. वही, 24/681
4. वही, 24/681
5. वही, 24/691
6. वही, 40/261
7. वही, 72/111
8. वही, 72/13,14
9. वही, 72/12
10. वही, 72/13
11. वही, 72/14
12. वही, 72/15
13. वही, 72/15
14. वही, 72/17
15. वही, 20/155
16. वही, 20/157
17. वही, 80/72
18. वही, 72/16,80/73
19. वही, 80/74
20. वही, 80/75
21. वही, 108/8
22. वही, 8/90
23. वही, 8/91
24. वही, 8/96,97
25. वही, 8/98

26. वही, 8/100

27. वही, 8/101

28. वही, 10/68

29. वही, 10/69

30. वही, 10/69

31. वही, 10/71–74व

32. वही, 10/81

33. वही, 10/76–79

34. वही, 42/77

35. वही, 42/79–82

36. वही, 83/90–108

37. वही, 83/42

38. हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 206

39. पद्मपुराण 24/681

40. वही, 15/21

41. वही, 93/33–34

42. वही, 73/176

43. वही, 74/41

44. वही, 74/43

45. वही, 8/131

46. वही, 75/22

47. वही, 12/355

48. वही, 12/299

49. वही, 34/78,85/129

50. वही, 5/40

51. वही, 34/76–78

52. वही, 85/129

53. वही, 5／99

54. वही, 85／120

55. वही, 16／6

56. वही, 24／36

57. वही, 24／34—36

58. वही, 68／11

59. वही, 95／39

60. वही, 96／11

61. वही, 95／41

62. वही, 28／19

63. वही, 28／22

64. वही, 28／23व

65. ही, 28／24

66. वही, 28／25

67. वही, 28／27

68. वही, 28／21

69. वही, 19／111—118

70. वही, 8／365

71. वही, 106／51

72. वही, 14／130

73. वही, 46／185

74. वही, 40／16

75. वही, 5／369

76. वही, 8／85—89

77. वही, 37／133

78. वही, 46／96—104

79. वही, 43／93

80. वही, 36/10,11

81. वही, 10/97

82. वही, 11/302

83. वही, 46/63–64

84. वही, 3/102

85. वही, 8/361

86. वही, 14/231

87. वही, 52/72

88. वही, 37/93

89. वही, 39/5

90. नानूराम व्यासः रामायणकालीन संस्कृति,पृ98

91. पद्मपुराण, 58/113

92. वही, 6/386,6/336

93. वही, 6/476

94. वही, 58/113

95. वही, 15/184

96. कलानां तिसणामासां नाट्यमेकीक्रियोंच्यते। पद्म. 24/22

97. प्राणभूतंतावद्ध्रुवामानं प्रयोगाएव, अभिनव भारती, बड़ौदा सं. तृतीय खण्ड, पृ. 386

98. पद्मपुराण, 6/24,36/92,48/2,40/30

99. वही, 17/277

100. वही, 17/298

101. वही, 17/298

102. वही, 24/9

103. वही, 24/9

104. वही, 24/115

105. वही, 37/108

106. वही, 3/115

107. वही, 3/81

108. वही, 3/182

109. वही, 21/27

110. वही, 6/98

111. वही, 6/380

112. वही, 8/18–20

113. वही, 8/517

114. वही, 9/196

115. वही, 41/46–51

116. वही, 65/5

117. वही, 41/169

118. वही, 24/7–19

119. षड्जर्षभोतृतीयश्च,गांधारोमध्यमस्तथा।
पंचमो धैवतश्चापि निषादश्चेत्यभीस्वराः।। वही, 24/8

120. वही, 73/176

121. वही, 3/105, 3/114, 3/180, 6/15, 8/63, 6/340, 8/518, 9/176, 39/47,92 48/2, 12/16, 21/28, 22/126

122. वही, 17/275

123. वही, 36/92, 6/379, 88/19

124. वही, 36/92,2/28, 3/178, 6/340, 6/379

125. वही, 40/30, 6/340, 6/379, 21/28

126. वही, 40/30

127. वही, 40/30

128. वही, 2/117, 2/334, 3/162, 7/176, 8/424, 12/355, 15/190, 40/30

129. वही, 2/234, 40/30,6/379,3/61,7/14, 7/67, 19/6

130.वही, 68／9

131.वही, 68／9, 6／379, 58／29

132.वही, 88／27, 9／156, 8／431, 14／17

133.वही, 88／27, 6／379

134.वही, 3／162,17／223, 50／14

135.वही, 24／20

136.वही, 80／55

137.वही, 6／379

138.वही, 2／10,3／182,40／30

139.वही, 17／273

140.वही, 40／30

141.वही, 58／28

142.वही, 17／274

143.वही, 12／373

144.वही, 6／379

145.वही, 6／379

146.वही, 58／29

147.वही, 17／275

148.वही, 6／379

149.वही, 17／273

150.वही, 101／52

151.वही, 40230

152.वही, 3／166,13／12

153.वही, 30／105,12／355

154.वही, 3／107

155.वही, 42／82

156.वही, 58／27,82／31

157.वही, 82／31

158.वही, 58／28

159.वही, 58／27

160.वही, 58／27

161.वही, 58／27

162.वही, 82／31

163.वही, 83／31

164.वही, 58／27

165.वही, 80／55

166.वही, 58／27

167.वही, 58／27

168.वही, 58／28

169.वही, 8／31,8／55

170.वही, 96／46

171.वही,

172.वही, 71／8

173.वही, 24／6

174.वही, 3／168

175.वही, 38／80—81

176.वही, 28／3202

177.वही, 24／6

178.वही, 38／13

179.वही, 7／25

180.वही, 7／16

181.वही, 100／30

182.वही, 41／169

183.वही, 39／54—60

184.वही,37／108—110

185.वही, 38／135

186.वही, 3／262—264

187.वही, 118／15

188.वही, 73／36—144

189.वही 73／145

190.वही, 118／15

191.वही, 74／62—63

192.वही, 2／233,2／4

193. वही, 102／105

194.वही, 73／139

195.वही, 28／267,268

196.वही, 28／276,277

197.वही, 8／18—20

198.वही, 6／379

199.वही, 6／380

200.वही, 24／84

201.वही, 24／121

202.वही, 28／171

203.वही, 7／13

204.वही, 7／15

205.वही, 7／16

206.वही, 7／212

207.वही, 26／147

208.वही, 25／21

209.वही, 3／160—163

210.वही, 7／100—103

211.वही, 102/27–35

212.वही, 12/18

213.वही, 5/58

214.वही, 15/73

215.वही, 95/29–34

216.वही, 95/38–46

217.वही, 95/48–53

218.वही, 95/56

219.वही, 15/72

220.कामसूत्र, 1/4/43

221.मदनोत्सव भूतान्या प्रसिद्धा मदनोत्सवा।। पद्मपुराण, 47/140

222.हजारी प्रसाद द्विवेदीः प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ. 108

223.पद्मपुराण, 4/88–104

224.वही, 6/229

225.वही, 8/429

226.वही, 39/4

227.मिश्रेकामरसे तासांत्रपयापूर्वसंगमात्।
मनोदोलामिवारुढ़ेवभूवात्यन्तमाकुलम्।।पद्मपुराण 8/102

228.नारंगमातुलिंगाद्यैकलैयत्रनिरन्तराः।
खजुरैर्नालिकेरैश्चतालैश्न्यैश्चवेष्टिता।।पद्मपुराण 4/153
तत्र च प्रमदोद्याने सर्वाएवागत्वातयः।
कुसुमासतबकैश्छन्नागीयन्ते मत्तषट्पदैः।। पद्मपुराण 4/154

229. अशेकमालिनी नाम यत्रपद्मविराजिता।
वपी कनक सोपाना विचित्राकार गोपुरा।। पद्मपुराण 4/160

230. मनोहरगृहेर्भाति गवाक्षाद्युपशोभितैः।
सल्लतालिगित प्रान्तै निर्झरैश्चसमीकरेः।।पद्मपुराण 4/161

231. वही, 5/296–300

232. वही, 6 / 229

233. वही, 6 / 232

234. वही, 6 / 230

235. वही, 8 / 90

236. वही, 33 / 34—39

237. वही, 83 / 41—45

238. वही, 48 / 147—148

239. वही, 24 / 38

240. वही, 24 / 39

241. वही, 24 / 39

242. वही, 24 / 40

243. वही, प्रेमसुमन जैन, कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 337

244. वासुदेव शरण अग्रवालः हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 61,62

245. पद्मपुराण, 71 / 34

246. रमेशचन्द जैनः पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित संस्कृति, पृ. 182

247. वही, 100 / 11

248. वही, 16 / 85

249. प्रेमसुमन जैन, कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 338

250. पद्मपुराण, 5 / 54

251. वात्स्यायन, कामसूत्र, 1 / 3 / 16

252. पद्मपुराण, 65 / 197

253. कलानांतिसृणामासां नाट्यमेकीक्रियोंच्यते।पद्मपुराण, 24 / 221

254. पूजा सिंहः प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन, पृ. 144

255. पद्मपुराण, 68 / 11

256. वही, 95 / 66,95 / 46, 105 / 92, 109 / 67

257. विचित्रं खलु संसारे प्राणिनां नटचेष्टितम्।।पद्मपुराण 95 / 142

258. विधाय परमानन्दं स्वस्थानं ससुरोऽगमत्।। वही12 / 21

259. वही, 196/22

260. वही, 2/255

261. वही, 2/220

262. वही, 33/307–309

263. मृच्छकटिकम्

264. पद्मपुराण 15/35

265. वही, 40/23

266. वही, 7/35

267. वही, 12/373

268. वही, 33/46

269. वही, 41/182

270. वही, 105/130

271. वही, 41/182

272. वही, 6/155

273. वही, 33/105–107

274. लुब्धकेमाहतो जीवःशकुन्तिग्राम ममन्यदा।
ततोऽसौ शकुनोमृत्वावभूवम्लेच्छभूपति।।पद्मपुराण 41/138

275. वही, 41/139

276. वही, 6/321

277. वही, 80/20,25

278. वही, 88/21

279. वही, 88/26–27

280. वही, 88/29

281. वही, 88/30

282. वही, 88/31

283. वही, 88/31

284. वही, 88/33–35

285. वही, 38 ⁄ 96

286. द्विजेन्द्रनाथ शुक्लः भारतीय स्थापत्य, पृ. 193

287. पद्मपुराण, 37 ⁄ 109–111

288. वही, 5 ⁄ 348

289. वही, 32 ⁄ 171

290. वही, 95 ⁄ 30

291. वही, 95 ⁄ 36वही, 95 ⁄ 39

292. वही, 95 ⁄ 41वही 32 ⁄ 165

293. वही, 32 ⁄ 166

294. वही, 32 ⁄ 167

295. वही, 32 ⁄ 168

296. वही, 32 ⁄ 171

297. वही, 32 ⁄ 158

298. वही, 45 ⁄ 101,32 ⁄ 159

299. वही, 32 ⁄ 160

300. वही, 32 ⁄ 161

301. वही, 32 ⁄ 162

302. वही, 32 ⁄ 163

303. वही, 112 ⁄ 70

304. वही, 68 ⁄ 10

305. वही, 68 ⁄ 11

306. वही, 68 ⁄ 13

307. वही, 68 ⁄ 13

308. वही, 68 ⁄ 16,17

309. पिनष्टिपंचवर्णानि करिचंचूर्णानि सादरः।

कश्चिद् ग्रथ्नाति माल्यानि लब्धवर्णः सुभक्तिषु।। वही 29 ⁄ 3

310. वासयत्युदकं कश्चिद्द्रवयत्यपरः क्षितिम्।

पिनष्टि परमान् गंधान् कश्चिद्वहुकवधच्छवीन्।। वही29/4

311. द्वारशोभा करोत्यन्तो वासोभिरतिभासुरैः।

ननाधातुरसैःकश्चित्पुरुते भित्तिमण्डनम्ः।। वही 29/5

312. वही, 20/7

313. वही, 29/10

314. वही, 68/19

315. वही, 8/184

316. वही, 15/74

317. वही, 3/112

318. वही, 3/113

319. वही, 3/114

320. वही, 3/114

321. वही, 3/115

322. वही, 3/116

323. वही, 3/115

324. वही, 3/116

325. वही, 3/116

326. वही, 3/117

327. वही, 3/118

328. वही, 3/118

329. वही, 3/118

330. वही, 3/119

331. वही, 3/119

332. वही, 3/119

333. वही, 3/120

334. वही, 3/120

335. वही, 3/161

336. वही, 3／162

337. वही, 3／163

338. वही, 3／165

339. वही, 3／166,167

340. वही, 3／169,170

341. वही, 3／173

342. वही, 3／173,212

343. वही, 3／263,274,268

344. वही, 3／275,278,280

345. वही, 3／279

346. वही, 3／283,284

347. वही, 3／285

348. वही, 4／22

349. वही, 4／23

350. वही, 4／24,25

351. वही, 4／25

352. वही, 4／26

353. वही, 4／31

354. वही, 41／25,26,27

355. वही, 4／17—20, 101／19—25

356. वही, 4／15—16

357. वही, 11／294

358. वही, 6／135—139

359. वही, 1／28

360. वही, 80／178

361. वही, 2／39

362. वही, 2／39

363. वही, 2／41

364. वही, 2／43

365. वही, 2／44

366. वही, 6／230

367. वही, 46／185

368. वही, 101／11

369. वही, 6／232

370. वही, 25／46,47

371. वही, 11／198

372. वही, 24／35

373. वही, 24／41—43

374. वही, 23／41—44

अध्याय–षष्ठम (ब)

6.2 हरिवंश पुराण में प्रतिपादित मनोरंजन

1. मनोरंजन के साधन
2. उल्लेख
3. महत्व

षष्टम अध्याय (ब)

आचार्य जिनसेन का हरिवंश पुराण दिगम्बर सम्प्रदाय के कथा साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखता है। हरिवंश पुराण की तिथि शक सं. 705 (783 ई.) मानी गयी है। जो कि रचनाकार ने ग्रन्थ के अन्तिम सर्ग के 52वें श्लोक में दी है। यह पुराण महाभारत की कथा पर आधारित है। इस ग्रन्थ में हरिवंश की एक शाखा यादव कुल और इसमें उत्पन्न हुए दो शलाका पुरूषों का चरित्र विशेष रूप से वर्णित हुआ है। एक बाईस्वें तीर्थकर नेमिनाथ और दूसरे नवें नारायण कृष्ण। ये दोनों चचेरे भाई थे, जिनमें से एक ने अपने विवाह के अवसर पर निमित्त पाकर संन्यास ले लिया, और दुसरे ने कौरव–पाण्डव युद्ध में अपना बल–कौशल दिखलाया। एक ने आध्यात्मिक उत्कर्ष का आदर्श प्रस्तुत किया और दूसरे ने भौतिक लीला का। एक ने निवृत्ति परायणता का मार्ग प्रशस्त किया और दूसरे ने प्रवृत्ति का। इसी प्रसंग से हरिवंश पुराण में महाभारत का कथानक सम्मिलित पाया जाता है।

हरिवंशपुराण भी अपने काल का विश्वकोश है इसमें प्रसंगानुसार धर्म एवं नीति के अतिरिक्त नाना कलाओं का परिचय दिया गया है। वास्तव में देखा जाए तो लेखक ने अपने युग की छवि को भी ग्रन्थ में उभार कर भारत के इतिहास की जानकारी दी है। सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना अलग–अलग जगह की जाने के कारण सभी राज्यों की सांस्कृतिक परम्परा मनोरंजन के साधन भौगोलिक आधार पर व्याख्यायित हुए है। लेखक के अनुसार उस समय उत्तर में इन्द्रायुध का शासन, दक्षिण में श्रीवल्लभ जोकि राष्ट्रकट वंश के राजा कृष्ण प्रथम का पुत्र था। पूर्व में वत्सराज तथा पश्चिम में सौराष्ट्र का राजा वीर जयवराह था। अतः हरिवंशपुराण में चारों दिशाओं की संस्कृति देखने को मिलती है। ग्रन्थ लेखक ने इसका प्रारम्भ वर्धमानपुर के पार्श्व जिनालय में (जोकि नन्न राजा वसति के नाम से प्रसिद्ध था) किया और समापन दोस्तटिका के शांतिनाथ मंदिर में किया। जिनसेन ने वर्द्धमानपुर को **कल्याणैः परिवर्द्धमान विपुलश्री...** लिखा है। कल्याण शब्द का संस्कृत कोशों में एक नाम सुवर्ण भी है। अतः

हरिवंशपुराण में भी समाज के बहुत धनसम्पन्न वैभव से युक्त विवरण प्राप्त होता है। लेखक स्वयं पुन्नाट संघ के थे। वामन शिवराम आप्टे ने 'पुन्नाट' का अर्थ ''कर्नाटक देश'' दिया है।[1] अतः ग्रन्थ में वर्णित वस्तु पर कर्नाटक के स्थान का प्रभाव भी दिखाई पढ़ता है। हरिवंशपुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन, महापुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन से प्रथक् है दोनों की गुरू परम्परा अलग–अलग है। आदिपुराण में कथा विस्तार से वर्णित है जबकि हरिवंशपुराण में कथा के सौंदर्य की हानि हुई है, इसमें संगीत का वर्णन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से अनुप्राणित है। इस ग्रन्थ पर कालिदास के ग्रन्थों का प्रभाव भी लक्षित होता है। हरिवंशपुराण में वर्णित प्राचीन भारतीय मनोरंजन के साधनों को गवेषित करके निम्न प्रारूपों में विभक्त किया गया है।

1. **शारीरिक मनोरंजन**
2. **मानसिक मनोरंजन**
3. **सामाजिक मनोरंजन**
4. **राजनैतिक मनोरंजन**
5. **आर्थिक मनोरंजन**
6. **धार्मिक मनोरंजन**

1. **शारीरिक मनोरंजन :**

शरीर के माध्यम से ही भोगों की साधना होती है। अतः मनोरंजन में भी तन की दशा का श्रेष्ठ होना सर्वोपरि है। यहाँ मल्ल क्रीड़ा, जल क्रीड़ा, दौड़ प्रतियोगिता, स्नान, पशु–पक्षी क्रीड़ा का वर्णन किया जाना प्रासंगिक है।

दौड़ प्रतियोगिता : हरिवंशपुराण में इसके लिए गतियुद्ध शब्द आया है। प्राचीन भारतीय समाज में वैदिक काल से दौड़ प्रतियोगिता का आयोजन न केवल समस्याओं के समाधान हेतु किया जाता था वरन् इसके माध्यम से अन्य लोगों का मनोरंजन भी होता था। दौड़ प्रतियोगिता द्वारा वर के निर्धारण में सहायता मिलती थी। हरिवंशपुराण में वर्णित है कि राजा अरिंजय की पुत्री प्रीतिमती ने प्रण लिया था कि जो भी वीर उसे दौड़ने में नीचा दिखाएगा वहीं उसका पति

होगा, अन्यथा नहीं। पिता अरिंजय ने कन्या के प्रण को मानते हुए सभी राजाओं को आमंत्रित किया तथा गतियुद्ध की शर्त बताते हुए कहा कि घर और कन्या जो भी मेरूपर्वत की प्रदक्षिणा देकर तथा श्रीजिनेन्द्र देव की पूजा कर सबसे पहले वापस जा जाएगें उसी एक की जीत समझी जावेगी। अतः एक भव्य समारोह के साथ दौड़ प्रतियोगिता शुरू हुई, चिंतागति, मनोगति और चपलगति, गतियुद्ध करने के लिए तैयार हुए। इस समय सभी प्रतियोगी अपना वस्त्र बांधकर तैयार होते थे। वस्त्र के साथ–साथ मन भी मजबूत कर लेते थे। लोग हाथ हिलाते हुए प्रतियोगियों का उत्साह बड़ाते थे। वे चारों व्यक्ति अपने वेग से वायु के वेग को रोकते हुए, मेरू को लक्ष्य कर आकाश में दौड़े और आधे मार्ग तक तो साथ–साथ दौड़ते रहे परन्तु उसके बाद कन्या ने उन्हें पीछे छोड़ दिया और वह मेरू पर्वत की प्रदक्षिणा देकर तथा भद्रशालवन में विद्यमान जिन प्रतिमाओं की पूजा कर पहले वापस लौट आई। पुत्री को विजयी देखकर पिता हर्षित हो जाते है।[2]

मल्लयुद्ध एवं मुष्टियुद्ध : प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में मल्लयुद्ध का प्रमुख स्थान था हरिवंश पुराण में मुष्ठियुद्ध का भी वर्णन प्राप्त होता है। मुष्ठियुद्ध मनोरंजन का साधन ही नहीं होता था बल्कि युद्ध क्षेत्र में इसका उपयोग शत्रु के विरूद्ध किया जाता था। वर्णित है कि कुमार वसुदेव ने शत्रु पर मुष्ठियों से इतना दृढ़ प्रहार किया कि उसके बस प्राण ही शेष रहने दिए।[3] एक अन्य संदर्भ में वसुदेव मुट्ठियों के प्रबल प्रहार से दानवाकार मनुष्य को प्राणरहित कर देते है, यह देखकर सम्पूर्ण नगरवासी लोग हर्षोल्लास से वसुदेव का सम्मान करते है।[4] राजकीय मल्लों की भी नियुक्ति की जाती थी जो राजकीय आदेशानुसार कार्य करते थे।वर्णित है कि दूसरों का धन हरण करने वालों को मल्ल मुक्कों से मारते थे। हरिवंशपुराण में कंस का अपनी राजधानी मथुरा में कुश्ती के आयोजन का विस्तृत विवरण मिलता है। इसमें अनेक पहलवानों के साथ–साथ बलराम और कृष्ण को भी आमंत्रित किया गया था। वास्तव में कंस ने कृष्ण को मारने के लिए मल्लयुद्ध का निश्चय किया था। कंस

ने मल्लयुद्ध के लिए शीध्र ही अत्यन्त बलवान छोटे–बड़े और मध्यम श्रेणी के मल्लों को अपने पास बुला लिया था।[6] कंस ने रंगभूमि की खुब सजावट करायी थी। कमल की कलिकाओं से तोरण द्वार सजाए गये थे। राजाओं तथा नगरवासियों के बैठने के लिए दीर्घाए नियत कर गोलाकार स्थान बनाए गये थे। थोड़ी देर में बलभद्र और कृष्ण रंगभूमि में प्रविष्ट हुए। इस समय कृष्ण और बलभद्र जिनकी रंगभूमि में अपने चरणों और भुजदण्डों के संकोच और विस्तार से शोभा बढ़ रही थी, दृष्टि रमणीय थी, क्रीड़ापूर्वक उछलकर तथा तालठोककर चेष्टाएँ कर रहे थे। तदनन्तर कंस की आज्ञा से समस्त मल्ल उछलकूद एवं ताल के शब्दो से जंगली भैंसाओं के समान अहंकारी हो कर मल्लयुद्ध करने लगे। इस प्रकार जब साधारण मल्लों का युद्ध समाप्त हो गया तब कृष्ण और चाणूर, मल्ल, स्थिर चरण रख एवं तीखे नखो से कठोर मुट्ठियाँ बांधकर मुष्ठियुद्ध करने लगे। कंस ने मुष्टिक मल्ल को संकेत किया था कि वह श्रीकृष्ण पर पीछे से प्रहार करे। जैसे ही मुष्टिक मल्ल ने श्रीकृष्ण पर प्रहार करना चाहा उसी समय बलभद्र ने उसके जबड़े और सिर में जोर से मुक्का लगाकर उसे प्राणरहित कर दिया। श्रीकृष्ण और चाणूर मल्ल की कुश्ती देखने योग्य थी। सारे दर्शक एकटक दोनों की कुश्ती देख रहे थे। वास्तव में चाणुर मल्ल कृष्ण के शरीर से दुगुना था। अन्त में कृष्ण ने उसे सीने से लगाकर भुजाओं के द्वारा इतनी जोर से दबाया कि उसके प्राण निकल गए।[7] हरिवंशपुराण में बलभद्र और कृष्ण को मल्ल विद्या के निर्दोष ज्ञाता कहा गया है।[8] मल्लयुद्ध के समय तालों की फटाटोप की जाती थी, नाना प्रकार के पैतरें बदले जाते थे। मल्लों की पदाघात से धरती भी कांप उठती थी तथा यह दृश्य देखकर दर्शकों का चित्त आनंदित होता था भरत और बाहुवली के मध्य मल्लयुद्ध में बाहुबली भरत को अपनी भुजा से पकड़कर ऊपर उठा लेते है यह दृश्य देखकर देवों के समूह, विद्याधर, भूमिगोचरी मनुष्यों ने अहो! वीर्यम् – आश्चर्यकारी शक्ति हो, अहो! धैयम् –आश्चर्यकारी धैर्य है इस प्रकार साधु–साधु कहकर आनन्द प्रकट किया।[9] मल्लयुद्ध राजाओं के बीच अत्यधिक बलवान होने की भी परीक्षा करता था। बलवानों की गणना छिड़ने पर नेमिनाथ को अत्यन्त बलवान कहा गया तो

श्रीकृष्ण ने कहा कि यदि आपके शरीर का ऐसा उत्कृष्ट बल है तो मल्लयुद्ध के माध्यम से उसकी परीक्षा की जाए।[10]हरिवंशपुराण से रंगभूमि की सजावट, अखाड़ा, दर्शको के बैठने का स्थान, मल्लयुद्ध आदि का ज्ञान होता है। वास्तव में यह क्रीड़ा मनोरंजन तो करती ही थी तथा इससे युद्धाभ्यास ही होता था।

जल क्रीड़ा[11] : प्राचीन भारत के विभिन्न मनोरंजन के साधनों में जलक्रीड़ा का प्रमुख स्थान है जलक्रीड़ा में स्त्री पुरूष सभी लोग समान रूप से भाग लेते थे। वास्तव में जलक्रीड़ा का आनन्द ग्रीष्म ऋतु में लिया जाता था। हरिवंश पुराण में वर्णित है कि श्रीकृष्ण अपनी स्त्रियाँ और नेमिनाथ के साथ रैवतक पर्वत (गिरनार पर्वत) पर ग्रीष्म ऋतु में निवास करने लगे जो कि ठण्डे–ठण्डे जलकणों से युक्त निर्झरों से मनोहर था। यद्यपि नेमिनाथ स्वभाव से ही रागरूपी पराग से परांग मुख थे फिर भी श्रीकृष्ण की स्त्रियाँ के उपरोध से वे शीतल जल से भरे हुए जलाशय में जल क्रीड़ा करने लगे। स्त्रियाँ जलक्रीड़ा के समय कभी तैरती, कभी–कभी लम्बी–लम्बी,डुबकियाँ लगाती थी, कभी हाथ में पिचकारियाँ लेकर हर्षपूर्वक एक दुसरे के मुखकमल पर पानी उछालती थी। नेमिनाथ स्त्रियों के ऊपर तथा स्त्रियाँ नेमिनाथ के ऊपर जल उछालने की क्रीड़ा करते थे। नेमिनाथ की जलक्रीड़ा मनुष्यों को राग प्रीति उत्पन्न करने वाली प्रतीत हो रही थी। जलक्रीड़ा करते समय सुन्दरियों के सुगन्धित शरीर का स्पर्श पाकर जल भी सुगंधित हो जाता था तथा नाना प्रकार के विलेपनों से विभिन्न वर्णो का हो गया था। जलक्रीड़ा से उस समय स्त्रियों के कर्णाभरण गिर गए थे, तिलक मिट गये थे, आकुलता बह गयी थी, दृष्टि चंचल हो गई थी, ओठ धूसरित हो गये थे, मेखला ढीली हो गयी थी और केश खुल गये थे, इस प्रकार उस जल में तरूण स्त्रियों का समूह अपने हाथ चलाकर चिरकाल तक तैरता रहा।[12]

श्रीकृष्ण और बलभद्र की जलक्रीड़ा भी महामच्छों की लीला धारण करती थी।[13] पुरानी खार या बदला लेने के अभिप्राय से भी जलक्रीड़ा का बहाना बनाया जाता था। कालसंवर की आज्ञा पाकर उसके पांच सौ पुत्र प्रद्युम्न को

मार डालने के उद्देश्य से कालाम्बू नामक वापिका पर जाते है तथा उसे मारने की इच्छा से वापी में जलक्रीड़ा के लिए प्रेरित करते है।[14]

बाह्याली क्रीड़ा : बाह्याली क्रीड़ा में विनोदार्थ घोड़े, हाथी आदि जानवरों की दौड़ क्रीड़ा एवं युद्ध आदि होता था। राजा के साथ अन्तःपुर की रानियों, सामंत, राजकुमार, मंत्रीगण, उच्च अधिकारी सम्भ्रान्त नागरिक एवं विशिष्ट अतिथि आदि इसके अवलोकनार्थ क्रीड़ा स्थल पर उपस्थित होते थे।[15] हरिवंशपुराण में वसुदेव के **हस्तिक्रीड़ा[16] व मेषयुद्ध[17]** द्वारा मनोरंजन के उदाहरण मिलते है मन्मथ राय के अनुसार यह खेल आधुनिक पोलो है।[18]

शारीरिक मनोरंजन के उक्त साधनों के अतिरिक्त हरिवंशपुराण में स्नान का वर्णन भी मिलता है स्नान करने से पवित्रता आती है। ऐसा हरिवंशपुराण से विदित होता है।[19] स्नान की परिपाटी राज परिवार से लेकर सामान्य वर्ग में भी प्रचलित थी राजा सोमप्रभ एवं श्रेयांस स्नान करके ही भोजन का आनंद लेते थे।[20] हरिवंशपुराण से स्नान की विधियों का वर्णन प्राप्त नहीं होता। यत्र–तत्र विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि स्नान इस युग में निश्चय ही मनोरंजन का साधन रहा होगा।

व्यायाम की परिपाटी भी प्रचलित थी वर्णित है कि बाह्यालादि क्रीड़ा के समय घोड़े को व्यायाम कराया जाता था।[21] बलभद्र और कृष्ण को आसन लगाने में चतुर घोषित किया गया है।[22] मल्ल विद्या के इतने प्रचलन से यह तथ्य निष्कर्षित होता है कि शारीरिक सौष्ठव के लिए व्यायाम दिनचर्या में शामिल होता होगा।

1. **मानसिक मनोरंजन :**

मनोरंजन के विविध साधनों में मानसिक मनोरंजन का प्रमुख स्थान है, हरिवंशपुराण में मनोरंजनात्मक दृष्टि से चित्रकला, द्यूतक्रीड़ा, कथा गोष्ठी, जल, पासा, शतरंज इत्यादि का विवरण मिलता है। मनोरंजन के इन साधनों का

अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि इनके द्वारा मनोरंजन के साथ–साथ मानसिक शक्तियों का यथेष्ट विकास होता है।

द्यूत क्रीड़ा : प्राचीन भारतीय समाज के मनोरंजन के अनेक साधनों में द्यूतक्रीड़ा का महत्वपूर्ण स्थान था। यह राजघरानों के साथ–साथ साधारण परिवारों में भी समान रूप से प्रचलित थी। हरिवंशपुराण में द्यूत को व्यसन बताते हुए इसकी निंदा की गई है[23] वर्णित है कि क्रोधज (मद्य, मांस, शिकार), कामज (जुआ, चोरी, वेश्या एवं परस्त्रीगमन) इन सात व्यसनों में द्यूत सदृश, निकृष्ट अन्य कोई व्यसन नहीं है।[24] द्यूत त्याग के नियम को श्रेष्ठ बताया गया है।[25] हरिवंशपुराण के अनुसार एक बार शकुनि के उपदेश से दुर्योधन ने युधिष्ठिर को शीघ्र ही जुआ में जीत लिया तथा अपने पास का सब कुछ युधिष्ठिर ने दाँव पर लगा दिया। हारे हुए युधिष्ठिर को प्रतिज्ञानुसार हस्तिनापुर से बाहर जाना पड़ा।[26]

वास्तव में तो यह एक छल था क्योंकि कौरवों के सौ पुत्र दो पासे फैंकते थे अर्थात दो पासों से खेलते थे, वे दो पासे अच्छी तरह पढ़ाये गये थे। उस समय भीम के हुंकार नाद से वे पासे गलत भी पढ़ जाते थे तो कौरवों ने भीम को द्युतगृह से बाहर का रास्ता दिखा दिया था फिर छल से दुर्योधन युधिष्ठिर को जीत लेते है, इस समय धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं को छोड़ सब हार जाते है। केयुर, कुण्डल, तेजस्वी हार, सुवर्ण के कंकण, धन, धान्य रत्न और मुकुट, सम्पूर्ण देश, घोड़े, हाथी, रथ, पैदल, सर्व पवित्र पात्र और सुखदायक धनकोष सब हार जाते है। सब हारकर भी धर्मराज युधिष्ठिर जुआ खेलना बंद नहीं करते है अन्त में वे अपनी स्व स्त्रियाँ और भाई भी दांव पर लगा रहे होते है लेकिन भीम आकर रोक देता है।[27]

जैन पुराणों में जुआरियों के विषय में कथित है कि वह क्रमशः सत्य लज्जा, अभिमान, कुल, सुख, प्रसन्नता, बन्धुवर्ग, धर्म, द्रव्य, क्षेत्र, घर, यश, माता–पिता, बाल–बच्चे, स्त्री और स्वतः को हारता है।[28] भीम भी युधिष्ठिर को समझाते है कि द्यूत के खेलने से लोकोपवाद प्राप्त होता है जिससे सम्पूर्ण यश नष्ट होता है, धन हानि, अनर्थ होता है। जैसे मद्य पीने वालों का सदा त्याग

करना चाहिए भीष्म के उस भाषण से क्षुब्ध होकर धर्मराज युधिष्ठिर बारह वर्ष तक पृथ्वी को हारकर खेलना बंद कर देते है।[29] ली गई प्रतिज्ञानुसार युधिष्ठिर भाई–बंधु व द्रौपदी समेत हस्तिनापुर छोड़ देते है। द्युत क्रीड़ा पासा की सहायता से खेली जाती थी। इसे अक्षक्रीड़ा भी कहा जाता था।[30] खेलते समय बहुत से पासों का उपयोग किया जाता था[31] द्युतक्रीड़ा में स्त्रियाँ भी भाग लेकर मनोविनोद करती थी। संभ्रान्त महिलाओं के जुआ खेलने के उदाहरण नहीं मिलते वरन् वेश्या वर्ग की स्त्रियाँ ही जुआ खेलकर ग्राहक को फँसाया करती थी। वर्णित है कि कलिंगसेना वेश्या व रूद्रदत्त के जुए में कलिंगसेना रूद्रदत्त का दुपट्टा तक जीत लेती है।[32] चारूदत्त भी अपनी पिता की सोलह करोड़ दीनार की सम्पत्ति हार जाता है और जुए में उसकी आसक्ति के कारण वेश्या के घर बारह वर्ष रहकर माता–पिता तथा पत्नी मित्रवती को भुला देता है।[33] जुए में जीते हुए धन को दान में देने का वृतांत भी मिलता है। कुमार वसुदेव राजगृह नगरी में जुए में एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ जीत लेता है तब दानशील बनकर वसुदेव वे सब मुद्राएँ बाँट देता है[34] इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है मनोरंजन के प्रयोजन से खेले गये जुए में धन का भी प्रेम फीका पड़ जाता है, वास्तविक आसक्ति तो द्युत क्रीड़ा के आनंद में ही मिलती थी। द्यूत क्रीड़ा के माध्यम से सच्चाई का पता भी लगाया जाता था। हरिवंशपुराण में वर्णित है कि सुमित्रदत्त वणिक अपने रत्न श्रीभूति पुरोहित के पास धरोहर रखकर जहाज पर चला गया था। वापस लौटने पर रत्न मांगने पर श्रीभूति पुरोहित ने मना कर दिया। राजा सिंहसेना व रानी रामदत्ता ने उसकी प्रार्थना सुनी व राजा ने श्रीभूति पुरोहित के साथ जुआ खेलने के छल से परीक्षा ली। जुआ में जीता गया जनेऊ लेजाकर रानी रामदत्ता की धाय ने पुरोहित की पत्नी को दिखाई पर उसने वो रत्न नहीं दिए फिर जुए में जीती हुई पुरोहित की अंगुठी उसकी पत्नी को दिखाई तो उसने वह रत्न दे दिये इस तरह जुए के खेल के माध्यम से राजा ने सत्य व झूठ का पर्दाफाश किया।[35] द्यूत समृद्ध समुदाय का लोकप्रिय विनोद था। शम्ब जुआ खेलने में चतुर था उसने सुभानु का सारा धन जीत लिया था।[36] द्यूतक्रीड़ा के प्रति अत्यधिक आसक्ति के कारण लोग अपना धन

नष्ट कर देते थे और पाप कर्मों में लिप्त रहते थे। ब्राह्मण रूद्रदत्त जुआ में पड़कर धन नष्ट कर देता है। फिर चोरी कर पकड़ा जाता है[37] उक्त अवगुणों के बाद भी जुआ मनोविनोद का अच्छा साधन था जिसमें कि अनेक दुर्व्यसन थे और इनका प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र पर पड़ा।

चित्रकला : चित्रकला का प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन के साधनों में विशेष रूप से प्रचलन था। यह पुरूषों के अतिरिक्त स्त्रियाँ के क्रीड़ा एवं मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन था। हरिवंशपुराण कालीन भारत में चित्रकला इतनी लोकप्रिय थी कि इसका चित्रविज्ञान के रूप में विवरण मिलता है।[38] गुफाओं, देवालयों, चैत्यों आदि की दिवारों पर विभिन्न प्रकार की चित्रकारी की जाती थी। युवक व युवती एक दूसरे के चित्रपट देखकर मोहित हो जाया करते थे हरिवंशपुराण में नारद द्वारा कृष्ण को रूक्मिणी का चित्रपट दिखाकर मोहित करने का उल्लेख है नारद रूक्मिणी का अत्यन्त सुन्दर विभ्रम उत्पन्न करने वाला चित्र चित्रपट पर अंकित कर श्रीकृष्ण के मन में उसके लिए प्रेम जाग्रत करते है। चित्रपट इतने सजीव बनाए जाते थे कि वे चित्र में विभ्रम उत्पन्न कर देते थे।[39] पशु पक्षी के अति सजीव व सुन्दर चित्रों का अंकन ध्वजों में किया जाता था। हरिवंशपुराण में मंदिरों, प्रासादों, सैन्य टुकडियों आदि पर विविध प्रकार के ध्वजों की आकृति का उल्लेख किया गया है – मयूर, हंस, गरूड़, माला, सिंह, हाथी, मकर, कमल, बैल और चक्र के चिन्ह से चिन्हित ध्वज मंदिर और प्रासादों पर फहराये जाते थे, मयूर चिन्हाकित ध्वज में लीलापूर्वक नृत्य करते हुए मयूरों की आकृतियाँ अंकित की जाती थी।[40] नृत्य करते हुए मयूर भ्रमवश वस्त्रों को सर्प समझकर निगलते का प्रयास करते हुए भी प्रदर्शित किए जाते थे। इस श्रेणी के ध्वजों में मयूर पिच्छ की हरित, नील, रक्त, श्वेत आदि विविधप्रकार के रंगो द्वारा आकृति चित्रित की जाती थी। मयूर की नृत्य मुद्रा भी अंकित करती थी। वस्त्र को कांचली युक्त सर्प समझ कर उसे भक्षण करने की मुद्रा में भी मयूर की आकृति चित्रित की जाती थी। हंस के अति सजीव व सुन्दर चित्र भी हंस ध्वज में अंकित किए जाते थे। मांगलिक कार्यों में भी चित्रों

से सुन्दरता बढ़ती थी।[41] पेड़ पौधो में कदली वृक्ष की आकृति चित्रित की जाती थी[42] एवं ध्वजों के ऊपर कलश का चित्रण मांगलिक दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता था।[43]

राजा महाराजा भी राजदरबार में चित्रकारों की नियुक्ति करते थे। भरत चक्रवर्ती के यहाँ 99 हजार चित्रकारों का उल्लेख किया गया है[44] ये चित्रकार चित्र गोष्ठी के द्वारा मनोरंजन करते थे। इसके अन्तर्गत विविध प्रकार के चित्र बनाते थे। कुछ प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन जैसे सरिता, उपवन, वाटिका, वृक्ष, लता आदि का अंकन चित्र में करते थे। कुछ पशु पक्षियों की आकृति का अंकन करते थे, कुछ श्रमिकों के श्रम का, कुछ गतिशील वस्तुओं की गति का चित्र में रेखांकन करते थे, कुछ आराध्य देवी देवताओं के चित्रों का, कुछ कल्पित आकृतियों, भावनाओं आदि का वर्णन चित्र में करते थे। इस प्रकार चित्र गोष्ठी में चित्रों की विशिष्ट व्याख्यायें प्रस्तुत की जाती थी। जिसको देखकर समझकर लोग भिन्न–भिन्न रसों की अभिव्यक्ति करते थे। हरिवंशपुराण में केशर के रस से बेलबूटे बनाने का भी विवरण मिलता है।[45] जो तत्कालीन युग के वैभव को इंगित करता है।

कथा एवं गोष्ठी : आधुनिक काल में तो मन–बहलाव के अनेक साधन है, परन्तु प्राचीन काल में तो आधुनिक काल की तरह चित्र मन्दिर या उपन्यास आदि नहीं थे। अतः कथा, गोष्ठी, आख्यानों के माध्यम से लोग मनोरंजन करते थे।

हरिवंशपुराण में **राज कथा[46], युद्ध कथा[47], वासुदेव कथा, उत्तम कथा[48]** इत्यादि कथाओं का उल्लेख मिलता है। हरिवंशपुराण में कथाओं के चार भेद किए गए है[49] इनके माध्यम से लोग आनन्द की अनुभूति करते थे।

वसुदेव अपनी कथा सुनाकर समस्त द्वारिका वासियों का मनोरंजन करते है।[50] कथा के प्रारम्भ में आनन्द भेरी बजवाई जाती थी इसको सुनकर सभासद् लोग, वृद्ध पुरूष, स्त्री, युवा, बालक, समस्त यदुवंशी, अन्तःपुर की रानियाँ, सेविकाएँ, पाण्डव तथा द्वारिका के अन्य लोग, कथा सुनने के लिए इकट्ठे हो गए थे तदनन्तर वसुदेव सबसे पहले लोकालोक के विभाग का वर्णन करते है।

हरिवंश की परम्परा का निरूपण, क्रीड़ाओं का कथन, लोगों की विपरीत चेष्टाओं का कथन, प्रद्यम्न तथा शम्ब की उत्पत्ति इत्यादि घटित वृत्तांत सबको सुनाते थे, इन कथारूपी रस का पान कर सभी लोग आश्चर्य को प्राप्त हो गए थे। कथा श्रवण के पश्चात सभी लोग कथा की मधुर स्मृतियाँ मन में लेकर अपने–अपने स्थानों पर पहुंच जाते है।

कथागोष्ठी के माध्यम से भी मन बहलाया जाता था। शास्त्रार्थ प्रतियोगिता का आयोजन भी किया जाता था वर्णित है कि सुलभा ने यह प्रतिज्ञा ली थी कि जो भी मुझे शास्त्रार्थ में जीतेगा में उसी की सेविका बन जाऊँगी तब शास्त्रार्थ शुरू होने पर सुलसा ने न्यायविधा के जानकार विज्ञानों के आगे पूर्व पक्ष रखा परन्तु याज्ञवल्क्य ने उसे दूषित कर अपना पक्ष स्थापित कर दिया। सुलसा शास्त्रार्थ में हार गयी इसलिए उसने याज्ञवल्क्य को अपना पति बना लिया।[51] वसुदेव और सोमश्री के समय में भी वेदों में जीतकर वरण करने की प्रतियोगिता हुई थी।[52]

गोष्ठी : गोष्ठी के द्वारा भी मनोरंजन किया जाता था हरिवंशपुराण में विविध स्थलों पर गोष्ठी का वर्णन मिलता है। चारूदत्त विविध गोष्ठियों में सुख स्वाद प्राप्त करता था।[53] हरिवंशपुराण में कथा गोष्ठी के माध्यम से नीति व धर्म की शिक्षा दी जाती थी। ग्रन्थ में वर्णित विभिन्न अवान्तर कथाओं से ज्ञात होता है कि कथाओं का महत्त्व इस दृष्टि से अधिक था कि वक्ता और श्रोता दोनों ही कथारस के साथ–साथ संगीत रस का भी पान करते थे। कथा गोष्ठी के अन्तर्गत ही जल्पगोष्ठी का आयोजन भी होता था जिसमें लतीफे सुनाकर, कथित कथाओं के द्वारा मनोरंजन की प्राप्ति की जाती थी।

काव्य पद एवं विद्या संवाद गोष्ठियों के माध्यम से साहित्य की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इनमें काव्य, व्याकरण और वेद आदि के विषय में शास्त्रार्थ होता था सोमश्री को वसुदेव ने[54] और सुलसा को याज्ञवल्क्य ने[55] इसी प्रकार की गोष्ठियों में पराजित किया था यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गोष्ठी में स्त्री–पुरूष दोनों भाग लेकर समान रूप से मनोरंजन किया करते थे।

संगीत, प्रेक्षण और कलागोष्ठी भी मनोविनोद का साधन थी। बसन्तसेना सूचीनृत्य, गौ, मक्षिका नृत्य, माला राग, नापित राग, गोपाल राग का प्रदर्शन कर चारूदत्त को संगीत गोष्ठी में अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है।[56]संगीत गोष्ठी के द्वारा ऋषि मुनि का चित्त भी अनुरंजित हो जाता था। हरिवंश पुराण में वर्णित है कि कामपताका वेश्या ने नृत्य एवं गीत के द्वारा कौशिक ऋषि को अपनी सुंदरता की और मोहित कर लिया।[57] गोष्ठियों के माध्यम से अपनी कला का प्रदर्शन भी किया जाता था। गंधर्वसेना के यहां संगीतगोष्ठी में आए हुए विभिन्न विद्वानों के समक्ष वसुदेव ने सत्रह तारों वाली वीणा के द्वारा सर्वश्रेष्ठ राग बजाकर सबको चकित कर दिया था एवं पुरस्कार स्वरूप गंधर्वसेना को प्राप्त किया था।[58]

चित्रगोष्ठी के द्वारा भी लोग अपने मन के भावों को प्रदर्शित कर मन बहलाते थे। चित्रकार चित्र गोष्ठी के अन्तर्गत प्राकृतिक दृश्यों जैसे सरिता, उपवन, वाटिका, वृक्ष, लता आदि का अंकन करते है।[59] इस प्रकार विविध कला गोष्ठियों द्वारा जिज्ञासुओं को प्रायोगिक व प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता था। विद्वानों की गोष्ठी में कथा रूपी अमृत से लोग संतुष्ट हो जाया करते थे वे इतना तल्लीन हो जाते थे कि भूख–प्यास की इच्छा भी खत्म हो जाती थी।[60] हरिवंशपुराण में उल्लिखित है कि पृथ्वी पर सर्वत्र नाना प्रकार के दिव्य एवं चित्ताकर्षक नृत्य, संगीत एवं वादित्र आदि के द्वारा मनुष्य अपना मनोरंजन करता था।[61] प्राचीन काल से ही मानसिक विकास एवं मनोरंजनार्थ साहित्यिक एवं कलात्मक गोष्ठी या परिषद् का आयोजन विविध प्रकार के विद्वानों एवं कलाकारों द्वारा किया जाता था।उक्त गोष्ठियाँ मनोरंजनात्मक होने के साथ–साथ सांस्कृतिक दृष्टि से अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती थी।

रासक्रीड़ा : बालक बालिकाओं के वासना रहित क्रीड़ा को रासक्रीड़ा कहा गया है।[62] श्रीकृष्ण निर्विकार भाव से यौवन के खुमार से भरी हुई एवं प्रस्फुटित स्तनों वाली गोपिकाओं के साथ उत्तम रासक्रीड़ा करते थे। वे रास क्रीड़ाओं के समय गोप बालाओं के लिए अपने हाथ की अंगुलियों के स्पर्श से होने वाला सुख

उत्पन्न करते थे, परन्तु स्वयं अत्यंत निर्विकार रहते थे। जिस प्रकार उत्तम अंगुठी में जड़ा हुआ श्रेष्ठ मणि स्त्री के हाथ की अंगुली का स्पर्श करता हुआ भी निर्विकार रहता है, उसी प्रकार महानुभाव कृष्ण भी गोप बालाओं के अंगो का स्पर्श करते हुए भी निर्लिप्त रहते थे। उनके अभाव में लोगों को विरहजन्य संताप भी होता था।

सामाजिक मनोरंजन : मानव अतीत से ही अपने व्यस्ततम जीवन को सुखमय एवं आनंदप्रिय बनाने के लिए प्रयत्नशील रहा है। हरिवंशपुराण कालीन समाज अति समृद्ध एवं विनोदप्रिय रहा है। अतः इस समाज में प्रचलित मनोरंजन की कतिपय प्रथाओं एवं परम्पराओं का विवेचन निम्न है –

संगीत : प्राचीन काल से संगीत का मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। संगीत के माध्यम से मानव जीवन में रस, उत्साह, उमंग एवं कार्य उत्प्रेरित क्षमताओं की वृद्धि हुई है। संगीत के माध्यम से मनुष्य अपने सुख–दुख के भावों को भी प्रकट करता है जिससे उसको एक प्रकार की मानसिक शान्ति उपलब्ध होती है एवं उसका मनोरंजन भी होता है।

हरिवंशपुराण में वर्णित है कि नृत्य, गीत, वादित्र द्वारा मनुष्य अपना मनोरंजन कर स्फूर्ति का अनुभव करता है।[63] जैन सूत्रों में संगीत को बहत्तर कलाओं में स्थान प्राप्त है। जैन ग्रन्थों के अनुसार संगीत में गीत, संगीत, नृत्य का समावेश हुआ है।[64] हरिवंशपुराण में देवताओं के नाम से सम्बद्ध कर संगीत को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से इसे धर्म से सम्बंधित कर दिया गया था।इसलिए ग्रन्थ में संगीत के देवता के रूप में रूप किन्नर, गन्धर्व, तुम्बरू, नारद तथा विश्वावसु को मान्यता प्राप्त थी।[65] समाज में संगीत के अत्यधिक प्रचार–प्रसार के कारण ही यह मनोरंजन का प्रधान अंग बन चुका था। हरिवंश पुराण में गांर्धव शब्द का कई स्थलों पर वर्णित है, गांधर्व से तात्पर्य संगीत से ही है।[66] गान्धर्व की उत्पत्ति में वीणा, वंश और गान ये तीन कारण है। गान्धर्व के तीन भेद स्वरगत, तालगत और पदगत उपलब्ध होता है।[67] हरिवंश पुराण में

संगीत शास्त्र के अनेक पारिभाषिक शब्द जैसे स्वर, मुर्च्छना, तान, जाति, ग्राम आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।

जाति और स्वरों का सुन्दर समन्वय हरिवंश पुराण में जो उपलब्ध है, वह अपने ढंग का उदात्त दृष्टान्त है।[68] हरिवंश पुराण में वर्णित है कि विजयखेट नामक नगर में क्षत्रिय वंशी सुग्रीव नाम का एक गंधर्वाचार्य रहता था। वह गन्धर्वाचार्य संगीत विद्या के इच्छुक मनुष्यों पर बड़ा उपकार करता था। उसकी दो बेटियाँ गंधर्व कला में दक्षता प्राप्त थी अतः सुग्रीव ने शर्त रखी जो गंधर्व विद्या में इन दोनों को जीतेगा वहीं कन्या का पति होगा। वसुदेव ने उनको पराजित कर अपनाया था।[69] इस प्रसंग में यह दृष्टव्य है कि उस समय समाज में गन्धर्व शास्त्र का विशेष प्रचलन तथा लोकप्रियता थी जो विवाह जैसे महत्वपूर्ण निर्णयों को भी प्रभावित करती थी। इसी ग्रन्थ में चारूदत्त के कथा–प्रसंग में कहा गया है कि एक दिन चम्पापुरी में नगर शोभा बसंतसेना का नृत्य हो रहा था। इस आयोजन में नगर के बड़े–बड़े कलाकार और गंधर्व लोग उपस्थित थे। इतने में अपने काका रूद्रदत्त के साथ चारूदत्त उधर से निकला। नृत्य मण्डप में भीड़–भाड़ देखकर वे भी जाकर बैठ गये। उस समय बसन्तसेना सूची नाटक दिखाने वाली थी। पहले उसने मंच पर जाति पुष्पों की कलियाँ बिखेर दी और गायन के प्रभाव से वे धीरे–धीरे खिलने लगी यह देखकर दर्शक लोग मुक्त कण्ठ से नर्तकी की सराहना करने लगे। चारूदत्त ने प्रारम्भ में ही इशारे से कह दिया था कि वह मालाकार[70] राग गा रही है। तब वेश्या अंगूठे का अभिनय दिखाने लगी। दर्शको ने फिर शाबासी दी, चारूदत्त ने फिर कह दिया कि वह नापित राग अलाप[71] रहा है। तदनन्तर उसने गौ और मक्षिका की कुक्षिका का अभिनय किया तो अन्य लोग उसकी प्रशंसा करने लगे उसी समय चारूदत्त ने गोपाल राग[72] का संकेत कर दिया। बसन्तसेना संगीतशास्त्र में चारूदत्त की प्रवीणता देखकर उस पर लट्टू हो जाती है। वास्तव में संगीत मनोविनोद का श्रेष्ठ साधन था। इसी तरह वसुदेव शिवादेवी के महलों में भी संगीत आदि विनोदों से क्रीड़ा करते रहते थे।[73] वास्तव में संगीत मनोविनोद का श्रेष्ठ साधन था। गीत क्रोध अवस्था को शांत भी करते थे। हरिवंशपुराण में

वर्णित है कि विष्णु कुमार मुनि बलि को सबक सिखाते है उस समय उन्हें शांत करने के लिए गन्धर्वदेव अपनी–अपनी स्त्रियों के साथ मनोहर गीत गाते हैं, है विष्णो! है प्रभो! मन के क्षोभ को दूर करो, दूर करो, आपके तप के प्रभाव से आज तीनों लोक चल–विचल हो उठे है, इस प्रकार के मधुर गीतों द्वारा वे मुनिराज को शांत करते थे।[74]

मधुर गीतों द्वारा देवियाँ गर्भावस्था के समय माता मरूदेवी का मनोरंजन करती थी।[75] भगवान ऋषभदेव के जन्म के समय किन्नर, गन्धर्व, तुम्बरू, नारद तथा विश्वावसु जाति के समस्त देव अपनी–अपनी स्त्रियों के साथ कर्ण प्रिय एवं मन को हरने वाले विभिन्न तरह के गाने गा रहे थे।[76] दोला क्रीड़ा करते समय भी गीतों द्वारा मनोरंजन होता था। झूला झूलते समय स्त्री पुरूष हिंदोल राग में गाना गाते थे।[77] लोकगीतों के द्वारा भी मनोरंजन होता था। गोपालकों के मधुर गीतों से गोशालाओं में मस्ती छा जाती थी।[78]

नेमिनाथ के मंगल विहार के समय आकाश में किन्नरियोँ को मनोहर गान, झुमते हुए गन्धर्व, मंगलमय स्तोत्रों से स्तुति इत्यादि प्रसंग मनुष्य के चित्त को हरने वाले थे। नांदी ध्वनि (भगवत स्तुति की ध्वनि) गम्भीरता से हो रही थी।[79] तत्कालीन समाज में संगीत को संगीत विज्ञान के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त थी। इसी कारण मनोरंजन के साधन के रूप में उत्तरोत्तर विकास देखने को मिलता है।

वादन : पुरातन कालीन समाज में मनोरंजन के साधन के रूप में वादन का अतिमहत्वपूर्ण स्थान है। गायन को संगीत का रूप देने के लिए वादक वाद्ययंत्रों का प्रयोग करता है। किसी अन्य साधन को सम्मिलित किए बिना ही संगीत के मूलाधार, स्वर एवं लय के द्वारा वाद्य संगीत मनुष्य को आनंदायक होता है। संगीत में वाद्य संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि इससे किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता नहीं होती, जबकि नृत्य एवं गीत में सहायक वाद्यो का होना अनिवार्य है। वाद्यो का प्रयोग अन्यत्र भी किया जा सकता है। वाद्य का शास्त्रीय संगीत में विशेष स्थान है हरिवंश पुराण में वाद्यो को चार भागों तत,

अवनद्ध, सुषिर तथा धन।[80] भरत के नाट्य शास्त्र में भी वाद्यो को तत, अवनद्ध, धन तथा सुषिर में वर्गीकृत किया है।[81]

तत वाद्य : तार से बजने वाले (वाद्य वीणा आदि) तत वाद्य संज्ञा से अभिहित है।[82] हरिवंश पुराण में उल्लिखित है कि तत नामक वादित्र कर्णप्रिय होने से प्रायः सभी प्राणियों को प्रिय एवं गन्धर्व शरीर से सम्बद्ध होने के कारण तत 'गान्धर्व' नाम से विख्यात था।[83] गांधर्व की अति उत्पत्ति के तीन कारण – वीणा, वंश तथा गान है।[84] गांधर्व के तीन भेद स्वरगत, परगत तथा लालगत उपलब्ध होते है। इसके उपभेद और लक्षण भी ग्रन्थ में वर्णित है।[85]

हरिवंश पुराण में विभिन्न वाद्यों का उल्लेख मिलता हैं। लोग विभिन्न वाद्यो द्वारा मनोरंजन करते थेः **इनमें मृदंग, पणव, दर्दुर, कंसवादक (झांझ), विपंची, वीणा[86] भेरी, पटह, मर्दल, शंख[87], बांसुरी (वंश), ताल[88], घण्टा[89], तूर्य, काहल, झालर[90], नगाड़ा, दुन्दुभि, तबला आदि वाद्य उल्लेखनीय है।** जो तार से बजते है ऐसे वीणा आदि वाद्य तत कहलाते है। जो चमड़े से मढ़े जाते है वे अवनद्ध कहलाते है। कांसिके, झांझ, मंजीरा आदि धन कहलाते है; बांसुरी आदि को सुषिर कहा गया है।

वीणा : हरिवंश पुराण में सत्रह तारों वाली सुघोषा वीणा का बहुत सुंदर वर्णन किया गया है। महिलाएँ वीणा वादन में दक्ष थी। अशनिवेग विद्याधर की पुत्री श्यामा सत्रह तोरों वाली वीणा बजाने में कुशल थी। हरिवंश पुराण काल में वीणावादन विशेष लोकप्रिय थी। चम्पानगरी में नाना देशो के कलाकार आकर वीणावादन के विज्ञान को प्रकट करते थे।[91] वर्णित है कि चारूदत्त सेठ की पुत्री गंधर्वसेना जो वीणा बजाने में कुशल थी, नियम लिया कि जो भी उसे वीणावादन में हराएगा वह उसी की पत्नी होगी।

इस प्रयोजन वश जो सभा आयोजित की गई उसमें सभी दर्शक बाजा सुनने की कला से कौतुहल एवं मनोरंजन को प्राप्त हो रहे थे। गन्धर्वसेना ने बहुत से विद्वानों को हरा दिया। वसुदेव का क्रम आने पर उसने अनेक वीणाओं

को दोषयुक्त बता दिया। जब गंधर्वसेना ने अपनी सत्रहतार वाली सुघोषा वीणा दी तो वसुदेव ने बड़ी प्रसन्नता से वीणा बजाई और हा हा, तुम्बरू आदि गेय वस्तु बजाई। बलि को बांधते समय नारद आदि ने विष्णु कुमार मुनि का जिन रूप से स्तवन किया था वसुदेव ने वीणा बजाकर वहीं गाया, इसे सुनकर सम्पूर्ण सभा आश्चर्य एवं आनंद से भर गई। जिनेन्द्र भगवान के जिनाभिषेक के समय[92] विहार काल के समय [93] वीणा वादन का उल्लेख मिलता है।

तंत्री : इसका वर्णन हरिवंश पुराण में उपलब्ध है माता मरूदेवी के गर्भावस्था में मनोरंजन हेतु देवियाँ तंत्री बजाती थी।[94] यह एक विशेष प्रकार की वीणा थी। इसमें प्रयुक्त तार की संख्यानुसार इसका नामकरण होता था, जैसे एक तार की वीणा को एकतंत्री वीणा या तीन तार की वीणा को त्रितंत्री वीणा से सम्बोधित करते थे।

अवनद्ध वाद्य : चमड़े से मढ़कर निर्मित वाद्य को अवनद्ध वाद्य नाम से सम्बोधित किया गया है। इसके अन्तर्गत मृदंग, आनक, दुन्दुभि, पटह, पणव, तबला, भेरी, आनक, मर्दल का उल्लेख हरिवंश पुराण में प्राप्त है।

मृदंग[95] : जिनसेन ने हरिवंश पुराण में कई स्थलों पर वर्णन किया है। भगवान के जिनाभिषेक के समय देवों द्वारा मृदंग बजाकर गम्भीर शब्द किए जाने का उल्लेख मिलता है।[96] भगवान के विहार काल के समय मृदंग के शब्द मंगल की सूचना देते थे।[97]

आनक : आनक को आधुनिक नगाड़ा भी कहते है। शंखनिधि में इसका उल्लेख प्राप्य है। यह एक मुख वाद्य है पटह के जोरदार शब्दों से प्रातः काल की मंगल बेला की सूचना मिलती थी।[98] जन्मोत्सव को मनाने आए देव दुन्दुभि बनाकर सबको हर्ष की सूचना देते थे[99] इसकी ध्वनि दूर तक प्रसारित होती थी। जिन बालक को सिंहासन पर विराजमान करते समय देव भेरी, पटह, मर्दल बाजे

बजाते थे। इस प्रकार अवनद्य वाद्य का प्रयोग मनोविनोद का अच्छा साधन माना जाता था।

सुषिर वाद्य : मूहं से फूंककर जिन वाद्यों से ध्वनि उत्पन्न की जाती है उनको सुषिर वाद्य कहते है। इनके अन्तर्गत काहला, तूर्य बांसुरी, शंख आदि हरिवंश पुराण में उपलब्ध है। काहल और तुर्य वेणु, बांसुरी का प्रयोग भगवान के विहार काल के आनंद को बढ़ा रहा था हरिवंश पुराण में पान्चजन्य शंख[100] और सुघोष शंख[101] का उल्लेख मिलता है। शंख समुद्र से निकाला जाता है। धार्मिक एवं युद्ध आदि अवसरों पर इसके प्रयोग का उल्लेख मिलता है। शंख का प्रयोग प्रातः काल के समय भी किया जाता था जो कि शुभ सूचक था।[102] पाण्डवों का समागम होने पर राजा द्रुपद, कि कुटुम्बी जन तथा द्रोणाचार्य आदि के महान सुख का आभास हुआ इस उपलक्ष्य में शंख की ध्वनि की गई।[103] युद्ध के उत्साह उत्पन्न करने हेतु शंख की ध्वनि की जाती थी। नेमिनाथ ने शाक्र नाम शंख, अर्जुन ने देवस्त्र शंख और सेनापति अनावृष्टि ने बलाहक नामका शंख बजाकर सेना में उत्साह का संचार किए जाने का उल्लेख हरिवंश पुराण में वर्णित है।[104]

घन वाद्य : काँसे से निर्मित झांझ–मंजीरा आदि घन वाद्य कहलाते है। इनकी उत्पत्ति ताल वाद्यों से हुई है।[105] इसके अन्तर्गत घण्टा, झांझ–मंजीरा, कंसवादक (झांझ) का वर्णन ग्रंथ में उपलब्ध है। घण्टे का उल्लेख प्रायः मंदिर या देवी–देवताओं की पूजा अर्चना में होता है। हरिवंश पुराण के अनुसार गायों के घण्टों की सुन्दर ध्वनि सम्पूर्ण गौशाला में आनंद उत्पन्न कर रही थी।[106] झांझ (कांसवादक)[107] तथा झांझ–मंजीरा[108] ये दोनों हाथ से बजाने वाले वाद्य है।

हरिवंश पुराण में सिंहनाद[109],विपन्ची[110] एवं वैत्रासन[111] का उल्लेख भी मिलता है। इस प्रकार संगीत के अन्तर्गत वाद्ययत्रों के प्रयोग के प्रमाण मिलते है, जिससे समाज के हर वर्ग के लोग मनोरंजन करते थे।

नृत्य : प्राचीन काल से पूर्व मध्य युग तक मनोरंजन के साधन के रूप में संगीत के तीनों अंगो में नृत्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहीं कारण है कि समाज के सभी वर्गो में नृत्य के द्वारा मनोरंजन किए जाने के प्रमाण मिलते है। हरिवंश पुराण में नृत्य के लिए कई शब्द आए है जैसे नृत्य[112] नृत्त[113] नाटक या नाट्य[114] ताण्डव[115] आदि। यद्यपि नृत, नृत्य और नाट्य शब्द देखने से एक से प्रतीत होते है।

नृत्य करने के लिए नृत्यशाला, नृत्तशाला[116] नाटक शाला[117] का उल्लेख भी हरिवंश पुराण में मिलता हैं उक्त स्थानों में नृत्य के माध्यम से लोग मनोरंजन करते थे। ग्रन्थ में नृत्य करने वाले पुरूष को नर्तक तथा नृत्य करने वाली स्त्री को नर्तकी की संज्ञा प्राप्त है।[118] ललित कला की चौसठ कलाओं में नृत्य कला का भी समावेश मिलता है। ये चौसठ कलाएँ मनोविनोद का सर्वश्रेष्ठ साधन थी।[119] हरिवंश पुराण के अनुसार उत्तम नृत्य में तीन प्रकृतियों उत्तम, मध्यम एवं जघन्य का होना अनिवार्य है और व्यवधान रहित गायन, वादन तथा नर्तन का प्रदर्शन होना चाहिए।[120] नृत्य के समय भाव का प्रदर्शन शरीर के विभिन्न अवयवों कटाक्ष, कपोलो, पैरों, हाथों, मुख, नेत्रों, अंगराज, नाभि, कटि प्रदेश तथा मेखलाओं द्वारा करके नागरिकों का मनोरंजन किया जाता था।[121] तत्कालीन समय में विविध उत्सवों और मंदिरों में भी नृत्य के द्वारा मनोरंजन किया जाता था। कुमार वसुदेव, जिन मंदिर के आगे मातंग कन्या के वंश में नृत्य करती हुई कन्या को देखकर उस पर मोहित हो जाते है। वह कन्या जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से स्वयं नृत्य करती हुई देवी के समान प्रतीत होती थी।

वह नर्तकी रस, अभिनय तथा भावों को प्रकट कर जनसमूह का मनोरंजन कर रही थी।[122] वसुदेव और कन्या दोनों की अनुरक्ति यह प्रकट करती है कि नृत्य तथा संगीत में स्त्री तथा पुरुष दोनों का तीव्र आकर्षण रहता था। माता मरूदेवी को देवियाँ सुन्दर अभिनय से युक्त, श्रृंगारादि रसों से उत्कट और नेत्रों के लिए अमृतस्वरूप मनोहर नृत्य के माध्यम से प्रसन्न रखती थी।[123]

सौधर्म इन्द्र की सात प्रकार की सेना में नर्तकी का उल्लेख मिलता है सम्भवतः मनोरंजन के लिए ही सेना में नर्तकी रखी जाती होगी।[124]जिनेन्द्र भगवान के जन्मोत्सव के समय समस्त देवों एवं अप्सराओं के द्वारा हाव–भाव से सुन्दर अंगहारों से युक्त तथा श्रृंगारादि रसों से आश्चर्य उत्पन्न करने वाला नृत्य चित्त को अनुरंजित कर रहा था।[125]

हरिवंश पुराण में मनोरंजन के साधन के रूप में वर्णित :

1. **ताण्डव नृत्य**[126] : ताण्डव नृत्य एक उद्धत नृत्य है इसमें विभिन्न रेचको, अंगहारों तथा पिण्ठी बंधो रहित नृत्य किया जाता है। यह तालों, कलाओं, वर्णों तथा लयों पर आधारित होता है। इस नृत्य को भक्तिपूर्वक करने का विधान बताया गया है। अभिषेक के पश्चात इन्द्र जब भगवान को माता–पिता को सौप देता है तब माता–पिता को नमस्कार कर सुन्दर वेषभूषा से युक्त होकर ताण्डव नृत्य प्रारम्भ करता है। इस नृत्य को देखकर सभी हर्षित हो उठते है।
2. **सूची नृत्य** : जब नर्तकियाँ नृत्य करते समय सिमटकर सूची के रूप में परिणत हो जाती है तब उसे सूची नृत्य कहते है। हरिवंश पुराण में बसन्तसेना सुइयों के अग्र भाग पर अंजलि भरकर जाति पुष्पों की बोडियाँ बिखेर कर यह नृत्य करती है[127] और नागरिकों का मनोरंजन करती है।
3. **अंगुष्ठ नृत्य** [128] : अंगुली के द्वारा जो नृत्य किया जाता था। उसे अंगुष्ठ नृत्य के नाम से सम्बोधित किया जाता था। बसंतसेना अंगुष्ठ नृत्य करके विद्वानों की प्रशंसा प्राप्त करती है।
4. **अलातचक्र नृत्य** [129] : फिरकी लेते हुए विभिन्न मुद्राओं द्वारा शरीर के अंग–प्रत्यंग का संचालन शीध्रता से किया जाता था। मातंग कन्या के साथ में नर्तक इसी नृत्य को प्रस्तुत कर दर्शकों का मन मोहित कर रहे थे।

5. **आनन्द नृत्य** [130] : गान्धर्वों ने विभिन्न प्रकार के वाद्यों को बजाते इस नृत्य को किया था। इस समय समाज में इस नृत्य का विशेष रूप से प्रचलन था। हरिवंश पुराण में आनन्द नृत्य से सम्बन्धित एतिहासिक दृष्टान्त मिलता है वर्णित है कि जरासंध के मारे जाने पर यादवों ने जिन स्थान पर आनन्द नृत्य किया था वह स्थान आनंदपुर के नाम से प्रसिद्ध और जैन मंदिरों से व्याप्त हो गया।
6. **नीलांजना नृत्य** [131] : इस नृत्य से वैराग्य उत्पन्न होता था। नीलांजना ऋषभदेव के समक्ष अभिनय के विविध अंगो से युक्त समीचीन भाव को दिखाती हुई हाव–भाव तथा रस पूर्वक इस अभिप्राय के साथ नृत्य प्रस्तुत करती है कि मेरे नृत्य से भगवान प्रसन्न होंगे, उनके प्रसन्न होने पर इन्द्र प्रसन्न होगा और इन्द्र की प्रसन्नता से मैं अधिक सुखी हो सकुंगी।

उक्त नृत्य हरिवंशपुराण कालीन नागरिकों का अच्छा मनोरंजन करते थे। नर्तकाचार्य का भी उल्लेख मिलता है जो नृत्य की शिक्षा देकर नृत्य में पारंगत करते थे।[132] गणिकाएँ भी नृत्य, संगीत गायन, वादन में निपुण होती थी। ये गणिकाएँ अपने गायन, वादन और नृत्य से नागरिकों का मनोरंजन करती थी। मुनि ऋषि भी इनके नृत्य से प्रभावित होकर मोहित हो जाया करते थे। वर्णित है कि रंगसेना वेश्या ने कौशिक ऋषि के समक्ष नृत्य का प्रदर्शन किया जिसमें से काम से युक्त हो गए[133] यज्ञों में भी वेश्या नृत्य का प्रदर्शन करती थी।[134]

नेमिनाथ भगवान के विहार के समय आनन्द से सराबोर होकर नर्तकियाँ प्रेम से आठ रस प्रकट करते हुए नृत्य कर रही थी।[135] इस प्रकार हरिवंश पुराण कालीन समाज में लोग गायन, वादन, नृत्य का रसास्वादन करते थे, इस समय जीवन के हर क्षेत्रों के साथ देवताओं को प्रसन्न करने तक को संगीतमय स्तुति एवं प्रार्थना से जोड़ दिया गया था। वास्तव में संगीत, नृत्य एवं गीत के क्षेत्र में प्रतिष्ठा और मर्यादा इस काल में देखने को मिलती है।

उत्सव : अतीत से भारतीय समाज में अनेक मनोरंजनात्मक उत्सवों के आयोजन का प्रचलन था। इन सामाजिक उत्सवों में स्त्री पुरूष सभी का सामूहिक रूप से योगदान होता था। उल्लेखनीय है कि स्त्रियाँ विशेष रूप से उत्सवों को मनाने में अभिरूचि लेती थी। उत्सवों को मनाने में हृदय के आह्लाद और उमंग को व्यक्त करने के अवसर प्राप्त होते थे।

विवाहोत्सव : सामाजिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित रखने के लिए विवाह अनिवार्य माना जाता है। विवाह के पावन सूत्र में बंधकर पति–पत्नी अपनी जीवन नौका को सहज भाव से इस संसार में खेते है। विवाहोत्सव के अवसर पर ध्वजा एवं तोरण से नगर को भली भाँति सुसज्जित करते है। विवाह मण्डप भी सुन्दर ढंग से सुसज्जित किया जाता था। वर–वधु को स्त्रियाँ गवाक्षों से देखती थी। स्वयंवर की छटा निराली होती थी। विवाह के अवसर पर विभिन्न प्रकार के मंगल गीत, नृत्य, वाद्यों द्वारा मनोरंजन किया जाता था। विभिन्न तरह के मांगलिक पाठों का उच्चारण किया जाता था। हरिवंश काल में समाज के आर्थिक रूप से वैभव सम्पन्न होने के कारण विवाह बड़ी धूम–धाम से मनाए जाते थे। विवाह स्थल बड़ी सुंदरता से सजाया जाता था। विवाह मण्डप के खम्बे सुवर्ण एवं मणिनिर्मित होते थे।[136]

कन्या का श्रृंगार बड़ी सुन्दरता से किया जाता था अनेक स्थलों पर वर्णित है कि कन्या सुन्दर वस्त्राभुषणों से सज्जित होकर स्वयंवर भूमि में प्रवेश करती थी। वर्णित है कि अलंकारों से सुसज्जित रोहिणी को धाय रत्न एवं मणियों से सज्जित मण्डप में राजाओं के समक्ष ले जाती है।[137] विवाहोत्सव को सूचित करने के लिए मंगलभेरी बजाई जाती थी, घर–घर मंगलाचार होते थे। ऋषभदेव का अद्वितीय सुन्दरी नन्दा और सुनन्दा कन्याओं के साथ बड़ी धूमधाम से विधिपूर्वक विवाहोत्सव मनाया गया था। विवाहोत्सवों में रौनक उस समय और बढ़ जाती थी जब वर का चयन किसी प्रतियोगिता के माध्यम से किया जाता था। हरिवंश पुराण में वर्णित है कि गन्धर्व सेना ने संगीत में[138] तथा

सोमश्री ने वेदार्थ में[139] एवं राजा पद्मरथ की कन्या ने माला गूंथने में परास्त करने वाले व्यक्ति से विवाह करने का निश्चय किया था।[140]

विवाहोत्सव में सभी भाई–बन्धुजन सम्मिलित होकर मनोविनोद करते थे अतः विवाहोत्सव एक ऐसा आयोजन था जिसमें मिलन की खुशी सबके चेहरे पर झलकती थी जो आनन्द एवं हर्ष उत्पन्न करती थी।

पुत्र जन्मोत्सव : पुत्र जन्मोत्सव ग्रहस्थ के लिए सबसे बड़ा आनन्ददायक उत्सव माना गया है। इस अवसर पर साधारण जन भी विशेष आयोजन करते है, राजा और सामन्त तो अपना सम्पूर्ण धनवैभव न्यौछावर कर उत्सव मनाते है। राजाओं के यहाँ पुत्रोत्सव में सारा नगर ही आनन्दविभोर होता है। सम्पूर्ण नगर की गलियाँ चन्दन से चर्चित की जाती है। नगर को मालाओं और बन्दनवारों से सजाया जाता है। विविध प्रकार के वाद्य, नृत्य व नाटक खेले जाते है। इस अवसर पर घण्टा ध्वनि, सिंह ध्वनि, सिंह ध्वनि, पटह ध्वनि और शंख ध्वनि की जाती है।[141] अनेक प्रकार के दान दिए जाते है। मुंह मांगा इनाम मिलता है।[142] कृष्ण ने रूक्मिणी के पुत्रोत्पत्ति का समाचार लाने वाले सेवकों को अपने शरीर के सब आभूषण पुरस्कार स्वरूप दे दिये थे।[143] सत्यभामा के पुत्रोत्पत्ति का समाचार लाने वाले सेवकों को भी कृष्ण ने पुरस्कार में बहुत धन दिया था।[144] भरत चक्रवर्ति ने भी पुत्र जन्म का बहुत बड़ा उत्सव मनाया था। चम्पापुरी का अतिशय धनाढ्य सेठ भानुदत्त के यहां बहुत कामना के पश्चात जब चारूत्त नाम के पुत्र का जन्म हुआ तो उसने भी बड़ा महोत्सव मनाया था।[145]ऋषभदेव के जन्म के समय तो उनकी जन्मभूमि अयोध्या नगरी में स्थित सभी भवन व प्रसाद, उद्यान, वन सरोवर व वापिकाएँ अत्यधिक अलंकृत की गई थी।[146]हरिवंश पुराण में पुत्री जन्मोत्सव का भी कहीं वर्णन नहीं मिलता।

बसन्तोत्सव : भारत में उत्सवों का ऋतु से बहुत जुड़ाव रहता है। इन उत्सवों को मनाने में हृदय के आह्लाद और उमंग को व्यक्त करने के अवसर प्राप्त होते थे। मानव ने उत्सवों का आयोजन प्रकृति से अनुप्राणित होकर भी किया। संस्कृत का शायद ही कोई कवि हो जिसने किसी न किसी बहाने से इसका उल्लेख न किया हो। हरिवंश काल में यह प्रचलित महोत्सव रहा होगा।

बसन्तोत्सव बसन्त ऋतु में मनाया जाता है। यह पर्व होली से बहुत साम्य रखता है बसन्तोत्सव के लिए प्रमद वन में क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है, राजा, रानी की स्त्री व साधारण जन, स्त्री पुरूष सभी इसमें हिस्सा लेते थे हरिवंश में इसके प्रसंग में कहा गया है कि बसन्तोत्सव आने पर पति वज्रमुष्टि वन चला जाता है और पत्नी मंगी को पीछे से आने को बोल जाता है। मंत्री की सास उस समय मंगी को फंसाकर घड़े में सांप डाल देती है और उससे घड़े में से माला निकालकर पहनने को बोल देती है।[147]

बसन्तोत्सव में उस समय कई क्रीड़ाएँ की जाती थी। दोहद क्रिया पूर्ण की जाती थी इसमें अशोक नृत्य का ताडन किया जाता था जिससे वह नवीन रूप से खिल जाता था।[148] मालविकाग्नि मित्र में वर्णित है मदनदेव की पूजा करने के पश्चात अशोक में दोहद उत्पन्न किया जाता था यह दोहद क्रिया इस प्रकार होती थी कोई सुन्दरी सब प्रकार के आभरण पहनकर पैरो में महावर लगाकर और नुपूर धारण कर बायें चरण से अशोक वृक्ष पर आघात करती थी। इस चरणाघात की विलक्षण महिमा थी। अशोक वृक्ष नीचे से ऊपर तक पुष्प गुच्छों से भर जाता था।[149]

बसन्तोत्सव में झूला झूलते समय स्त्री पुरूष हिन्दोल राग में कोमल एवं कर्णप्रिय गान गाते थे। पुरूष उत्तम वस्त्राभूषण धारण करते थे तथा अपनी स्त्रियाँ के साथ मद्यपान भी करते थे। इस समय पशु पक्षी भी बसंत की शोभा बढ़ाते थे। ग्रन्थ में हरिण–हरिणी, हस्तिनी–हस्ति, भ्रमर–भ्रमरि आदि परस्पर एक दुसरे को सुखी कर रहे थे। कोयल के मधुर शब्द सम्पूर्ण वातावरण को आनंदित करते थे ग्रन्थकार का कहना है कि जब मनोहर कोलाहल से आकुल भ्रमर तथा किल भी बसन्त के गीत गाते है तो फिर दुसरों मनुष्यों की तो बात ही क्या[150]

रक्षाबंधन महोत्सव : रक्षाबंधन वर्तमान में भारत वर्ष में पूर्ण धूमधाम से मनाया जाता है इसके शुरूआत की कहानी हरिवंश पुराण में उल्लिखित है।[151] कथानक इस प्रकार है विहार करते हुए अकम्पनाचार्य अनेक मुनियों के साथ हस्तिनापुर आए और चार माह का वर्षा योग उन्होंने धारण किया। राजा पद्म ने बलि के धरोहर वर को पूर्ण करते हुए उसे सात दिन का राज्य दिया। बलि ने मुनियों

पर उपद्रव करना शरू कर दिया उसने चारों ओर से मुनियों को घेरकर उनके समीप पत्तों का धुंआ कराया तथा जूठन व कुल्हड़ आदि फिकवायें मुनियों ने उपसर्ग देख नियम लिया कि ये उपसर्ग दूर होगा तभी आहार– विहार करेगें। उसी समय विक्रिया ऋद्धिधारी मुनि विष्णुकुमार सात सौ मुनियों के उपसर्ग निवारणार्थ बलि के पास जाकर तीन डग भूमि की याचना करते है। बलि की सहर्ष स्वीकृति पर विष्णुकुमार मुनि ने विक्रिया से अपने शरीर को इतना बड़ा किया कि वह ज्योतिष्पटल को छूने लगा। उन्होंने एक डग मेरू पर रखा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर तथा तीसरा रखने के लिए उन्हें जगह नहीं मिली। इसी समय गंधर्व देव कोमल गीतों के साथ विष्णुकुमार मूनि का स्तवन करके उन्हें शान्त होने की प्रार्थना करते है उस समय देवों ने शीघ्र ही मुनियों का उपसर्ग दूर दुष्ट बलि को बांध लिया तथा उसे दण्डित कर देश निकाला किया। सात सौ मुनियों की रक्षा के कारण ही इस दिन से जैन समुदाय रक्षा बंधन महोत्सव मनाता है। इस दिन राखी बांध कर रक्षा का संकल्प लिया जाता है। हिन्दु धर्म ग्रन्थों में इसके पीछे का कथानक अन्य तरह का है।

दीपावली उत्सव[152] : जैन दर्शन में दीपावली कार्तिक कृष्ण अमावस्या को मनाई जाती है। इस उत्सव की शुरूआत कैसे हुई इसका उल्लेख हरिवंश पुराण में मिलता है। जब चतुर्थ काल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास रह गए तब स्वाति नक्षत्र में कार्तिक अमावस्या के दिन प्रातः काल के समय स्वभाव से ही योग निरोध कर महावीर स्वामी घातिया कर्मरूप ईंधन के समान अधातिया कर्मों नष्ट कर बंधनरहित हो संसार के प्राणियों को सुख उपजाते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुख से सहित निर्बन्ध–मोक्ष स्थान को प्राप्त हुए। इस समय सुर तथा असुर के द्वारा जलायी हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश जगमग उठा।

श्रेणिक आदि राजा भी मिलकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की पूजा करते है। उस समय से लेकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरत क्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमलिका के द्वारा

भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उन्हीं की स्मृति में दीपावली का उत्सव मनाने लगे। वर्तमान में इस दिन प्रातः काल निर्वाण लड्डू चढ़ाने की परम्परा है तथा दीपकों के द्वारा रोशनी की जाती है। सभी हर्षोल्लास के साथ इस त्यौहार को मनाते है।

मद्यपान : मदिरा पान की तत्कालीन समाज में विशेष प्रथा थी। प्राचीन भारतीय समाज में प्रचलित मनोरंजन के साधनों में मद्य या सुरा पान का महत्वपूर्ण स्थान था। मद्य[153] ,सुरा[154], वारूणी[155] ,मधु आदि मदिरा के अनेक प्रकार थे जिन्हें लोग अपनी इच्छानुसार ग्रहण करते थे। स्त्री और पुरूष दोनों ही मदिरा पान किया करते थे। वेश्याएँ भी मदिरा पान के द्वारा मनोरंजन करती थी। वर्णित है कि वेश्याएँ कंस को पालने वाली माता मंजोदरी से मदिरा लेने आया करती थी।[156] वनविहार के समय पुरूष अपनी स्त्रियों के साथ बाग–बगीचों में मद्यपान कर मनोरंजन करते थे।[157] हरिवंश पुराण में पिण्ट, किण्व आदि मद्य निर्माण के साधनों का उल्लेख दिया गया है।[158] ग्रन्थ में मद्यत्याग को व्रतों एवं नियमों में माना गया है[159] पुरानी से पुरानी मदिरा (वारूणी) अत्याधिक नशा उत्पन्न करती थी। इसमें लोग डूब जाया करते थे और निम्न चेष्टाएँ करते थे[160]

1. **असम्बद्ध गाने गाए जाते थे।**
2. **लड़खड़ाते पैरों से नृत्य किया जाता था।**
3. **केश एवं आभूषण अस्त व्यस्त हो जाते थे।**
4. **कण्ठो से जंगली फूलों की माला पहनना इत्यादि।**

हरिवंश पुराण में उल्लिखित है कि वन क्रीड़ा के समय प्यास से पीड़ित शम्ब आदि कुमार कादम्ब वन के कुण्डो में स्थित पुरानी शराब को पी गये। फलस्वरूप उस मदिरा ने उन्हें तरूण स्त्री के समान वश में कर लिया। हरिवंश पुराण में द्वारिका के भस्म होने पर भी मदिरा का ही निमित्त माना गया है। जब कृष्ण को भगवान नेमिनाथ द्वारा यह पता लगता है तो वह नगर से मद्य बनाने के साधन तथा मदिरा शीघ्र ही बाहर कर देता है।[161] उक्त तथ्यों से स्पष्ट है

कि हरिवंश कालीन समाज में मदिरा इतनी लोकप्रिय थी कि उसके निमित्त से द्वारिका नगरी भी पूर्ण रूपेण जल कर भस्म हो गयी।

वस्त्र एवं आभूषण : प्राचीन काल में प्रचलित वस्त्र एवं वेश भूषा का ज्ञान साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के माध्यम से उपलब्ध होता है। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के वस्त्र एवं वेश भूषा प्रचलित है। इन वस्त्रों के माध्यम से आनन्दानुभूति प्राप्त की जाती थी। वास्तव में वस्त्र जीवन की अपरिहार्य आवश्यकता है। इसका उपयोग भौतिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए भी किया जाता है। हरिवंश पुराण में अनेक प्रकार के रंग बिरंगे, ऊनी, सूती, रेशमी व चमड़े के कपड़े का प्रयोग मिलता है।[162] वस्त्रों पर आर्थिक स्थिति का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। राजा महाराजा व सेठ साहूकार लोग उत्तम कोटि के स्वर्ण सूत्र जटिल रेशमी वस्त्रों का प्रयोग करते थे और साधारण वर्ग सूती व चमड़े के साधारण वस्त्रों का प्रयोग करते थे।

हरिवंश पुराण में **पट्ट**[163], **चीन**[164], **दुकूल**[165], **नीलाम्बर**[166], **पीताम्बर**[167], **पाटाम्बर**[168], **कौपीन**[169], **चद्दर**[170] **या योगपट्ट**, **उत्तरीय**[171], **महानेत्र**[172], **उत्तम कम्बल**[173], **वत्कल**[174] **चीवर**[175] **श्वेत परिधान**[176] आदि अनेक प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। हरिवंश पुराण में वस्त्रों के लिए वसन और वस्त्र दो शब्दों का व्यवहार मिलता है।[177]

हरिवंश पुराण में मनोज्ञ और बहुमूल्य वेश भूषा पर विशेष बल दिया गया है। उत्सव और विवाह के अवसर पर अति उत्तम वस्त्र धारण किये जाते थे। सम्भ्रांत परिवार की महिलाएँ विशेष रूप से रेशमी व ज़री के वस्त्र पहनती थी। गोपाल के आकर्षक वस्त्रों का उल्लेख दिया गया है। ये लोग पीले रंग के दो वस्त्र धारण करते थे और मयूर पिच्छ की कलंगी लगाते थे।[178] साध्वी महिलाएँ श्वेत साड़ी पहनती थी।[179]

आभूषण : सौंदर्य प्रेम मानव का सहज गुण है मानव की यह सौंदर्य प्रियता व्यक्तित्व को सुन्दर और आकर्षक बनाती है। एक तरफ यह व्यक्ति को सुन्दर बनाने का साधन माना गया तो दूसरी तरफ मनोरंजन का भी प्रमुख साधन रहा। मनुष्य की इस सौंदर्यप्रिय प्रवृति के कारण वस्त्रों के साथ–साथ आभूषण भी

धारण किये जाते थे। सुन्दर वस्त्र और आभूषणों के प्रयोग से शरीर तो सज्जित रहता ही है, साथ में आत्म प्रसन्नता का भी अनुभव होता है। प्राचीन काल में आभूषण एवं प्रसाधन सामग्री की उपलब्धि वृक्षों से होने के उल्लेख मिलते है। शकुन्तला की विदाई के शुभावसर पर वृक्षों ने उसको वस्त्र, आभूषण एवं प्रसाधन सामग्री दी थी।[258] जैन पुराणों के अनुसार आभूषण का निर्माण मणि, स्वर्ण, रजत आदि पदार्थों से होता है। हरिवंश पुराण में विभिन्न प्रकार की मणियों का वर्णन उपलब्ध है। **चन्द्रकांत मणि[180], सूर्यकान्त मणि[181] हीरा[182], वैदूर्य मणि[183], कौस्तुभ मणि[184], मोती[185], इन्द्र मणि, इन्द्रनील मणि इसके दो भेद वर्णित है – महाइन्द्रमणि (हल्के गहरे नीले रंग की) तथा इन्द्र नील मणि[186] (हल्के नीले रंग की), मुक्ता[187], रजत[188], मरकत मणि[189], पद्मराग मणि[190], जात्यंजय (कृष्ण मणि) मणि[191], प्रवाल[192], स्वर्ण[193] स्फटिक[194]** इत्यादि। ये धनी वर्ग के लिए निश्चित रूप से मनोरंजन का साधन रही होगी साथ ही अत्यधिक मणियों का मिलना हरिवंश कालीन समाज की समृद्धि एवं वैभव को सूचित करता है।

आभूषण निर्माण में उक्त मणियों का प्रयोग किया जाता था। हरिवंश पुराण में विविध आभूषणो का वर्णन आया है। उनमें से 14 प्रकार के आभूषण मरूदेवी के शरीर की शोभा बढ़ाते थे।[195] ये आभूषण कंठाभूषण, शिरोभूषण, कर्णाभूषण, कराभूषण, कटिभूषण, पादाभूषण आदि के रूप में है। स्त्री व पुरूषों द्वारा शरीर के समस्त अंगों पर आभूषण धारण किये जाते थे। इनमें **हार[196], कुण्डल[197], केयूर[198], कटिसूत्र[199], कटक[200], मुकुट[201], किरीट[202], चूड़ामणि[203], मुद्रिका[204], अंगद[205], मौलि[206], कण्ठाभरण[207] नक्षत्रमात्रा[208], ग्रैवेयक[209], नूपुर[210]** आदि का वर्णन हरिवंश पुराण में मिलता है।

सिर के आभूषणों में चूड़ामणि, मुकुट, किरीट, मौलि प्रमुख है एवं कर्णाभूषण में कुंडल, कराभूषण कटिसूत्र, कटक, केयूर, मुद्रिका, कण्ठाभरण में हार, नक्षत्र माला आदि एवं पादाभूषण में नूपुर उल्लेखनीय है।

राजा, सामन्त वर्ग किरीट, मौलि व मुकुट धारण करते थे सिर के आभूषणों में चूड़ामणि[211], का भी महत्वपूर्ण स्थान है यह मुकुट का ही पर्यायी है।

राजा महाराजा किरीट भी धारण करते थे। किरीट स्वर्ण और मणि से निर्मित होता था। इसे स्त्री व पुरूष दोनों धारण करते थे।[212]

अंगद, कटक, हार, मुद्रिका और कुण्डल इन्हें स्त्री व पुरूष दोनों पहनते थे। कटिसूत्र, नुपुर, कांची, मेखला, रशना ये नारियों के आभूषण थे तथा पुरूष वर्ग शिखामणि, किरीट, मुकुट धारण करते थे। जब ये पुरूष नाटक में अभिनय कर रहे होते थे तो स्त्रियों के आभूषणों का ही प्रयोग करते थे। पैरों के नुपुर पहने जाते थे इन्हें विशेष तौर पर स्त्रियाँ ही पहनती थी। इसके घुंघरूओं की ध्वनि मनभावन होती थी। हरिवंश काल में पैरों में मणि निर्मित व बजने वाले आभूषणों का प्रयोग किया जाता था।[213]

आभूषण की सौंदर्यप्रियता का अंदाजा इसी से लगा सकते है कि इनकों उपहार में भी दिया जाता था। भरत छः खण्ड की जीत में वह कई राजाओं को परास्त करता है और उनसे रत्न, रत्ननिर्मित कुण्डल, चूड़ामणि, सुन्दर कण्ठहार, वीरों के बाजूबंद, कड़े और करधनी, मुकुट, मोती, रत्नों से चित्र–विचित्र कटिसूत्र प्राप्त करता है।[214] चक्रवर्ती के नौ निधियों में नौवी पिंगल निधि कड़े तथा कटिसूत्र आदि स्त्री व पुरूषों के आभूषण प्रदान करती थी।[215]

हरिवंश कालीन समाज में उक्त आभूषणों का मिलना यह सूचित करता है कि समाज के नर–नारी सजते संवरते थे, आभूषणों को धारण कर अपनी सुन्दरता तो बढ़ाते ही थे साथ ही उनको धारण करने से उनका मनोरंजन भी होता था।

सौन्दर्य प्रसाधन : प्राचीन भारतीय समाज की विशिष्टाओं का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि श्रृंगार शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार का मनोरंजन था प्राचीन समय में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता तो थी ही जनसंख्या भी इतनी नहीं थी। अतः लोग सामाजिक जीवन के उत्तरदायित्वों को पूर्ण करके खाली समय में मनोरंजन के विभिन्न साधनों से खूब मनोरंजन किया करते थे। श्रृंगार प्रसाधनों में स्त्री व पुरूष दोनों सक्रिय थे उनका उद्देश्य था स्वस्थ एवं सुन्दर दिखना साथ ही श्रृंगार के बहाने स्वस्थ मनोरंजन करना। राजा, सामन्त

के साथ नागरिकों के भी सौदर्यप्रिय होने का उल्लेख हरिवंश पुराण में मिलता है।

प्रातः उठने के बाद नित्य स्नान किया जाता था फिर उत्तम वस्त्राभूषण धारण करना, काजल लगाना, सुगंधित करना, पान खाना इत्यादि दैनिक क्रियाएँ थी। वर्णित है कि माता मरूदेवी का अनेक देवियाँ अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों से श्रृंगार करती थी, पुष्पमालाएँ लगाती थी। होठों को ताम्बूल से लाल करती थी। आँखों में काजल लगाती थी। केशों को भी अनेक प्रकार से सुगंधित द्रव्यों से सुगंधित किया जाता था। उनमें मोती एवं पुष्पमालाएँ लगाई जाती थी। मुख, कपोल व ललाट पर हरी चंदन, कुमकुम व केशर आदि के तिलक से सजावट की जाती थी। अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों के पटवास का प्रयोग पाउडर के रूप में किया जाता था।[216] ऋषभदेव के बाल शरीर पर अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों का लेप किया जाता था[217]सुगंधित पुष्पों की मालाओं से उन्हें सजाया जाता था।[218] उत्तम अंजन से भी अलंकृत हुआ करते थे।[219] कृष्ण व बलदेव दोनों सुगंधित द्रव्यों के चूर्ण से कुल्ला करके उसी के गाढ़े–गाढ़े लेप को अपने हाथों से लेकर शरीर को सुगन्धित करने के लिए लगते थे।[220] मालती व वनमाला का सेहरा लगाते थे और वक्षस्थल पर सिंदूर का तिलक लगाते थे।[221]उस काल में स्त्रियाँ वेणी भी बांधती थी[222] तथा पुरूष भी बालो का विन्यास किया करते थे।[223]

पुष्प मालाएँ भी धारण कर सौंदर्य बढ़ाया जाता था। प्रायः यह प्रचलन आज के समान ही था। शम्बादि कुमार कण्ठो में फूलों की माला पहनते थे।[224] विवाह के अवसर पर वर के गले में वधु के द्वारा पुष्प माला पहनाई जाती थी।[225]

वनविहार : जैन पुराणों में उद्यान यात्रा और वन विहार के वर्णन प्रायः एक जैसे ही मिलते है। प्राचीन भारत में मनोविनोद के लिए वन विहार के लिए यात्रा करने का उल्लेख मिलता है। हरिवंश पुराण में वर्णित है कि मिलता रैवतक पर्वत के उद्यान पर श्रीकृष्ण अपनी स्त्रियों, नेमिनाथ, राजा महाराजा और नगर वासियों के साथ क्रीड़ा करने की इच्छा से गये थे। उस समय बड़े–बड़े रथों पर

सवार होकर शीध्रता से अरण्यो में विहार करने जाया करते थे। राजा महाराजाओं के साथ नगर निवासी भी अपने अपने वाहनों पर जाते थे। राजाओं की स्त्रियाँ पालकी पर सवार होकर प्रस्थान करती थी। उस समय वसन्त ऋतु में समस्त यादव, प्रत्येक वन, प्रत्येक झाड़ी, प्रत्येक लतागृह, प्रत्येक वृक्ष तथा प्रत्येक वापी में विहार करते हुए विषय सुख का सेवन कर रहे थे। उस समय कितने ही पुरूष अपनी स्त्रियों के साथ बाग बगीचों में बड़े प्रेम से मद्य पान कर रहे थे। पुष्पावचयन क्रीड़ा द्वारा वे फूल चुनते थे।[226] तरूण पुरुष अपनी स्त्रियों के साथ फूलों के समूह से निर्मित शय्याओं पर संभोग क्रीड़ा करते थे। श्रीकृष्ण की स्त्रियाँ नेमिनाथ के साथ भी क्रीड़ा करती थी। नेमिनाथ उनके देवर थे और अभी अविवाहित थे तो उन्होंने कृष्ण की आज्ञा प्राप्त कर वे नेमिनाथ के साथ क्रीड़ा करने लगी कोई उनके वक्षस्थल पर चुम्बन करती, कोई उनका स्पर्श करती, कोई उन्हें सुघने लगती, कोई अपने कोमल हाथ से नेमिनाथ का हाथ पकड़ती, कोई अशोक वृक्ष के पल्लवों से कर्णाभरण बनाकर उन्हें पहनाती, कोई नाना प्रकार के पुष्पों की माला उन्हें सिर पर पहनाने लगी। इस समय नेमिनाथ भी कृष्ण की स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर आनन्दित हुए[227]

राजा सुमुख भी चैत्र मास के आने पर विलास से परिपूर्ण होकर वनविहार के लिए प्रस्थान करते है। वो सजाए हुए हाथी पर आरूढ़ होकर नगर से बाहर जाते है। राजा सुमुख को देखने के लिए नगर की स्त्रियाँ उनके सौंदर्य को बड़े भावपूर्ण नेत्रों से निहारती है एवं 'हे राजन! वृद्धि को प्राप्त हो, जयवन्त रहो और समृद्धिवान हो' इस प्रकार शब्द कर रही थी। नगरी से निकल कर राजा सुमुख ने यमुनोत्तंस उद्यान में प्रवेश किया। वह उद्यान वसन्त ऋतु का आभूषण स्वरूप था, उसमें अनेक प्रकार के फल–फूलों के वृक्ष लगे हुए थे, कही पर नाग लताओं से आलिंगित फूले फले सुपारी के वृक्ष थे, कही पर नारियल, अनार और केलों के वन थे। कहीं पर अति रमणीय वकुल, कुर्वक और टेसू के वृक्ष थे। इस प्रकार वह उद्यान नन्दन वन के समान रमणीय प्रतीत होता था। अपनी स्त्रियों से घिरे राजा सुमुख उस सुन्दर वन में विहार करते थे और अनुकूल मित्रों के साथ क्रीड़ा करते थे।[228]

वेश्या भी वन विहार के लिए जाया करती थी। हरिवंश पुराण में गणिका वसन्तसेना कामी जनों के साथ वन विहार के लिए जाती है। वहाँ एक आर्यिका सुकुमारिका गणिका को देखकर क्लिष्ट परिणामों से युक्त हो जाती है।[229]

इस प्रकार हम देखते है कि वन विहार स्त्री व पुरूष दोनों के मनोरंजन का अपूर्व साधन था यह आजकल की गोठों (पिकनिकों) के समान रहा होगा। जिसमें जन साधारण विशेष रूप से घर से दूर रम्य स्थल पर जाकर विहार करते है और भोजन आदि कर आनन्दित होते है।

दोला क्रीड़ा : हरिवंश पुराण के अनुसार वसन्त ऋतु में चैत्र मास के आने पर स्त्री पुरूष बाग बगीचों में झूला डालकर झूला करते थे और झूलते समय स्त्रियाँ हिण्डोल राग में कोमल गीत गाया करती थीं, झूले पर बैठने के लिए आसन भी बना रहता था, वे दोला क्रीड़ा (झूला) में पैंग मारकर झूलती थी।[230] कादम्बरी के अनुसार झूले में छोटी–छोटी घण्टियाँ बंधी होती थी और सामान्यतः इनका उपयोग सूर्यास्त होने पर होता था।[231] भविष्य पुराण में झूले पर झूलने का नाम 'हिण्डोलादि क्रीड़ा' दिया गया है।[232] कर्पूर मंजरी में उल्लेख है कि देहाती क्षेत्रों में गोप बालाएँ पैंग मारकर झूले को इधर से उधर हिलाती थी।[233] हरिवंश काल में दोला केलि मनोरंजन का विशुद्ध साधन नहीं रहा यह काम भाव जागृत करने का महत्वपूर्ण साधन बन गया।

क्रीड़ा पर्वत : प्राचीन भारत में मनोरंजन के लिए विशिष्ठ स्थानों का चयन किया जाता था। ऐसे स्थानों में क्रीड़ा पर्वत का विशेष महत्व है कुमार आर्य नव वधू मनोरमा के साथ मंदर गिरि पर क्रीड़ा करता था। वह कभी सुगंधित देवदारू और चंदन के ऊँचे ऊँचे वृक्षों से सुशोभित नन्दन वन में चिर काल तक क्रीड़ा करता रहता था।[234] शरद ऋतु में वसुदेव व नीलयशा भी ह्यीमन्त पर्वत पर जाते है वह पर्वत जगह जगह मधुसान के मद से उन्मत्त पक्षियों और भ्रमरों के शब्द से युक्त था, दोनों दम्पत्ति चिर काल तक इधर–उधर भ्रमण कर पर्वत की शोभा देखते हुए तृप्त नहीं होते थे। अतः कामाकुलित होकर दोनों पर्वत के शिखर पर बार–बार रमण कर रहे थे। वे कदली गृह में पुष्प और पत्तों से निर्मित शय्या पर

सम्भोग सुख की प्राप्ति करते है।[235] कृष्ण सहित समस्त यादवों की रैवतक (गिरनार) पर्वत पर क्रीड़ा करने का अलौकिक वर्णन उपलब्ध है।

बाल क्रीड़ा : हरिवंश पुराण में भगवान आदिनाथ की देव बालको के साथ क्रीडा का उल्लेख मिलता है। बालक–बालिकाएँ कभी अपनी हथेली से आंखे बंद कर लेते थे, कभी मंद हास्य करते थे, कभी वचन बोलने में तत्पर रहते थे और कभी किलकारी करते हुए कुटुम्बी जनों के हर्ष को बढ़ाते थे[236] कृष्ण की बाल क्रीड़ाएँ इतनी अदभुत होती थी कि सम्पूर्ण गोकुल वासी दाँतों तले अंगुली दबा लेते थे। बालक कृष्ण कभी तो सोता था, कभी बैठता था, कभी छाती के बल सरकता था, कभी लड़खडाते पैर उठाता हुआ चलता था, कभी दौड़ा–दौड़ा फिरता था, कभी मधुर आलाप करता था और सभी मक्खन खाता हुआ दिन रात व्यतीत करता था।[237] कंस सात देवियों को कृष्ण को मारने के लिए भेजता है। इनमें से पहली देवी उग्र भंयकर पक्षी का रुप धरकर आयी और चोंच द्वारा प्रहार कर बालक कृष्ण को मारने का प्रयत्न करने लगी परन्तु कृष्ण ने उसकी चोंच पकड़कर इतनी जोर से दबायी कि वह भाग गई। दूसरी देवी पूतना के स्तन के अग्र भाग को कृष्ण ने इतने जोर से चूसा कि वह चिल्लाने लगी। तीसरी पिशाची शकर का रूप धारण कर आई तो बालक कृष्ण ने उसे लात मारकर ही नष्ट कर दिया।[240] अन्य दो देवियाँ जमल और अर्जुन वृक्ष का रूप रखकर आई लेकिन बाल कृष्ण ने अपनी अद्भूत चेष्टाओं के द्वारा उन्हें भी हरा दिया। छठी देवी बैल का रूप बनाकर आयी। वह बैल सम्पूर्ण गोकुल में उत्पात मचा रहा था। कृष्ण ने उसकी गर्दन मरोड़ कर उसे भी नष्ट कर दिया। अन्तिम सातवीं देवी को वर्षा के प्रबल वेग को भी कृष्ण गोवर्धन पर्वत ऊँचा उठाकर गोकुल वासियों की रक्षा करते हैं।[238]

उक्त अदभुत चेष्टाएँ सम्पूर्ण गोकुलवासियों को आनन्द का अमृत पिलाती थी। उक्त दृश्यों को देखकर कृष्ण की विजय में सभी मनोरंजन करते थे।

उक्त मनोरंजन के साधनों का सामाजिक परिवेश में महत्वपूर्ण स्थान था नागरिक इनमें सहभागिता प्रकट कर समाज में आनन्द, उमंग, हर्षातिरेक की अनुभूति प्रवाहित करते थे।

राजनैतिक मनोरंजन : प्राचीन भारत में मनोरंजन का उपयोग राजनैतिक क्षेत्र में भी किया जाता था। इस मनोरंजन का आयोजन मुख्यतः राजा, राजपरिवार के सदस्य या मंत्रीगण लोकरंजन एवं मनोविनोद हेतु किया करते थे। जैन आगम के अनुसार आश्रम व्यवस्था बनाये रखने के लिए, आत्मकल्याण हेतु व्यक्ति को गृहस्थाश्रम से निवृत होकर क्रमशः वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम ग्रहण करना चाहिए। हरिवंश पुराण में वृषभदेव के राज्यभिषेक का वृतांत मिलता है। जिसमें इन्द्र भी सम्मिलित होते है।[239] ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन प्राप्त नहीं होता अन्य पुराणों के आधार पर उल्लिखित है राज्यभिषेक के अवसर उत्तराधिकारी राजकुमार का भगवान की पूजा आदि करके मंगल कलशों द्वारा अभिषेक किया जाता था और उसे राजमुकुट व अन्य बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया जाता था। इस अवसर पर अनेक राजा व सामन्त विविध प्रकार के उपहार भेट करते थे। राजा भी अनेक प्रकार का दान करता था एवं सभी उपस्थित लोग राज कुमार को आशीर्वाद देते थे। राजसभा की भी विशेष सजावट की जाती थी। वर्णित है कि कृष्ण का सभाभवन इन्द्र के सभा भवन के समान था[240] यहाँ राजा बैठकर राजकाज का संचालन करता था। राजसभा को सुगंधित धूप के धुयें से सुसंस्कृत किया जाता था। उस पर अनेक पताकाएँ फहराई जाती थी। फल फूल व पल्लवों की वन्दनवारें लगी रहती थी, कर्पूर, धूम एवं पद्म, बकुल, तिलक, मालती, अशोक आदि की अधखिली कलियों द्वारा सुसज्जित किया जाता था। अतः राजसभा की कलात्मक ढ़ंग से सजावट की जाती थी। हरिवंश पुराण में यादवों की कुसुमचित्रा सभा का उल्लेख मिलता है।[241]

आर्थिक मनोरंजन :

प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन की पूर्ति हेतु अनेक आर्थिक कलाओं एवं क्रियाकलापों का अनुसरण किया जाता था। ऐसी परम्परा प्राचीन काल से अनवरत चलती रही। इसकी पृष्ठभूमि में उल्लेखनीय है कि आर्थिक परिप्रेक्ष्य में जहाँ एक तरफ विभिन्न उद्यमियों द्वारा अपनाया गया व्यवसाय उनके

जीविकोपार्जन का मुख्य साधन रहा है। वहीं दूसरी तरफ वह समाज के विभिन्न वर्गों के लिए मनोरंजन का साधन भी बना। हरिवंश पुराण में उल्लिखित आर्थिक मनोरंजन के साधन निम्न प्रकार है :

नाटक : प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन के साधन के रूप में नाटकों का प्रमुख स्थान है हरिवंश पुराण में नट, नर्तक का उल्लेख मिलता है। भगवान वृषभदेव के जन्माभिषेक महोत्सव के समय सौधर्म इन्द्र आनन्द नाटक का अभिनय करता है। इस समय इन्द्र नृत्य करने वाली देवांगनाओं से घिरा होता था और ताण्डव नृत्य के द्वारा सबको चकित करता था।[242]

भगवान नेमिनाथ के जन्मकल्याणक के अवसर पर भी इन्द्र द्वारा महानन्द नामक उत्तम नाटक किये जाने का विवरण मिलता है। सर्वप्रथम इन्द्र ने हजार भुजाएँ बनाकर नाना प्रकार का नृत्य करने वाली हजारों देवियों को धारण किया, यह क्रिया सबको विस्मित कर रही थी। सभी नेत्रों को विस्तृत कर टकटकी लगाकर देख रहे थे। इन्द्र ने उत्सव पूर्वक नाना प्रकार के वादित्रों जिसमें अभिनेय अंश वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे, जो भौहों के क्षोभ की लीला से सहित था, दिड्मण्डल के भेद से रहित था, पृथ्वी के प्रताप से सहित था, और नाना रसों के कारण जिसमें उदार भाव प्रकट हो रहा था। इस प्रकार इन्द्र नाटक कर भगवान के माता पिता को प्रणाम कर चला जाता है।[243]

हरिवंश पुराण में श्रृंगार, हास्य और अद्भूत रस से परिपूर्ण अभिनय के चार भेदों का उल्लेख मिलता है।[244]

हरिवंश पुराण में नट के अभिनय की चंचलता या अस्थिरता का बोध होता है। वर्णित है इस संसार में नट के समान स्वामी व सेवक, पिता और पुत्र, माता तथा स्त्री में विपरीतता देखी जाती है अर्थात स्वामी सेवक हो जाता है, सेवक स्वामी हो जाता है, पिता पुत्र हो जाता है, पुत्र पिता हो जाता है और माता स्त्री हो जाती है, स्त्री माता हो जाती है।[245]

नाट्य के सम्पादन के लिए नाट्यशाला और प्रेक्षागृह होना चाहिए पद्मचरित में एक से बढ़कर नाट्यशालाओं[246] और अनेक की संख्या में बनाये गये प्रेक्षागृह,[247] मंच का भी उल्लेख मिलता है। वास्तव में उस समय अधिकतर

नाटक नृत्य पर आधारित थे अतः इसी माध्यम के द्वारा अभिनय का प्रदर्शन कर लोगो का मनोविनोद किया जाता था।

गणिका/वेश्या : प्राचीन भारतीय मनोरंजन में गणिकाओं को प्रमुख स्थान मिला था हरिवंश पुराण कालीन समाज में वेश्याओं के दो वर्ग थे। गणिकाएँ नृत्य गीत आदि के द्वारा जीविकोपार्जन करती थी और वेश्याएँ रूप यौवन के द्वारा। गणिकाओं से समाज के प्रतिष्ठित लोगों का भी सम्बन्ध रहता था। गणिकाएँ अपना पेशा छोड़कर कुलवधू भी बन सकती थी। हरिवंश पुराण में वारवनिताओं का भी उल्लेख आया है जो प्रातःकाल के समय सुन्दर संगीत का पाठ करती थी।[248] हरिवंश पुराण में बसंतसेना गणिका का वर्णन आया है। जो अपनी मां को छोड़कर चारूदत्त के घर जाकर उसकी सास की सेवा करती थी तथा अणुव्रतों से विभूषित हो गयी थी। बाद में चारूदत्त उससे विवाह भी कर लेता है।[249]

वेश्याएँ संगीत और नृत्य आदि में निपूण रहती थी। यह अत्यन्त सुन्दर रहा करती थी। एवं विभिन्न उत्सवों पर राजाओं के यहाँ नृत्य करने जाती थी। साहित्य मण्डली में भी वेश्याएँ नृत्य किया करती थी। बसन्तसेना ने साहित्यिक जनों से भरे नृत्य मण्डप में सूची नृत्य, अंगुष्ठ नृत्य व गौ और मक्षिका की कुक्षी का अभिनय एवं माला राग, नापित राग व गोपाल राग के आधार पर नृत्य प्रस्तुत कर सभी दर्शकों का मनोरंजन किया था।[250] बसन्तसेना ने चारूदत्त के कहे अनुसार नृत्य दिखाया था व संगीत सुनाया था इस वृतांत के बाद बसन्तसेना चारूदत्त से प्रेम करने लगी थी।

रंगसेना गणिका की कन्या कामपताका सचमुच में काम की पताका के समान थी राजा अमोघदर्शन के यज्ञोत्सव में कामपताका ने नृत्य करके सबके मन को आकर्षित कर लिया यज्ञ समाप्ति पर राजपुत्र चारूचन्द्र कामपताका से विवाह कर लेता है।[251] गणिकाओं के नृत्य को देखकर ऋषि भी आकृष्ट हो जाया करते थे। शास्त्रों की निपुणता से युक्त तथा फलों तथा वृक्षों के मूलपत्र खाने वाले कौशिक ऋषि कामपताका के नृत्य को देखकर मोहित हो गये उसके

नहीं मिलने पर ऋषि राजा चारूचन्द्र को शाप दे देते है।[252] वेश्याओं के कारण बड़े–बड़े धर्मात्मा मुनि भी अपने चरित्र से विचलित हो जाया करते थे। वास्तव में ये मनोरंजन की सर्वप्रिय साधन थी। चारूदत्त जैसा धर्मात्मा भी बसन्तसेना के चक्कर में आकर सब कुछ यहाँ तक कि माता–पिता को भी भूल गया। चारूदत्त बसन्तसेना के घर 12 वर्ष तक रहा। चारूदत्त की सौलह करोड़ दीनार की सम्पत्ति धीरे–धीरे बसन्तसेना के घर आने लगी अंत में चारूदत्त की पत्नी मित्रवती के आभूषण भी आने लगे।[253]

विचित्रमती नाम का मुनि भी बुद्धिसेना वेश्या के सौदर्य को देखकर मुनि पद से विचलित हो गया और मांस भक्षण तक करने लगा।[254] हरिवंश पुराण में वेश्यावृत्ति को जधन्यवृत्ति माना गया है। स्वयं वेश्या अपनी वृत्ति से धृणा करती है। वे धनवानों से ही प्रेम करती है। जब उनका धन समाप्त हो जाता है। तब वे उनको ईंख के छिलके के समान छोड़ देती है। वेश्यावृत्ति को वित्त प्रिय बताते हुए वेश्या कलिंगसेना अपनी पुत्री बसन्तसेना से चारूदत्त का साथ छोड़ने को कहती है।[255] क्योंकि चारूदत्त का सब धन समाप्त हो चूका था। इस प्रसंग में वेश्या होने पर भी वेश्या का चरित्र श्रेष्ठ बताया गया है। वह अपनी माता से कहती है कि जिसके साथ कुमार काल से रहीं हुँ उस चारूदत्त को छोड़ कर मुझे किसी अन्य धनाढ्य व्यक्ति से तो क्या, कुबेर से भी कुछ प्रयोजन नहीं है, जिसके करोड़ो दीनार के धन से तुम्हारा घर भर दिया। उसको छोड़ना अकृतज्ञ स्त्रियों का ही काम है। अतः मैं उसे नहीं छोड़ सकती वेश्याएँ मदिरा की भी सबसे बड़ी ग्राहक होती है।[256]

जैन दर्शन में वेश्या त्याग, नियम के अंतर्गत आता है।[257]

वेश्या व्यसनी व्यक्ति अपना धन शीघ्र नष्ट कर देता है। ब्राह्मण रूद्रदत्त के वेश्या व्यसन के कारण कंगाल होने का उल्लेख मिलता है। वास्तव में इन वेश्याओं के अनेक कार्य थे जिनके द्वारा ये लोगों का मनोरंजन करती थी।

1. **अपने गुणों से लोगों को आकृष्ट करना**
2. **नृत्य द्वारा मनोरंजन करना।**
3. **मनुष्य की काम पिपासा को शान्त करना।**

इत्यादि अनेक कार्यों को सम्पादित कर ये वेश्याएँ समाज के हर क्षेत्र के नागरिकों का मनोरंजन करती थी।

मृगयाविनोद क्रीड़ा/शिकार : हरिवंश पुराण में मृगयाविनोद क्रीड़ा को व्यसन वर्णित किया गया है।[258] वर्णित है कि शिकार व्यसन का प्रेमी जरत्कुमार जब अकेला वन में शिकार के लिए घूम रहा था तथा कृष्ण के वस्त्र का वायु से हिलता छोर देखकर उसे मृग के कान की भ्रांति हो जाती है। यह देखकर जरत्कुमार बड़ी मजबूती से शिकारी के समान तीव्र क्रूर बुद्धि करता हुआ धनुष खींचकर तीक्ष्ण बाण से कृष्ण का पैर बेध देता है। अहिंसा प्रधान धर्म के कारण मृगयाविनोद को जैन ग्रन्थों में निन्दनीय कहा गया है।[259] वर्णित है कि जो पुरूष अत्याधिक क्रोध से युक्त शरभ, सिंह तथा जंगली हाथियों आदि को दूर से ही छोड़ देते है और मृग तथा खरगोश आदि क्षुद्र प्राणियों पर प्रहार करते है, उन्हे लज्जा क्यों नहीं आती शिकार के समय, कोमल मृगों को सैकड़ो प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा मारना निंदनीय बताया गया है।[260]

जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म होने के कारण ग्रन्थकार के द्वारा शिकार का वर्णन अत्याधिक नहीं मिलता ग्रन्थ में वर्णित अल्प तथ्यों से इतना तो विदित हो जाता है कि मृगयाविनोद मनोविनोद का प्रमुख साधन रहा होगा। प्राचीन काल में राजा वनों में मृगयार्थ जाया करते थे तथा उनके साथ विशाल सेना भी जाती थी इस प्रकार मनोविनोद के साथ अपनी दूर स्थित प्रजा विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान भी हो जाता था।

धार्मिक मनोरंजन :

हरिवंश पुराण में धर्म की महत्ता बताते हुए उपदेश दिया गया है कि तीनों लोको में त्रिवर्ग की प्राप्ति धर्म से ही होती है। इसलिए उसकी इच्छा रखने वाले पुरूष को सदा धर्म का संग्रह करना चाहिए।[261] धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरूषार्थो में धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ होने के कारण प्रथम स्थान दिया गया है। अतीत काल से ही मानव का जीवन धर्म पर आधारित था। अतः प्राचीन भारतीय धार्मिक जगत में धर्म से सम्बन्धित विभिन्न क्रिया कलापों का

सम्पादन किया जाता था। ये धार्मिक कार्य पूजा, उत्सव, तीर्थयात्रा, भजन कीर्तन आदि थे इनके माध्यम से धर्म का बोध तो होता ही था वहीं दूसरी तरफ ये मनोरंजनात्मक रूप भी लेते थे।

वस्तुतः इन धार्मिक उत्सवों के माध्यम से मन को आनन्द की प्राप्ति के साथ–साथ आत्मा एवं मन की शुद्धि भी प्राप्त होती थी। गृहस्थ के लिए जीवन का रसमय होना अति आवश्यक है वह इन उत्सवों के माध्यम से जीवनोत्थान के साथ–साथ जीवन में सरसता भी प्राप्त करता था। हरिवंश पुराण में वर्णित विभिन्न धार्मिक मनोरंजन में सम्पूर्ण समाज एकत्रित होकर आनन्द की प्राप्ति करते थे।

पंचकल्याणक महोत्सव : ये महोत्सव तीर्थंकरों के मनाए जाते है। गर्भ, जन्म, तप, केवल और मोक्ष इन पाँच कल्याणकों को पंचकल्याणक कहते है। ये सम्पूर्ण विधि आधारित देवों द्वारा सम्पन्न किये जाते है। गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान की समस्त क्रियाएं पद्मपुराण में वर्णित क्रियाओं के समान ही है।

हरिवंश पुराण में भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण कल्याणक का वर्णन दिया गया है। भगवान महावीर धर्मरूपी विहार कर सभी भव्य जीवों को संबोधकर पावानगरी पहुँचते है और वहाँ के 'मनोहरोद्यान' नामक वन में विराजमान हो जाते है। इस समय चतुर्थ काल में तीन वर्ष साढे आठ मास बाकी रहे तथा कार्तिक अमावस्या को स्वाति नक्षत्र का प्रातः काल का समय था। उस समय भगवान महावीर स्वभाव से ही योग निरोध करके घातिया कर्मरूप ईधन के समान अघातिया कर्मो को भी नष्ट करके संसार बंधन से मुक्त होकर, संसार के प्राणियों को सुख प्रदान करते हुए निरन्तराय तथा विशाल सुख से सहित निर्बन्ध–मोक्ष स्थान को प्राप्त करते है। इस समय चारों निकाय के देव पंच कल्याणकों के महान अधिपति, सिद्धशासन भगवान महावीर के निर्वाण महोत्सव की विधिपूर्वक पूजा करते है। सुर तथा असुरों के द्वारा जलायी गई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश जगमग हो जाता है। उस समय सब राजा और प्रजा उनके निर्वाण कल्याणक की पूजा करते है, देवता और इन्द्र जिनेन्द्र भगवान के रत्नत्रय की याचना करते हुए

अपने अपने स्थान पर चले जाते है। उस समय से लेकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरत क्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे। कहा जाता है कि उसी समय से लेकर सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रतिवर्ष कार्तिक कृष्ण अमावस्या तिथि पर आदरपूर्वक दीपमालिका के रुप में उनकी स्मृतिस्वरुप दीपावली मनाई जाने लगी।[262]

उक्त पंचकल्याणकों में वर्णित विधियों के आधार पर ही वर्तमान में विविध स्थलों पर मुनिसंघ के सानिध्य में पंचकल्याणक महोत्सव आयोजित होते है जिसमें उक्त प्राचीन परम्परा, प्रविधि को दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है और सम्पूर्ण जन समुदाय ऐसे दृश्य देखकर आनन्द की अनुभूति तो करता ही है साथ ही आध्यात्मिक मनोरंजन भी करता है।

इन्द्रध्वज महोत्सव : तीर्थकरों के केवलज्ञान उत्पत्ति के समय समवशरण की रचना होने पर मानस्तम्भ की रचना होती थी। मानस्तम्भ की पूजा को इन्द्रध्वज महोत्सव कहा जाता था, क्योंकि यह पूजा इन्द्र के द्वारा ही की जाती थी। हरिवंश पुराण में इन्द्रध्वज विधान का उल्लेख मिलता है जिसमें समस्त स्त्री पुरुष भाग लेते थे।[263]

अष्टाह्निका महोत्सव : जैन आगम के अनुसार नन्दीश्वरद्वीप जम्बूद्वीप से आठवाँ द्वीप माना गया है। अष्टाह्निका महापर्व में सभी देव नन्दीश्वर द्वीप की वन्दना करने जाते है। हरिवंश पुराण में कुमार वसुदेव व गन्धर्व सेना के द्वारा अष्टाह्निका पर्व में चम्पापुरी के मंदिर में बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य भगवान की पूजा करने की विधि का उल्लेख मिलता है। समस्त देव, विद्याधर, (वर्णित है कि चम्पापुरी में भगवान वासुपूज्य के पाँच कल्याणक हुए है) भूमिगोचरी राजा, चम्पापुर निवासी भी उनके साथ वंदना को निकलते है। (वर्णित है कि चम्पापुरी में भगवान वासुपूज्य के पाँच कल्याणक हुए है) स्त्रियाँ भी कई प्रकार के आभूषणों को धारण कर हाथी, घोड़े तथा बैल पर बैठकर जा रही थी। वसुदेव व गन्धर्व सेना भी जिन मंदिर में प्रवेश करते है तथा जिनेन्द्र देव की तीन प्रदक्षिणा देते है फिर दूध, इक्षुरस की धारा, घी, दही तथा जल आदि के द्वारा

मनुष्य सुर एवं असुरों के द्वारा पूजित जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का अभिषेक करते है[291] उसके बाद हरिचंदन की गंध, धान के सुगंधित एवं अखण्ड चावल, नाना प्रकार के उत्तमोत्तम पुष्प, कालागुरु, चंदन से निर्मित उत्तम धूप, देदीप्यमान दीपक और निर्दोष नैवेद्य से जिन प्रतिमा की पूजा करते है। पूजा के बाद सामायिक करने के लिए पहिले दोनों पैर बराबर करके जिन प्रतिमा के आगे हाथ जोड़कर खड़े हो जाते है, तदनन्तर ईयापथदण्डक का मंद स्वर से उच्चारण करने लगते है। पंच नमस्कार मंत्र से अपने आप को पवित्र करते है। अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रज्ञप्त धर्म ये चार ही संसार में उत्तम पदार्थ है, चार ही मंगल है और इन चारों की शरण में हम जाते है,इस प्रकार उच्चारण करते है। तत्पश्चात् अढ़ाई द्वीप के एक सौ सत्तर धर्म क्षेत्रों के त्रैकालिक तीर्थकरों को नमस्कार करते है। सावद्य योग और शरीर त्याग का नियम ग्रहण करके सामायिक के समय तक के लिए शरीर से ममत्व त्याग तथा शत्रु–मित्र, सुख–दुःख, जीवन–मरण, लाभ–अलाभ में समता भाव धारण करने का विचार करके सामायिक करते है। तदनन्तर सात श्वासोच्छवास प्रमाण खड़े रहकर शिरोनति करते है, उसके पश्चात् चौबीस तीर्थकरों की वंदना सम्बन्धी सुंदर स्तोत्र का उच्चारण करते है। तीर्थकरों के समस्त गणधरों अरहंत भगवान के त्रिलोकवर्ती कृत्रिम, अकृत्रिम मंदिरों व जिनबिम्बों को नमस्कार करते है। इस प्रकार स्तवन कर भक्ति के कारण जिनके शरीर में रोमांच उठ रहे थे। ऐसे कुमार वसुदेव तथा गान्धर्व सेना मस्तक, घुटने तथा हाथों से पृथिवी तल का स्पर्श करते हुए प्रणाम करते है। पुनः पहले के समान खड़े होकर कायोत्सर्ग करके पुण्यवर्धक पंच नमस्कार मंत्र पढ़ते है। उसी के समय पृथिवी तल के समस्त अरहंतों, सिद्धों, आचार्यो, उपाध्यायों व साधुओं को नमस्कार करके अंत में जिन मंदिर में प्रदक्षिणा देकर हर्षोल्लास के साथ चम्पापुरी में लौट आते है।[264] इस प्रकार अष्टाह्निक महोत्सव में सभी लोग आध्यात्मिक मनोरंजन कर मन में शान्ति व सुख का वातावरण उत्पन्न करते थे।

जनसामान्य अपनी यथाशक्ति, भक्ति भाव से दान पुण्य कर आराधना करते है और इन धार्मिक उत्सवों में शामिल होकर सुख शांति की प्राप्ति कर

धार्मिक मनोरंजन की अनुभूति करते है। हरिवंशपुराण से निष्कर्षित उक्त मनोरंजन के साधन तत्कालीन समय की सांस्कृतिक मनोरंजनात्मक छवि को प्रस्तुत करते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पी.सी.जैन : हरिवंशपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन पृ. 23
2. तपो वरप्रसादों में पितर्यदि न दियते ।
   गतियुद्धे विजत्रेऽहं देयेत्येष वरोऽस्तु में।। हरिवंशपुराण 34/21
3. दृढ़मुष्ठि प्रहारेण प्राणसंदेहभावहत्।। वही 19/110, 24/78–79
4. निहत्य मल्लयुद्धेऽसौ मोचितः प्रियजीवितम्।। वहीं 24/7
5. वही 27/41
6. इतिविहित महाज्ञो मल्लयुद्धाय मल्लानतिकठिन कनिष्ठ ज्येष्ठ मध्य प्ररूढान्।।
   वही 36/11
7. वही 36/44
8. विविध करण दक्षों मल्ल विधान वद्यो।।
9. वही 36/29
10. वही 11/84, 85
11. वही 55/9, 10
12. वही 31/5, 55/42, 51–57
13. वही 55/56
14. वही 36/26
15. प्राचूचुदन जलक्रीड़ां वाप्यां कुर्म इति द्विषः।। वही 47/71
16. डॉ देवीप्रसाद मिश्र – जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन पृ. 172
17. हरिवंश पुराण 19/63–66
18. वही 47/109
19. मन्मथ राय, प्राचीन भारतीय मनोरंजन पृ. 264
20. हरिवंश पुराण 9/127
21. वही 9/167–168
22. बाह्यवाह्यलिकां भानूरश्वत्यायामहेतुना। निर्गतो ऽदर्शि कामेन गगमनेस्थ विमानिना।। वहीं47/102

23. वही 36 / 29
24. वही 18 / 100
25. क्रोधजेषु त्रिषूक्तेषु कामजेषु चतुर्षु च। नापरंव्यसनं द्यू तान्निकृष्टं प्राहुरागमाः।। महा
26. 59 / 75
27. हरिवंश पुराण 18 / 48
28. वही 56 / 3
29. पाण्डव पुराण 16 / 105–115
30. हरिवंश पुराण 46 / 3
31. पाण्डव पुराण 16 / 116–120
32. हरिवंश पुराण 10 / 100
33. ऋग्वेद 10 / 34 / 8
34. हरिवंश पुराण 21 / 55
35. वही, 21 / 59
36. वही, 26 / 30
37. वही, 17 / 39
38. वही, 48 / 41
39. स द्यूतवेश्याव्यसनी विनाश्य द्रविणं द्विजः।। वही 18 / 100
40. वही, 8 / 43
41. विलिख्य पट्ट के स्पष्टं रूक्मिण्या रूपमद्भुतम्। हरये ऽदर्शयद्रगत्वा चित्तसंमोह कारणम्।। वही 42 / 45
42. वही, 5 / 369, 57 / 44
43. वही, 5 / 369, 57 / 44
44. वही, 52 / 13
45. वही, 52 / 22
46. वही, 11 / 128

47. गुह्यकांचित्र पत्राणि चिन्वते कौड्कुमै रसैः। चित्रकर्मज्ञतां चित्रां स्वामाचिख्यासवो यथा।। वही 66/43

48. वही, 28/3

49. वही, 28/3

50. वही, 61/17

51. चतुर्विधकथा वृत्तिश्चतुर्गति निवारिणो।। वही 58/4

52. वही, 48/29–35

53. वही, 21/135

54. वही, 23/150

55. चारूगोष्ठी सुखास्वादधारूदत्तं यदूत्तमः। वही 21/21

56. वही, 23/151

57. वही, 21/136–137

58. वही, 21/42–49

59. वही, 29/29

60. वही, 19/264–266

61. वही, 11/126

62. वही, 9/171

63. वही, 59/20

64. सुर्योवनोन्मादभराः सुरा सैररीर मत्केलिषु गोपकन्याः।। वही 35/65

65. वही, 59/20

66. आचारांग सूत्र 2/11/18; सुत्रकृतांग 2/2/55 ज्ञाताधर्मकथासूत्र पृ. 401ः भवावतीसूत्र 15/114

67. हरिवश पुराण 8/158

68. वही, 19/56, 123

69. वही, 19/145

70. वही, 21/53–58

71. वही, 21/45

72. वही, 21/46

73. वही, 21/47

74. वही, 19/40

75. वही, 20/57–59

76. गायन्ति मधरं गेयं काश्चित्कर्णरसायम्।। वही, 8/44

77. जगुः किन्नरगन्धर्वाः स्त्रीमिस्तुम्बरू नारदाः। सविश्वायसवो विश्वे चित्रं श्रोत्रमनोहरम्।। वही, 8/158

78. हिन्दोलग्राम रागेण रक्त कण्ठाधर श्रियः।। वही 14/20

79. वही, 35/50

80. वही, 59/71

81. चतुर्विधं शुभं वाद्यं ततं च विततं घनम्। सुषिरं च सृजन्त्यत्र तुर्यान्गादुभजातयः।। वही 7/84

82. ततं चैवावनंद्ध च धनं सुषिरमेव च। चतुर्विधन्तु विज्ञेयभातोद्यं लक्ष्णान्वितम्।। नाट्यशास्त्र अध्याय 28 श्लोक 1

83. हरिवंश पुराण 19/143

84. प्राणि प्रीतिकरं प्रायः श्रवणेन्द्रि तर्पणात्। गान्धर्वदेह सम्बद्धं ततं गान्धर्वव मीरितम्।। वही19/144

85. वीणा वंशश्च गानं च तस्य योनिरितीरियम्। वही 19/145

86. गान्धर्व त्रिविधं चैतत्स्वर तालपदे गतम्। वही 19/145

87. हरिवश पुराण 22/12–13

88. वही, 8/157

89. वही, 38/27

90. वही, 38/14

91. वही, 49/16

92. वही, 19/124

93. वही, 39 सर्ग

94. वही, 59/16

95. वही, 8/44 वही 59/16

96. वही, 8/157

97. वही, 59/16

98. वही, 42/107

99. वही, 8/141

100. वही, 1/113

101. वही, 42/79

102. वही, 42/107

103. वही, 45/144

104. वही, 51/20

105. वही, 19/143

106. वही, 55/50

107. वही, 5/365

108. वही, 22/12

109. वही, 56/114

110. वही, 22/13

111. वही, 4/6

112. वही, 8/233, 21/43–50, 29/28

113. वही, 57/48

114. वही, 21/44–49 सर्ग 39, 491

115. वही, 8/233, 39 सर्ग 491

116. हरिवंश पुराण 57/48

117. वही, 57/38

118. वही, 9/47

119. वही, 8/43

120. वही, 22/12–14

121. वही, 21/47

122. वही, 22 / 15

123. वही, 8 / 45

124. वही, 8 / 133

125. वही, 8 / 160

126. वही, 8 / 233

127. सूचि नाटक सूच्यग्रे सा जाति मुकुलान्जलिम्।। वही, 21 / 44

128. वही, 21 / 46

129. वही, 22 / 14

130. आनन्दं ननृतुर्यत्र यादवा मागधे हते। आनन्दपुर मित्या सीत्तत्र जैनालयाकुलम्।। वही, 53 / 80

131. वही, 9 / 47

132. वही, 15 / 34

133. वही, 29 / 29

134. वही, 29 / 28

135. वही, 59 / 70

136. वही, 31 / 13

137. वही, 31 / 19

138. वही, 19 / 123

139. वही, 23 / 30

140. वही, 31 / 3

141. चेलुः सुरा जिनसमुद्भवमद्धतो तोच्चैर्धण्टामृगेट् पटह शंखवैश्च शेषाः।। वही 16 / 14

142. वही, 8 / 104, 38 / 15—44

143. वही, 53 / 37

144. वही, 43 / 38

145. वही, 21 / 11

146. वही, 8 / 147—150

147. वही, 33/108

148. वही, 14/44

149. हजारीप्रसाद द्विवेदी–प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद पृ. 123

150. हरिवंश पुराण 44/11–26

151. वही, 20वां सर्ग

152. वही, 66/21

153. वही, 61/35

154. वही, 61/49

155. वही, 63/30

156. वही, 33/19

157. वही, 14/21

158. वही, 8/135

159. वही, 18/148

160. वही, 61/52

161. वही, 61/34

162. वही, 8/184

163. वही, 7/87

164. वही, 7/87

165. वही, 7/87

166. वही, 36/39

167. वही, 36/63

168. वही, 36/63

169. वही, 42/4

170. वही, 42/3

171. वही, 43/188

172. वही, 11/121

173. वही, 11/121

174. वही, 17/9

175. वही, 9/115

176. वही, 12/51

177. वही, 36/62, 11/129

178. वही, 35/35

179. वही, 12/51

180. क्षौम केनाचिदित्दुपाण्डुतरूणा प्रतिद्वन्दिभिः।। अभिज्ञान शाकुन्तलम्4/5

181. हरिवंश पुराण 2/7

182. वही, 2/8

183. वही, 2/1

184. वही, 2/10

185. वही, 62/54

186. वही, 7/72

187. वही, 2/54

188. वही, 7/73

189. वही, 8/148

190. वही, 2/10

191. वही, 2/9

192. वही, 2/54

193. वही, 55/77

194. वही, 57/13, 55, 70

195. वही, 57/15

196. वही, 8/35

197. वही, 7/89

198. वही, 7/89

199. वही, 7/89

200. वही, 7/89

201. वही, 38／16

202. वही, 38／16

203. वही, 41／33

204. वही, 38／42

205. वही, 47／37

206. वही, 11／14

207. वही 47／36

208. वही 7／38

209. वही 41／33

210. वही 11／13

211. वही 36／62

212. वही 38／42, 11／13

213. वही 41／33

214. वही 36／62

215. वही 11／8—17

216. वही 11／122

217. वही 8／48—50

218. वही 8／173, 137

219. वही 8／289—291

220. वही 8／194

221. वही 36／28

222. वही 36／29

223. वही 16／43

224. वही 15／37, 16／43

225. वही 61／52

226. वही 21／60

227. वही 55／39

228. वही, 14 / 15–49

229. वही 14 / 15–16

230. वही 64 / 134

231. वही 14 / 20

232. कादम्बरी 1 / 212

233. भविष्य पुराण 1 / 13 / 58

234. कर्पूर मंजरी पहला अंक

235. हरिवश पुराण 15 / 35

236. वही 33 / 15–20

237. वही 15 / 29

238. वही, 35 / 41–47

239. वही 35 / 47

240. वही 9 / 41

241. वही 41 / 30

242. वही 55 / 2

243. चिरं प्रेक्षक योरग्रे नटित्वा ऽऽनन्दनाटकम्। वही 8 / 233

244. 39 वां सर्ग

245. 23 / 152

246. जायतेऽत्र नटस्येव संसारे स्वामि भृत्ययोः। पितृपुत्रकयोर्मातृमार्ययोश्च विपर्ययमः।। हरिवंश पुराण 43 / 126

247. वही 57 / 68

248. वही 57 / 66

249. वही 63 / 39

250. वही 21 / 176

251. वही 21 / 43–49

252. वही 29 / 29

253. वही 29 / 29

254. वही 21／59

255. वही 27／102

256. वही 21／64

257. वही, 33／20

258. वही, 18／48

259. वही, 62／29

260. वही, 55／61—63

261. वही, 55／92

262. वही, 99／15—20

263. वही, 24／41

264. वही, 22／20—44

अध्याय–षष्ठम (स)

6.3 महापुराण (आदिपुराण + उत्तर पुराण) में प्रतिपादित मनोरंजन

1. मनोरंजन के साधन
2. उल्लेख
3. महत्व

षष्टम अध्याय (स)

जैन पुराणों में महापुराण सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विस्तृत है जो आदिपुराण एवं उत्तरपुराण इन दोनों खण्डों में विभाजित है। आदिपुराण की रचना आचार्य जिनसेन ने लगभग नवीं शती ई. के पूर्वार्द्ध में और उत्तरपुराण की रचना उनके शिष्य गुणभद्र ने नवीं शती ई. के अंत या दसवीं शती ई. के प्रारम्भ में की थी। इन दोनों पुराणों को संयुक्त रूप से महापुराण कहा जाता है। इसमें 24 तीर्थकरों, 12 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र, 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण सहित कुल 63 शलाका पुरूषों के जीवन चरित्र का विस्तारपूर्वक निरूपण हुआ है। इस पुराण में वर्णित कथाओं के माध्यम से मनो–विनोद के प्रमुख तत्वों की गणेषणा करने का प्रयास किया गया है। ग्रंथ निर्माण के समकालीन शासक राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष प्रथम एवं कृष्ण द्वितीय के काल में प्रचलित मनोरंजन की समस्त शैलियों, आयामों के स्वरूप का उल्लेख महापुराण में मिलता है। महापुराण की मनोरंजनात्मक सामग्री का निरूपण समकालीन राष्ट्रकूट कलाकेन्द्र एलोरा की जैन गुफाओं में उत्कीर्ण मूर्तियों में प्रतिबिम्बित हुआ है। इन जैन मूर्तियों के अलंकरण से तत्कालीन समय में मनो–विनोद की सार्थकता प्रमाणित होती है।

महापुराण में जीवन का सर्वांगीण विकास अंकित है, इनमें शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास के विभिन्न साधनों का भी वर्णन है। महापुराण में मनोरंजन विषयक जो सामग्री दी गई है उससे मनोरंजन के निर्दोष साधनों की जानकारी के साथ ही मनोरंजन की सात्विकता के विषय में भी आचार्यो का चिन्तन झलकता है। महापुराण में अपने मन के विषयभूत पदार्थो को ही मनोरंजन की संज्ञा दी गई है।[1] साथ ही उन्हीं मनोरंजन के साधनों को प्राथमिकता दी गई है जो व्यक्ति की कार्यक्षमता को तीव्र करते है, शारीरिक व मानसिक रूप से लाभकारी है एवं तनाव दूर करने वाले है। महापुराण में क्रीड़ा विनोदों के अत्यधिक सेवन को व्यसन कहा गया है।[2] तथा आवश्यकता से अधिक मनोरंजन में लिप्त रहना वर्जित माना गया है। क्योंकि अत्यन्त सुखप्रद मनोविनोद के ये साधन प्रारम्भ में अच्छे मालूम होते है पर उनका अधिक सेवन

करने से वे ही मृत्यु के कारण हो जाते है। महापुराण में मनोरंजन के साधनों के सेवन में संतुलन व सीमितता पर आवश्यक जोर दिया गया है। सर्वथा विनोद एवं क्रीड़ाओं का सेवन करने वाला व्यक्ति उन्मार्गगामी है और उसे निरन्तर कष्ट होता है।[3] **''सर्वो हि वांछति जनो विषयं मनोज्ञम''**, महापुराण में वर्णित उक्त गाथा से तत्कालीन समय में मनोरंजन के साधनों की सर्वप्रियता का उल्लेख मिलता है। महापुराण में वर्णित मनोरंजन के साधनों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है।

1. **शारीरिक मनोरंजन**
2. **मानसिक मनोरंजन**
3. **धार्मिक मनोरंजन**
4. **सामाजिक मनोरंजन**
5. **राजनैतिक मनोरंजन**
6. **आर्थिक मनोरंजन**

शारीरिक मनोरंजन :

महापुराण कालीन भारत में प्रचलित शारीरिक मनोरंजन के कुछ प्रमुख साधनों को प्रस्तुत किया गया है

कुश्ती / मल्लयुद्ध / मुक्केबाजी / दण्ड क्रीड़ा

प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन के साधन के रूप में कुश्ती का विषेष प्रचलन था। यह मनोरंजन का एक ऐसा सहज एवं मुक्त साधन है जिससे लोगों को सुख, आनन्द, उमंग एवं शान्ति की प्राप्ति होती है। महापुराण में मल्लक्रीड़ा का उल्लेख बाहुयुद्ध के रूप में वर्णित हुआ है।[4] भरत और बाहुबली के बीच हुए इस मल्लयुद्ध में बाहुबली की विजय होती है। दोनों मल्ल, प्रतिज्ञा कर रंगभूमि में उतरते है तथा दोनों मल्लों के मध्य हाथ हिलाकर, ताल ठोक कर, पैंतरा बदलकर तथा भुजाओं के व्यायाम से बहुत बडा मल्लयुद्ध होता है।[5] बाहुबली, भरत चक्रवर्ती को लीला मात्र में ही घुमा देते है। यहाँ एक तथ्य विशेष ज्ञात होता है कि आमतौर पर मल्लयुद्ध में मल्ल अपने प्रतिमल्ल को पछाड़कर

जमीन पर पटक देता है लेकिन बाहुबली भरत के अनुज होने के कारण उन्हें पटकते नहीं वरन् सिर पर उठा लेते है, दोनों मल्लों के पक्षीय राजा तथा दर्शक प्रयुक्त दाँव–पेंच देखकर आनन्द और कौतुक से भर उठते थे। वात्स्यायन ने कुश्ती के गोंण क्रियाकलापों में उत्पादन–संवाहन (मालिश) मनोरंजन का सहायक अंग कहा है।[6] महापुराण में भी मल्ल कुश्ती के पूर्व तेल मालिश कर के अपने शरीर को पुष्ट करते थें।[7] यह क्रिया शारीरिक सुख के साथ मनोरंजन भी प्रदान करती थी।

महापुराण में बालक आदि कुमार बाल क्रीड़ा के समय मल्ल का रूप धारण कर देव कुमारों के साथ क्रीड़ा किया करते थे।[8] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि मल्लयुद्ध/क्रीड़ा तत्कालीन समाज में बालक वर्ग में भी लोकप्रिय थी।

उत्तरपुराण में मल्ल क्रीड़ा को मल्ल विद्या का नाम दिया गया है और इसे दण्ड का प्रतीक भी माना गया है। कथानक के अनुसार राजा, श्रीभूति मंत्री के लिए बज्रभूमि पहलवान के तीन धूंसे/मुक्के देना दण्डित करता है।[9] इस संदर्भ में स्पष्ट है कि मुक्केबाजी प्रचलन भी तत्कालीन समाज में प्रचलित था।

मुक्केबाजी के अतिरिक्त दण्डक्रीड़ा भी मनोरंजन का साधन थी। आदिपुराण के अंतर्गत बालक आदिकुमार गले में माला पहने हुए, शरीर में चंदन लगाये हुए देव बालकों के साथ खेलते समय दण्ड का प्रयोग करते थे।[10]

मनो–विनोद के इन साधनों को महर्षि पाणिनी ने प्रहरण क्रीड़ा नाम दिया है। इसके अनुसार खेल–खेल में जिस शस्त्र (दण्ड–इत्यादि) का प्रयोग किया जाये उसी के अनुसार खेल का नाम पड़ता है।[11] महर्षि पाणिनी के अनुसार वर्णित मनो–विनोद के इस साधन का उल्लेख आदिपुराण में किया गया है। मल्लों की तत्कालीन समाज में बहुत ख्याति थी। बड़े मल्ल अन्य सभी मल्लों को रंगभूमि में जीत कर महामल्ल की पदवीं धारण करते थे। इन महामल्लों की पूजा अर्चना की जाती थी।[12] उत्तरपुराण में कंस की राजधानी मथुरा में एक कुश्ती आयोजन का विस्तृत विवरण मिलता है।[13] इसमें अनेक पहलवानों के साथ बलराम और कृष्ण को भी आमंत्रित किया गया था। रंगभूमि में मल्ल का

वेश धारण करने वाले अनेक गोपाल बालक कृष्ण की ओर से उतरे तथा अनेक पैतरों, पैर रखकर उठाना, भृकुटी चलाना, गर्जना करना, आगे जा कर पीछे लौट आना, चक्कर लगाना, थिरकना, उछलना, कभी निश्चल खड़े रहना इत्यादि पैंतरों से वे रंगभूमि को अलंकृत कर रहे थे। कंस के प्रमुख मल्ल चाणूर आदि भी रंगभूमि में उतरे। कृष्ण की टक्कर चाणूर मल्ल से हुई। कृष्ण महामल्ल की भाँति सिंह के समान गर्जना करते हुए धरती पर पैर पटकते हुए, उछलते कूदते हुए अपने प्रतिद्वंदी चाणूर को बाहुओं की सहायता से मारकर सुशोभित हुए। चाणूर के परास्त होने पर कंस रंगभूमि में उतरा, श्रीकृष्ण कंस के पैर पकड़कर छोटे से पंछी की भांति पहले उसे आकाश में घुमाया तत्पश्चात उसे सिंह के समान गरजते हुए सिर के चारों और घुमाया और जमीन पर पटक दिया। परिणामतः कंस के प्राण निकल गये। उक्त कथानक का उल्लेख अन्य पुराण ग्रन्थों में भी मिलता है।[14]

आचार्य जिनसेन ने तीर्थकर वृषभनाथ के मोहनीय कर्म के क्षय हो जाने को मल्ल क्रीड़ा का उदाहरण देकर वर्णित किया है। भगवान ने जिस प्रकार मोहनीय कर्म पर विजय प्राप्त की, उसी प्रकार प्रतिमल्ल के मैदान छोड़कर भागने पर मल्ल की विजय के आनन्द का वर्णन अकथनीय होता है।[15] वस्तुतः रचनाकार के काल के समय कुश्ती एक लोकप्रिय मनोरंजन का साधन था। स्त्री वर्ग की इसमें भागीदारी का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन पुरूष तथा बालक इस क्रीड़ा का भरपूर आनन्द उठाते थे।

दौड़ प्रतियोगिता : आदिपुराण में दौड़ प्रतियोगिता के संदर्भ में गतियुद्ध प्रतियोगिता का उल्लेख आया है।[16] भोगपुर नगरी के राजा वायुरथ की प्रभावती कन्या के विवाह के प्रसंग में स्वयंवर का आयोजन कर गतियुद्ध प्रतियोगिता कराने का निर्णय लिया गया। प्रभावती की प्रबल इच्छा थी कि जो उसे गतियुद्ध में जीतेगा वो उसी के गले में वरमाला डालेगी अतः राजा ने घोषणा कर कहा कि एक माला सिद्धकुट नामक चैत्यालय के द्वार से नीचे छोड़ी जायेगी, जो भी विद्याधर माला छोड़ने के बाद महामेरू पर्वत की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर प्रभावती के पहले उसे जमीन पर पड़ने से पहले ही उठा लेगा वहीं प्रभावती का पति

घोषित किया जायेगा। अतः बहुत बड़े समारोह के साथ प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। कई विद्याधरों ने इसमें भाग लिया। हिरण्यवर्मा प्रभावती को मात देकर विजयी घोषित हुआ अंततः दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया। आदिपुराण में वर्णित उक्त रोचक प्रंसग से स्पष्ट है कि दौड़ प्रतियोगिता समस्या के समाधान के साथ ही उन दिनों मनोरंजन का भी साधन थी। उत्तरपुराण में इस संदर्भ में कोई प्रसंग नही मिलता। तत्कालीन साहित्यों से स्पष्ट है कि परवर्ती समय में दौड़ प्रतियोगिता समाप्त प्रायः हो गयी थी।

कंदुक क्रीड़ाः यह प्राचीन भारत की प्रमुख क्रीड़ा है इस क्रीड़ा का प्रचलन वैदिक काल से मिलता है। यह क्रीड़ा बालक–बालिकाओं में विशेष प्रचलित थी। ग्रन्थों में तरूण स्त्रियों, राजकुमारों द्वारा भी इस क्रीड़ा के द्वारा मनोरंजन किये जाने के साक्ष्य प्राप्त हुए है। महापुराण में उल्लेख है कि राजा जयकुमार ने अपने अतिथियों के स्वागत सत्कार में कंदुक क्रीड़ा का अयोजन किया।[17] इस प्रसंग में नृत्य, संगीत, मधुर वार्तालाप, गज सवारी, वन विहार, वापिका भ्रमण, सरोवर क्रीड़ा का लुत्फ उठाते हुए कंदुक विनोद का आनन्द लिया गया।

कंदुक क्रीड़ा कई रूपों में और कई विधियों से की जाती थी। कंदुक को उछाल कर, उसकों दूर फेंक कर एवं तिरछे रूप में पैर द्वारा उछाल कर विनोद किया जाता था। कंदुक भी कई प्रकार के होते थे, बड़े कंदुक, जो कि आजकल के फुटबॉल के समान होता था, पुरूषों के लिए क्रीड़ा करने में व्यवहृत किया जाता था। छोटे कंदुकों से नारियाँ क्रीड़ा करती थी। प्रमद वनों में अंतपुर की रमणियाँ गैंद को उछाल कर और फेंक कर दौड़–धूप द्वारा क्रीड़ाएँ किया करती थी।

आदिपुराण में तरूणी स्त्री द्वारा लाख के बने हुए गोलक का उल्लेख आया है।[18] यह गोलक क्रीड़ा वस्तुतः दोनों हाथों से की जाती थी। समवयस्का सखियों के बीच कंदुक क्रीड़ा सम्पन्न की जाती थी। गोलक क्रीड़ा बालकों में भी लोकप्रिय थी। उत्तरपुराण में जीवंधर कुमार बाल क्रीड़ा के समय गोलक क्रीड़ा द्वारा मनोरंजन किया करते थे।[19]

स्नानागारः स्नान क्रिया शरीर को स्वस्थ, साफ व प्रसन्न रखने के लिए की जाती थी। राजा–महाराजाओं में यह मनोरंजन का प्रमुख साधन था। आदिपुराण में स्नान को मंगल घोषित करते हुए बताया है कि ललितांग देव के मंगल कार्य करने के पहले उनके लिए स्नान की सामग्री तैयार की गई तदन्तर उन्होंने उत्तम वस्त्र धारण किये।[20] स्नान के पूर्व उबटन भी लगाया जाता था। विशेष तौर पर सुगंधित विलेपन, हल्दी का उबटन लगाया जाता था।[21] शरीर को देदीप्यमान बनाये रखने के लिये स्नान का महत्व था। स्नान करने के लिए सुबह एवं दोपहर का समय सुलभ था। राजा भरत अपनी दैनिक दिनचर्या में प्रायः दोपहर का समय निकट आने पर स्नान करते थे। इस दौरान मधुर संभाषण एवं हास्यपूर्ण कथा द्वारा रानियाँ मनोरंजन करती रहती थी तत्पश्चात सुलभ वस्त्राभुषण धारण कर भोजन करते थे। इस समय परिवार की स्त्रियाँ चमर ढ़ोरना, पैर दबाना, पान देना आदि कार्यो द्वारा विनोद करती थी।[22] स्नान को सभी विनोदों में सर्वश्रेष्ठ व मंगलमय बताया है। राजा जयकुमार ने वन विहार के समय सर्वप्रथम स्नान तद्नन्तर भोजन, वार्तालाप, गीत, नृत्य आदि क्रीड़ाएँ की।[23]

आदिपुराण में मज्जनग्रह या स्नानागार का भी वर्णन आया है। चक्रवर्ती के स्नानागार को जीमूत स्नानागार कहा गया है।[24] अनुमानित तौर पर यह स्नानागार 100 फुट लम्बा और 80 फुट चौड़ा होता था। मध्य में धाराग्रह एवं वापिका अंकित रहती थी। स्नानागार के अतिरिक्त तालाबों के जल में भी स्नान किया जाता है। राजा श्रीपाल ने मार्ग में उत्पन्न हुये परिश्रम को दूर करने हेतु तालाब में स्नान किया था।[25] रानियाँ, राजकुमारियाँ भी स्नानक्रिया द्वारा स्वयं को सुन्दर बनाती थी।[26] स्नान से पूर्व सिर में सुगंधित तेल की मालिश करवाती थी। तद्नन्तर वस्त्र धारण करती थी। स्नान की विधियों का अधिक उल्लेख महापुराण में नही मिलता है।

पशु–पक्षी क्रीड़ाः प्राचीन भारत में लोग परम्परा के अनुसार मन बहलाव के लिए पशु–पक्षी पालते थे तथा उनको स्नेह की दृष्टि से देखते थे। शुक्र, हंस एवं सारस आदि पक्षी मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। महापुराण में **कलहंस**[27], **कुक्कुट**[28], **चकवा (कोक)**[29], **चकवी (कोलकान्ता)**[30], **कोकिल या कोकिला**[31], **उल्लू (क्रौंच)**[32], **गृध्र**[33], **चक्रवाक**[34], **चातक**[35], **दत्युह (काले रंग का पक्षी)**[37], **काक**[38], **गरूड़ (प्रजापति)**[39], **भेरूण्ड**[40], **मयूर**[41], **राजहंस (श्रेष्ठ हंस)**[42], **शिखण्ड़ी (कलगीदार मयूर)**[43], **शुक**[44], **सहसान (मयूर विशेष)**[45], **सारस**[46], **हसं**[47], **एवं हंसी**[48] की मनोरंजनात्मक क्रियाओं का वर्णन मिलता है। पक्षी विवाह का भी उस युग में प्रचलन था। आदिपुराण का कथन है कि पुण्डरीकिणी नगरी में कुबेरदत्त नाम का एक सेठ रहता था। रतिवर नाम का उसका पालतू कबूतर था, परिवार में वह सभी का लाड़ला था। खाने के लिए उसे मीठा अन्न दिया जाता था। सेठजी ने रतिसेना नाम की कबूतरी के साथ उसका विवाह भी कर दिया था।[49]

पक्षी मनोरंजन के साथ–साथ मौसम की भी सूचना देते थे। महापुराण के अनुसार भिन्न–भिन्न मौसम में विभिन्न प्रकार के पक्षी दिखाई देते है। आकाश में बादलों का आगमन देखकर चातक पक्षी मनोहर शब्द प्रकट करता है। चातक पक्षी और मयूर आनन्दित होकर नाचने लगते है।[50] वर्षा के पश्चात् शरद ऋतु आते ही हंसों के मधुर शब्द, चकवा–चकवीं क्रीड़ा, हंस–हंसिनी क्रीड़ा करते है। सारस पक्षियों के मधुर स्वर ध्वनित होने लगते है[51] बसंत ऋतु में कोयल का आम के पेड़ के समीप मनोहर आलाप, भ्रमरों का गुंजायमान होना शुरू हो जाता है।[52] कोयल, कलहंस के मधुर शब्द उद्यान यात्रा, वन विहार के समय मनोविनोद करते थे। मयूरों का असमय में ही नाचना भी नगर समृद्धि का संकेतक है।[53]

महापुराण में उन पशुओं का भी उल्लेख मिलता है जो भार वहन, वाहन, उद्योग–वाणिज्य की दृष्टि से तो उपयोगी थे साथ ही मनोरंजन के भी प्रमुख साधन थे। बकरा[54], हाथी[55], घोड़ा[56], खच्चर[57], ऊंट[58], गाय[59], भैंसा[60], भेड़ा[61], बैल[62] पाले जाते थे। घोड़े की विभिन्न जातियाँ अश्व[63], आजानेय (उच्च जाति के घोड़े)[64], आरट्ट (आरट्ट देश के घोड़े)[65], काम्बोज (काबुली घोड़े)[66], तुरूष्क

(तुर्की घोड़े)[67], तुरंग (तेज चलने वाले घोड़े)[68], तैतिल (तैतिल जनपद के घोड़े)[69], वापेय (वापी देश)[70], सैंधव[71] (सिंधु देष) के घोड़ों का वर्णन मिलता है। उक्त घोड़ों का युद्ध के समय विहार काल में क्रीड़ाएँ करने का वर्णन महापुराण में मिलता है। हाथी की भी विभिन्न किस्मों का वर्णन महापुराण में मिलता है। श्रीपाल ने मदोन्मत्त हाथी को 32 विभिन्न तरह की क्रीड़ाएँ कराकर वश में किया था।[72] हाथी के स्वभाव, आयु एवं उनके बच्चों की क्रीड़ाओं के विषय में जानकारी भी मिलती है।[73] हाथी को वश में करने के संदर्भ में जीवंधर कुमार की 32 क्रीड़ाओं का भी वर्णन दिया गया है।[74]

पशु–पक्षियों एवं मनुष्य–पशुयुद्ध का भी वर्णन महापुराण में दिया गया है। यह क्रिया मानवात्मा में अन्तर्निहित युद्ध प्रवृत्ति को चरितार्थ करती थी। साथ ही संसार के प्रपंच में फंसे लोगों को तत्काल के लिए भी आनन्द देती थी। उत्तरपुराण में भैंसा युद्ध[75], मैढ़ा युद्ध[76], हस्ति युद्ध[77], वज्रतुण्ड एवं धनतुण्ड मुर्गों[78] को आपस में लड़ाने का उल्लेख मिलता है। उक्त पालतू पशु उद्योग वाणिज्य कृषि व यातायात में प्रयुक्त होते थे। घोड़े राजा–महाराजाओं को उपहार में तो प्राप्त होते ही थे, पर उन्हें सेठ, साहुकार, सामंत विदेशों से लाकर भारत में बेचते थे। तत्कालीन युग में इस संदर्भ में सिंधु, तुर्की, गांधार से वाणिज्यिक संबंधो का उल्लेख ज्ञात होता है। ये पालतू जंतु निःसंदेह आकर्षणयुक्त होते थे। इनकी नैसर्गिक क्रीड़ाएँ लोगों का ध्यान आकर्षित कर चित्त का अनुरंजन करती थी। जैन ग्रन्थों में मनोरंजन के प्रयोजनार्थ पशु–पक्षी की स्वाभाविक क्रीड़ाओं का वर्णन ही विवेचनीय है, इसलिए इनका उपयोग मनोरंजन के साधन के रूप में उल्लेखनीय हैं।

जल क्रीड़ा : प्राचीन भारत के विभिन्न मनोरंजन के साधनो में जल क्रीड़ा का प्रमुख स्थान है। जल क्रीड़ा में स्त्री–पुरूष सभी लोग समान रूप से भाग लेते थे। जल क्रीड़ा ग्रह, जलकेलि–वापिका, तालाब, पोखर, दीर्घिका, वनों इत्यादि स्थानों पर स्नान करते समय यह क्रीड़ा की जाती थी। ग्रीष्म प्रधान देश होने के कारण जल क्रीड़ा निश्चय ही मनोरंजन का लोकप्रिय साधन था। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के तीव्र होने तथा अत्यन्त प्रचण्ड एवं तीव्र वायु से चलने पर वज्रजंघ

श्रीमति के साथ परागरज के समूह से पीले व सुगंधित जल से भरी दीर्घिका के जल में जल क्रीड़ा करता था।[79]

जल क्रीड़ा के समय सुवर्णमय पिचकारियों से राजा वज्रजंघ अपनी प्रिया के मुखकमल का सिंचन करता था। उस समय दोनों पिचकारी भरकर एक दूसरे पर छोड़ते थे। जल क्रीड़ा करते समय श्रीमति की भीगी साड़ी शरीर से चिपक जाती थी, तब देवी के स्तन कली के समान, कोमल भुजाएँ मृणाल के समान, ओर मुख खिले हुए कमल के समान शोभायमान हो जाता था। जल क्रीड़ा के इस प्रसंग में नायक–नायिकाओं से विभिन्न प्रकार से क्रीड़ा करते थे। कांताओं को खींच कर पकड़ना, कंधे का स्पर्श करना, मधुर वार्तालाप करना, कर्पूर–केसर से सुगंधित जल की पिचकारी मारना, मुद्रिका (अंगुठी) या अन्य आभूषण को जल में डालकर उसे प्राप्त करने की चेष्टा करना जल क्रीड़ा के अंग है। जल क्रीड़ा में कमल पुष्प को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। दीर्घिका एक प्रकार की लम्बी नहर होती थी जो राजप्रसादो में एक ओर से दूसरी ओर प्रवाहित होती हुई प्रमद वन या ग्रहोद्यान का सिंचन करती थी। बीच–बीच में जल के प्रवाह को रोककर पुष्करिणी, गंधोधक कूप, क्रीड़ावापी इत्यादि निर्मित किये जाते थे। मध्य में किसी स्थान पर जल के प्रवाह को भूतल के भीतर से निकाल कर ऊपर अदृश्य रूप में अंकित किया जाता था। यह प्रवाह आगे विविध प्रकार के पशु–पक्षिओं के मुँह से झरता हुआ दिखलाया जाता था। लम्बी होने के कारण इसका नाम दीर्घिका था। दीर्घिका का तल भाग मर्कत आदि मणि से निर्मित था। और भित्ति स्फटिक मणि के द्वारा निर्मित की जाती थी।[80]

जल क्रीड़ा की थकान मिटाने हेतु धारागृहों में प्रवेश किया जाता था। राजा वज्रजंघ धारागृहों में जिसमें सदैव वर्षा ऋतु बनी रहती थी तथा जो जल से भरा हुआ संतोष को देने वाला स्नानग्रह था[81] वस्तुतः धारागृह[82] प्राचीन भारत का ऐसा जलाशय है जो गर्मी को नष्ट करता था[83], जिसमें कई स्थानों पर फव्वारे के रूप में जल की धाराएँ निकलती थी। यह आयताकार बनाया जाता था और कई स्थानों पर धारायंत्र लगे रहते थे। गिरने वाले जल की धारा कही गजमुख से गिरती थी, कहीं हंसमुख से और कहीं व्यालमुख से। भोज ने

समरांगण सूत्रधार में पांच प्रकार के धारागृहों का निर्देश दिया है।[84] महापुराण के अनुसार धारागृह में अनेक प्रकार के धारायंत्र लगे रहते थे। जिनके द्वारा वर्षा ऋतु के दृश्य को प्रस्तुत किया गया है।[85] प्राचीन समय में सम्राटों की जल क्रीड़ा हेतु दीर्घिका, वापिका, धारागृहों आदि का निर्माण किया जाता था। जल क्रीड़ा अत्यन्त सुख भी प्रदान करती थी। इस संदर्भ में महापुराण में देवी की गर्भावस्था में उसकी सेविकाएँ जल क्रीड़ा के द्वारा देवी का मनोरंजन किया करती थी।[86] जल क्रीड़ा का एक अन्य संदर्भ कुमार ऋषभ देव की क्रीड़ा के प्रसंग में भी आया है। बताया गया है कि कुमार ऋषभ देव वापिकाओं, धारागृहों में सुगंधित जल की धारा के साथ देव कुमारों के साथ जल क्रीड़ा करते थे। इस समय वे पानी के आस्फालन से शब्द करने वाले लकड़ी के बने यंत्रों से क्रीड़ा करते थे।[87] जल क्रीड़ा के प्रसंग में जल युद्ध का भी वर्णन आया है। महापुराण के अनुसार जल युद्ध भरत चक्रवर्ती और बाहुबली के मध्य हुआ था। सरोवर के जल में दोनों भाईयों ने एक दूसरे पर जल फैंककर हार जीत का निर्णय किया था।[88]

आदिपुराण में वर्णित प्रसंगो के आधार पर स्पष्ट है कि जब ऋषभ कुमार देवकुमारों के साथ क्रीड़ा कर रहे थें तब यह जल क्रीड़ा विशुद्ध मनोरंजन का साधन थी, लेकिन अन्य कुछैक तथ्य स्पष्ट करते है कि जल क्रीड़ा उस समय कामभाव के उद्दीपन में सहायक थी।

उत्तरपुराण में श्रीराम व सीता के मध्य जल क्रीड़ा का रोचक प्रसंग मिलता है जिसमें राम सरोवर क्रीड़ा के समय सीता के ऊपर जल क्रीड़ा यंत्रों द्वारा जल की बूंदो का सिंचन करते है तथा जल क्रीड़ा का आनन्द उठाते है[89], वहीं एक अन्य प्रसंग में नेमिनाथ की जल क्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण की रानी सत्यभामा से हुए वार्तालाप एवं अन्य चेष्टाओं से नेमिनाथ अपने राग भाव को व्यक्त करते है।[90] महापुराण में जिस प्रकार जल क्रीड़ा के प्रसंग में नायक–नायिकाओं के काम भाव को प्रदर्शित किया गया है। वह समकालीन अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा संयमित है। इससे यह परिलक्षित है कि जैन आचार्यो ने

तत्कालीन साहित्यों की शैली का अनुसरण करने के बाद भी धर्म की सात्विकता को बनाये रखा।

मानसिक मनोरंजन : मनोरंजन के विविध साधनों में मानसिक मनोरंजन का प्रमुख स्थान है। इसके अंतर्गत वन विहार, द्यूत क्रीड़ा, इन्द्र जाल या जादूगरी, चित्रकला, उद्यान यात्रा, दोलाक्रीड़ा, कथा–कहानी, गोष्ठी, पहेली आदि सम्मिलित है। इन साधनों से मनोरंजन के साथ–साथ मानसिक शक्तियों का विकास होता है।

वन क्रीड़ा : प्राचीन भारत में मनोविनोद के लिए वन विहार के लिए यात्रा करने का उल्लेख मिलता है। सामान्यतः शिशिर ऋतु की समाप्ति के पश्चात वन क्रीड़ा के लिए प्रस्थान किया जाता था। इस समय वृक्षों की सुन्दरता देखते ही बनती थी। आदिपुराण में वृक्षों की इस छटा के सौंदर्य का वर्णन करते हुए बताया गया है कि सुस्निग्ध व सुगंधित पुष्पों की गंध से युक्त मनोहर नागकेशर, पुन्नाग की रेणु से पूर्ण सुगंधित वायु, कोकिल की कूक, चम्पक की सुगंध, माधवीलता का माधुर्य एवं क्रमुक, नारंग, कदली, जम्बु, दाडिम, लवंग, श्रृंग़, केतक आदि वृक्षों की मनमोहक छटा सहज में ही आकर्षण का केन्द्र बन जाती थी।[91] वन क्रीडा शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी सुलभ थी। आदिपुराण में वर्णित है कि रानी मरूदेवी की गर्भावस्था के समय सेविकाएँ वन क्रीड़ा द्वारा रानी का मनोरंजन करती है।[92]

स्त्री पुरूष दोनों ही इस क्रीड़ा में सम्मिलित होते थे। राजा वज्रजंघ अपनी रानी श्रीमती के साथ नंदन वन के साथ स्पर्धा करने वाले श्रेष्ठ वृक्षों से शोभायमान महाविभूतियुक्त गृह उद्यानों में व लतागृहों से शोभायमान, क्रीड़ा पर्वतों से युक्त बाहरी उद्यानों में क्रीड़ा करता था।[93] वनों मे बिखरी हुई पुष्पों की भीनी गंध एवं प्रकृति का रम्य रूप सहज ही आकृष्ट कर लेता था। पुष्प माला, आम्र मंजरियाँ, अशोक कलिका एवं अशोक के पल्लव विषेष रूप से क्रीड़ा का करण बनते थे। तत्कालीन समय में बाल क्रीड़ाओं में वन क्रीड़ा भी शामिल

थी। आदिपुराण में वर्णित है कि कुमार ऋषभ देव नंदन वन में अपने मित्रों के साथ विभिन्न प्रकार से क्रीड़ा कर रहे थे।[94]

पृथ्वी को धूलिरहित करना।

वृक्षों को धीरे–धीरे हिलाना।

वृक्षों के पत्र–पुष्प तोड़ना (पुष्पावचायिका)।

दौड़–धूप कर आनन्दित होना इत्यादि क्रियाएँ वन क्रीड़ा के समय की जाती थी।

स्त्रियों का भी वन क्रीड़ा के द्वारा भरपूर आनन्द उठाने का उल्लेख मिलता है। बताया गया है कि स्त्रियाँ वन विहार के समय लाख के रंग से रंगे हुए पैरों से अशोक वृक्ष का ताड़न करती है।[95] वात्स्यायन के क्रीड़ा कौतुओं में अशोक पाद प्रहार को भी सूचित किया है। ताड़न के पीछे का भाव यह है कि अशोक वृक्ष को हरा–भरा बनाने, पुष्पित करने हेतु उस पर लात बरसाई जाती थी।[96] राजा भरत भी अपनी रानी सुभद्रा के साथ वन–विहार कर मनोरंजन करता था।[97]

हाथी का प्रयोग विशेष तौर पर वन विहार के समय किया जाता था। वर्णित है कि राजा लोकपाल ललितघट नामक हाथी पर बैठकर विहार करने के लिए वन में गया था।[98] महापुराण में पुरूषों का अपनी स्त्री संग वन विहार का वर्णन अनेकों बार आया है। अतः निश्चित ही वन क्रीड़ा प्राचीन समय में मनोरंजन का साधन रही होगी। राजभवन के समीप ही धारागृह, मनोहर वन, कृत्रिम पर्वत भी बने होते थे जहाँ पर भी भ्रमण कर आनन्द उठाया जाता था।[99] राजा के साथ यौद्धा, अन्य मंत्री तथा नगर निवासी भी वन क्रीड़ा के लिए जाते थे। जहां एक तरफ वन क्रीड़ा मनोरंजन का साधन थी वहीं दूसरी तरफ वन में मुनिराज के ध्यान करने से वृक्षों की लताएँ, पुष्पों का नृत्य, पशु–पक्षियों के शांत शब्द सुगन्धित वायु इत्यादि प्रतिविम्बित हो रहे थे।[100] इस प्रसंग में यह बात निहित है कि वन से सांसारिक एवं आत्मिक दोनों ही तरह का मनोरंजन हो रहा था।

युद्ध के समय प्रस्थान होने पर सेना का वन विहार का चित्रण मिलता है। चक्रवर्ती भरत के सैनिक सरोवर के किनारे वृक्षों की छाया में विश्राम करते है। नारियल रस का सेवन करते है।[101] वन में सुपारी के वृक्ष[102], पक्षी के मधुर शब्द[103], व्यंजन की मिर्च[104] इत्यादि वस्तुओं से आनन्द प्राप्त करते है। सिंहल द्वीप की स्त्रियां नारियल की मदिरा पीकर महाराजा भरत का यशगान करती है।[105] केरल देश की नारियाँ अपनी निम्न चेष्टाओं से वन क्रीड़ा का आनन्द उठा रहीं थी।[106]

इलायची, लौंग आदि सुगंधित वस्तुओं के सेवन से

चंदन के गाढ़े लेप से सुशोभित

कोयल के समान मधुर वाणी से

नृत्य

आभूषण

मनोहर गीतों से

वन विहार के समय अन्य–अन्य देश के लोगों से मिलने का अवसर भी प्राप्त होता है। विद्यांचल के वनों के राजाओं ने भरत चक्रवर्ती को आरोग्यवर्धक औषधियाँ भेंट में दी।[107] भेंट में हाथी, हाथी दांत, मोती भी महाराज भरत को प्राप्त हुए।[108] इस सम्पूर्ण प्रसंग में वनों की मनोरम सुन्दरता से वन क्रीड़ा के आनन्द में वृद्धि को व्याख्यायिंत किया गया है। वन क्रीड़ा के प्रंसग में सहकार वन क्रीड़ा भी मनोरंजन से सम्बंधित थी। सहकार वन क्रीड़ा वस्तुतः वसन्त ऋतु की क्रीड़ा है। वसन्त ऋतु के आते ही आम में मंजरी फूट जाती है। इस मंजरी के कषाय रस का पान करते ही कोकिल कूजने लगती है अतः इस समय आनन्दानुभूति का सर्वश्रेष्ठ साधन वन क्रीड़ा को ही माना गया है।

महापुराण में बताया है कि वज्रजंघ मधु के मद से उन्मुक्त हुई स्त्रियों के हरे–भरे सुन्दर वसन्त में अपनी स्त्री श्रीमती के साथ अमराईयों में विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएँ करता था।[109] इस समय वे आम्र कुंज में जाकर कोयल की मधुर आवाज तो सुनते ही थें साथ ही आम्र मंजरी की सुगंधि से अपने मन व आत्मा को भी सुवासित करते थें। आम्रपल्लवों का विविध प्रकार से उपयोग करना, आम्र

मंजरियों को कान में धारण करना एवं लुकाछिपी आदि क्रीड़ाओं को करना सहकार वन क्रीड़ा में सम्मिलित था। वन क्रीड़ा के प्रसंग में पुष्पावचायिका या फूल तोड़ना[110] एवं कल्पावतंसिका[111] अर्थात फूलों के आभूषण बनाना इत्यादि कार्य भी किये जाते थे।

वन विहार के प्रसंग में राजा प्रमद वन में अपने परिवार के साथ क्रीड़ा करता था।[112] यह वन राजप्रसाद से सटा हुआ होता था। प्रमद वन में क्रीड़ा के लिए उद्यान तोरण क्रीड़ा कुत्कील, खात्वलय, जलकेलि–वापिका, कुल्योपकण्ठ, मकरध्वजा–राधनवेदिका, वनदेवता भवन, कदलीकानन, छायामण्डप, धारागृह, लताकुंज, क्रीड़ाशैल आदि बने होते थे।

जुआ/द्यूत क्रीड़ा : तत्कालीन युग में द्यूत क्रीड़ा मनोरंजन का लोकप्रिय साधन होने पर भी जैन ग्रन्थों में इसकी निन्दा की गई है। महापुराण में वर्णित है कि क्रोधज (मद्य, मांस, शिकार), कामज (जुआ, चोरी, वेश्या एवं परस्त्री गमन) इन सात व्यसनों में जुआ के समान घृणित एवं निष्कृष्ट अन्य कोई व्यसन नहीं हैं।[113] जुआरियों के विषय में उल्लेख आया है कि द्यूत क्रीड़ा में संलग्न व्यक्ति क्रमशः सत्य, लज्जा, अभिमान, कुल, सुख, सज्जनता, बंधु वर्ग, धर्म, द्रव्य, क्षेत्र, घर, यश, माता–पिता, बाल–बच्चें, स्त्री एवं स्वयं को नष्ट करता है।[114] जुआ खेलने वाला मनुष्य आसक्ति के कारण कारण न स्नान करता है, न भोजन करता है, न सोता है। इन आवश्यक कार्यो के अवरोध हो जाने से वह रोगी हो जाता है। जुऐ से धन के स्थान पर पाप का संचय करता है, निंदा कार्य करता है, सभी का शत्रु बन जाता है। दूसरों से याचना करता है, धन के लिए अयोग्य कर्म करता है, जिससे बन्धुजन उसे त्याग देते है और राजा से दण्डित हो अनेक कष्ट सहन करता है।[115] उत्तरपुराण में राजा सुकेतु का दृष्टान्त मिलता है जिसने जुएँ में आसक्ति के कारण अपना समस्त राज्य गवाँ दिया।[116] स्त्री वर्ग के लिए भी जुआ खेलने के प्रमाण मिलते है। रानी रामदत्ता ने मंत्री के साथ जुआ खेलकर उसका यज्ञोपनीत तथा उसके नाम की अंगुठी जीत ली थी।[117] युधिष्ठिर का भी राजा दुर्योधन के साथ जुआ खेलने के उल्लेख मिलता है।[118] वास्तव में जुआ मनोविनोद का अच्छा साधन नहीं माना जाता है। यह घर

परिवार एवं समाज के लिए दोषपूर्ण परम्परा थी हालांकि यह क्रीड़ा मनोरंजन तो करती थी, लेकिन फिर भी पुराणों में इसकी सर्वत्र निन्दा की गई है।

इन्द्रजाल / मायाकार / जादूगर : तत्कालीन समाज में इंद्रजाल / जादूगर के लिए जादू तो एक व्यवसायिक विद्या थी लेकिन अन्य लोगों के लिए उससे पर्याप्त मात्रा में मनोरंजन भी प्राप्त होता था। इन्द्रजाल का अर्थ है मिथ्या, प्रतिभास या माया। विक्रिया से विभिन्न रूप धारण कर देव, कुमार ऋषभ देव के साथ क्रीड़ा करते थे।[119] महापुराण में इन्द्रजाल को जादूगरी का खेल अथवा बुद्धि का भ्रम माना गया है[120] जिसकों देखने से लोग कौतुकवश आनन्द से भर उठते थे।

समाज में इन्द्रजाल के द्वारा लोग ग्रामीणों को ठगते थे एवं मनोरंजन करते थे। आदिपुराण में एक स्थान पर स्त्रियों को भी मायाचार की माताएँ कहा गया है।[121] राक्षसों की स्त्रियाँ माया का उपयोग कर अनेक प्रकार के रूप बना लेती है। शूपर्णखा ने अपनी इन्द्रजालिक विद्या से राम व लक्ष्मण, सीता का अनुपम सौन्दर्य देखने हेतु बुढ़िया का रूप बनाया था।[122] रावण के कहने पर मारीच ने जादू विद्या से हरिण के बच्चे का रूप बनाया था।[123] विभिन्न रंगों वाले इस हिरण ने सीता का मन प्रसन्न किया जब राम इसको लेने गये तो हरिण ने कभी गर्दन मोड़कर पीछे देखना, कभी दूर तक लम्बी छलांड़ भरना, कभी धीरे–धीरे चलना, कभी दौड़ना, कभी घास के अंकुर खाना, कभी बहुत पास एवं दूर चले जाना आदि क्रीड़ाओं द्वारा रामचन्द्र जी के समक्ष माया दिखलाई।[124]

उत्तरपुराण में राजकुमार प्रद्युम्न की अनेक मायामयी क्रीड़ाओं का वर्णन मिलता है। प्रद्युम्न ने नरेन्द्रजाल, सुरेन्द्रजाल और प्रस्तर नामक विद्या से अनेक रूप बनाकर नगरी में सबकों कौतुक भरी क्रियाएँ दिखाकर आनंदित किया।[125] हनुमान ने भी सीता का पता लगाने के लिए भ्रमर का रूप धारण कर लंका नगरी में भ्रमण किया।[126] नन्दन वन में प्लवग विद्या के द्वारा बन्दर का रूप बनाकर वन की रक्षा करने वाले पुरूषों को निद्रा से युक्त कर दिया।[127]

चित्रकला : प्राचीन भारत के विभिन्न कालों में प्रचलित मनोरंजनों में चित्रकला का महत्वपूर्ण स्थान है वस्तुतः इसे एक रचनात्मक मनोरंजन की श्रेणी में गिना जाता है क्योंकि चित्रकार अपनी रचना या कल्पना के द्वारा चूलिका अथवा लेखनी से भिन्न–भिन्न प्रकार की वस्तुओं एवं जीवधारियों की आकृति अंकित करता है। चित्रों में वह अपने मन के विशालतम महासागर में छिपी हुई अनगिनत रचनाओं का सृजन करता है। इस प्रक्रम में उसे आवश्यकता होती है सजीवता की अर्थात् किसी दृष्य, व्यक्ति विशेष, घटना को चित्रित करने के लि उसके बाह्य अंगो के साथ के साथ सजीवता भी लाना आवश्यक है। महापुराण में भगवान को दीक्षा महोत्सव को सजीव चित्र की भांति वर्णित किया गया है। बताया गया है कि दीक्षा के लिए जाते हुए भगवान के दीक्षा उत्सव में सम्मिलित हुए देवों के नृत्य, गीत मृदंग, मंगल गीत, अप्सराओं से युक्त विमान एक अपूर्व चित्र की भांति लग रहा है।[128]चित्रांकन विनोदार्थ तो होता ही था पर विरह की दीर्घ अवधि को काटने के लिए एवं अथवा मन बहलाव के लिए भी किया जाता था।

महापुराण में भित्ति चित्रों[129] के निर्माण के माध्यम से भी मन बहलाया जाता था, अष्टमंगल द्रव्य, तीर्थकर की माता के सोलह स्वप्नों को भी भित्ति चित्रों द्वारा मूर्त बनाने का प्रयास किया गया है। दीवारों पर विभिन्न व्यक्तियों और पशु–पक्षियों की आकृतियाँ अंकित की जाती थी। उत्तरपुराण से विदित होता है कि नगर के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए दीवारों पर हाथी घोड़े के चित्र बनाये जाते थे।[130] वस्तुतः भित्ति चित्र बनाने से पूर्व दीवार को चिकना करने के लिए उपलेप लगाया जाता है। उपलेप लगाने के बाद रेखांकन, फिर आलेखन तत्पश्चात रंग भरा जाता था। छाया चित्रों का भी निर्माण किया जाता था।

महापुराण मे चित्रपट बनाने का वर्णन कई जगह पर आया है। श्रीमती द्वारा जिस चित्रपट का निर्माण हुआ था। उसमें उसने ललितांग देव के जीवन का पूर्ण अंकन किया था।[131] वास्तव में उस समय चित्रपटों में व्यक्तिगत जीवन की गूढ़ एवं रहस्यपूर्ण घटनाएँ अंकित की जाती थी। जिनका पता उन्हीं लोगों को रहता था जो घटना से संबन्धित रहते थे। श्रीमती ने स्वयंप्रभा के जीवन की

अनेक रहस्यपूर्ण रोचक घटनाओं को अंकित किया था। सर्वप्रथम उसने श्रीप्रभ विमान चित्रित किया तथा उसमें ललितांग एवं स्वयंप्रभा को समीप ही बैठा दिखलाया। कल्पवृक्षों की पंक्तियाँ, विकसित कमलपूर्ण सरोवर, मनोहर दौलागृह एवं अत्यन्त सुन्दर कृत्रिम पर्वत चित्रित किये गये थे।[132] एक ओर प्रणयकोप कर परांगमुख बैठी हुई स्वयंप्रभा दिखलाई गयी थी जो कल्पवृक्षों के समीप वायु से आहत लता के समान सुशोभित होती थी,[133] सरोवर के तट भाग पर मणियाँ फैली हुई थी तथा प्रभा रूपी परदा से तिरोहित मेरू पर्वत के तट पर मनोहर क्रीड़ाएँ[134] करते हुए दम्पत्ति चित्रित किये गये थे। चित्रपट में अंतःकरण में छिपे हुए प्रेम को भी चित्रित किया गया था। ईर्ष्या का अभिनय करती हुई स्वयंप्रभा ने हठपूर्वक ललितांग देव को गोद से हटाकर अपने पैर को शैय्या पर रख दिया था।[135] एक और स्वयंप्रभा मणिमय नूपुरों की झंकार से मनोहर अपने चरण कमलों द्वारा ललितांग का ताड़न करना चाहती थी पर गौरव के कारण सखी तुल्य करधनी ने उसे इस क्रिया को करने के लिए रोका था।[136] इधर ललितांग देव को भी बनावटी क्रोध किये हुए दिखाया गया था और उसे प्रसन्न करने के लिए स्वयंप्रभा को उसके चरणों में नतमस्तक किये हुए प्रदर्शित किया था।[137] चित्र में छूठी बातों को वज्रजंघ ने प्रकट किया था जो यह थी कि प्रणयकुपिता स्वयंप्रभा को प्रसन्न करने के लिए ललितांग उसके चरणों में पड़ा हुआ था और स्वयंप्रभा अपने कर्ण फूल से उसका ताड़न कर रही थी।[138] स्वयंप्रभा के पैरों पर लगे महावर की छाप ललितांग के वक्षस्थल पर अंकित हो गयी थी।[139] ललितांग ने स्वयंप्रभा की चित्रकारी कुशलता की प्रशंसा भी की थी।[140] इस प्रकार के रहस्यमय चित्रपट के गूढ़विषय लोगों को कौतुक भरा आनन्द देते थे।

आदिपुराण में चित्रशाला[141] का भी उल्लेख किया गया है। श्रीमती द्वारा निर्मित चित्रों को पंडिता धात्री जिनालय में चित्रशाला मे फैला देती है तथा लोगोंकी परीक्षा करने हेतु वहाँ बैठ जाती है। वर्णित है कि जिनालय के एक भाग में चित्रशाला हुआ करती थी जिसमें कई प्रकार के चित्र टंगे हुए थे। इन चित्रशालाओं में मनोरंजनार्थ चित्रों का भी अंकन किया जाता था। उस युग के जिनालयों में एक भाग चित्रशाला का अवश्य रहता था ये चित्रशालाएँ बहुत ही

मनोग्य, स्वच्छ एवं सुन्दर होती थी। चित्रशाला की दीवारें भी चित्रित होती थी। चित्रशाला में धर्मनायकों, पुराणपुरूषों, ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं शलाका पुरूषों के चित्र टंगे रहते थे। चित्रशाला में दर्शकों के आने–जाने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती थी। प्रेमी–प्रेमिकाओं का पता लगाने के लिए जीवन सम्बन्धी गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन इसी स्थान पर किया जाता था। विभिन्न प्रकार के चित्र, धूलिचित्र, काष्ठचित्र, पाषाणचित्र आदि रहस्यमय चित्र भी चित्रशाला में उपलब्ध होते थे। प्रतीक चित्रों तथा व्यक्ति चित्रों का आलेखन स्थान होने के साथ ही चित्रशाला एक केन्द्र स्थान था जहाँ चित्रकार अपने–अपने चित्रों की चर्चा–वार्ताएँ करते थे।

चित्रपट द्वारा पूर्वजन्म के सम्बन्धों की स्मृति भी हुआ करती थी। राजा हिरण्यवर्मा के चित्रपट को देखकर प्रभावती को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हुआ तथा प्रभावती के चित्रपट को देखकर हिरण्यवर्मा को भी अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त जानकर एक दूसरे के प्रति प्रीति का अनुभव हुआ।[142]

उस युग में चित्रकला आर्थिक मनोरंजन भी करती थी, विभिन्न प्रकार के चित्रों को खींच कर बेचा जाता था आदि तीर्थकर ऋषभदेव ने अपने पुत्र अनंतविजय को चित्रकला संबंधी उपदेश दिया था तथा इस कला के सूक्ष्माति सूक्ष्म तत्वों का प्रतिपादन किया था।[143] उस समय निर्मित चित्रकला शास्त्र में एक सौ से अधिक अध्याय थे परन्तु यह भी ग्रन्थ आज उपलब्ध नही है।[144] विलासपूर्ण चित्रों को देखकर कन्यायें या राजकुमार उन पर आकर्षित हो जाया करते थे[145] तथा प्रेम की डोर में बंध जाया करते थे। महापुराण में चित्रगोष्ठी[146] द्वारा भी लोग मनोरंजन किया करते थे। चित्रगोष्ठी के माध्यम से चित्रकार किसी भी दृश्य, आकृति और कथित भावनाओं को दर्शकों के मन में संचरित कर देते थे तथा व्याख्यान द्वारा उन निर्जीव चित्रों का मन में सजीवतम अंकन हो जाता था। शास्त्र विनोद – इस प्रकार के मनोरंजन में कथा, गोष्ठी, प्रहेलिका, काव्यसमस्यापूर्ति आदि का समावेश किया गया है। इन साधनों के माध्यम से समाज के हर वर्ग का आनन्द होता था।

कथा/कहानीः प्राचीन समय में पुस्तकादि का प्रचार सीमित होने के कारण कहानी सुनाने वालों, सुभाषित या सुक्ति कहने वालों, वाचकों, कथावतारों और कथकों की खूब लोकप्रियता थी। राजभवनों में राजा, रानी और राजकुमारों का मन बहलाने के लिए सदैव उनकी मांग बनी रहती थी। उत्तरपुराण में विदित् है कि नागदत्त जो कि उत्तम कवि था उसने राजा को कई श्लोक सुनाकर उनका मनोरंजन किया।[147]

यात्रा के समय मार्ग में कथा–कहानी सुनाकर मनोरंजन किया जाता था। आदिपुराण से ज्ञात होता है कि जय कुमार अपने परिवार के अन्य सदस्यों एवं पत्नी सुलोचना के साथ मार्ग में मनोहर कथाएँ कर सबका मन बहला रहा था।[148] मार्ग में पड़ने वाली गंगा नदी की उत्पत्ति सम्बन्धी कथा का वर्णन भी जय कुमार ने सबको सुनाया।[149] आख्यान सुनाकर भी लोग मनोरंजन करते थे।[150] आदिपुराण में कथा सुनाने वालों को कथक कहा गया है[151] जिसके सुनने से हेय और उपादेय का निर्णय हो उसे कथा कहते है।[152] उत्तरपुराण में कथक उसे कहा गया है जो रागादि दोषों से रहित हो और अपने दिव्य वचनों के द्वारा निरपेक्ष होकर भव्य जीवों का उपकार करता हो।[153] धर्म, अर्थ और काम का कथन करना कथा कहताती है।[154] आदिपुराण में कथा के दो भेद बताये गये है। जिसमें जीवों को स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है वही धर्म है और उससे संबंध रखने वाली कथा सद्धर्म कथा कहलताी है।[155] धर्म कथा से रहित कथा विकथा कहलाती है।[156] कथा के सात अंग बताये गये है। दृव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, भव, महाफल और प्रकृत इन सातों अंगो से भूषित अलंकारों से सज्जित कथा नटी के समान सरस होती है तथा लोगों का मनोरंजन करती है।[157] वास्तव में कथा का उद्देश्य है मनोरंजन के साथ धर्मार्थ फल की प्राप्ति।

महापुराण में विभिन्न कथा कहानियाँ सुनाकर लोग एक–दूसरे का मनोरंजन करते थे जैसे शूरवीरों की कथा[158], हसीं विनोद की कथा[159], गंगा संबंधी कथा[160], अप्सराओं की कथा[161], प्रवास कथा[162], सुख–दुख संबंधित कथा।

आदिपुराण में कथकों में जो–जो गुण होने आवश्यक है उनकी लम्बी सूची दी गई है।[163] कहा गया है कि कथा सुनाने वाला सदाचारी, स्थिर बुद्धि,

इन्द्रियों को वश में रखने वाला, सुदर्शन, स्पष्ट परिमार्जित वचनयुक्त, प्रियभाषी, प्रतिभाशाली, गम्भीर, अनेक प्रश्न तथा कुतर्को को सहने वाला, तुरत बुद्धि वाला, दयालु, प्रेमी, सहनशील, उदार स्वभाव वाला, दूसरों के अभिप्राय को समझने में पुर्ण, समस्त विद्याओं का जानकार, धीर, वीर, अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर विषय को स्पष्ट करने वाला, संस्कृत–प्राकृत आदि भाषाओंमें पुर्ण, अनेक शास्त्र और कलाओं का जानकार हो कथा बाँचते समय न तो वह भौं चलावें, न किसी पर आक्षेप करें और न ही जोर से बोले। सदैव सत्य, प्रमाणित वचन इस प्रकार बोले जिससे किसी का चित्त न दुखे। अयुक्तियों का परिहार कर तथा युक्तिपूर्ण विचार कर कथा सुनावे। अंत में कहा गया है कि सुनने वालों की योग्यता के साथ मेल रखकर कथा वाचन करना चाहिए। कथा शोक से ग्रसित मनुष्यों का शोक भी दूर करती थी तथा मन बहलाने का कार्य करती थी।[164]

महापुराण में धर्मकथा के चार अंग आक्षेपिणी कथा, विक्षेपिणी कथा, संवेदिनी कथा, निर्वेदिनी कथा बताये है।[165] इन कथाओं के श्रवण से श्रृंगार, वीर, रोद्र, भय, करूण एवं शांत रसों का संचार किया जाता था। जल्पकथाओं / कल्पित कथाओं को सुनकर भी आनन्द की प्राप्ति होती थी।[166]

गोष्ठी : महापुराण में मनोविनोद के लिए विभिन्न प्रकार की गोष्ठियों का भी निर्देश मिलता है। गोष्ठियों में सम्मिलित होकर नाना प्रकार से मनो–विनोद एवं आनन्दानुभूति की जाती थी। माता मरूदेवी के मनोरंजन हेतु देव कुमारियाँ विभिन्न प्रकार की गोष्ठियाँ सम्पन्न करती थी। बाल्यावस्था में वृषभदेव ने नाना प्रकार की गोष्ठियों की कार्यवाही में सक्रिय भाग लेकर लोकप्रियता प्राप्त की थी। प्रसंगतः कहा गया है कि वे चित्रादि खींचने से संबंध कलागोष्ठी में योग देते, कदाचित पदगोष्ठी में बैठकर वैयाकरणों के साथ उस शास्त्र की चर्चा करते, कभी काव्य गोष्ठी, कभी जल्प गोष्ठी में भाग लेकर वाद–विवाद करते, कभी नृत्य गोष्ठी, कभी गीत गोष्ठी, कभी वादित्र गोष्ठी तो कभी वीणा गोष्ठी में चले जाते थे। इस प्रकार गोष्ठियों द्वारा सामूहिक मनोरंजन होता था। एक अन्य जगह राजा महाबल के जन्मगाँठ के उत्सव के दिन भी गोष्ठी का आयोजन का विस्तृत वृतांत मिलता है।[167]

विद्या संवाद गोष्ठी[168] में सभी विषयों के पण्डित विद्वान अपने–अपने विषयों में चर्चा–वार्ता करते थे तथा दूसरे के ज्ञान की परीक्षा करते थे। मुख्यतः दर्शन, काव्य, कथा, कामशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, व्याकरण, गणित, ज्योतिष, भूगोल जैसे विषयों के पण्डित आपस में वाद–विवाद करते थे। ये सभी विद्वान शास्त्रार्थ या शास्त्र चर्चा वीतराग कथा के रूप में करते थे। इस प्रकार राजा तथा राजभवन में उपस्थित सभी लोगों का इस गोष्ठी के माध्यम से मनोरंजन के साथ ज्ञान भी बढ़ता था।

स्त्री वर्ग का भी उन दिनों संगीत गोष्ठियों में भाग लेने का उल्लेख मिलता है। रानी मरूदेवी **संगीत गोष्ठी** में अपने उत्तम कंठ से विभिन्न राग युक्त संगीत से सभी के चित्त का अनुरंजन करती थी।[169] वास्तव में गीत गोष्ठी में अनेक प्रकार के गायक सम्मिलित होकर श्रोताओं का मनोरंजन करते थे। गीत का अभ्यास किया जाता था। गायक गुणवान, पक्षपातरहित, संवाद, से परांगमुख, प्रौढ़, प्रियवंद, वाग्मी, मेघावी, इंगितज्ञ, विवेकी, रसिक, रागद्वेष वर्जित, भावज्ञ, हदयज्ञ, धर्मात्मा, प्रतिभावादी, सत्यवादी तथा गीतवाद्य विशेषज्ञ होते थे। इन गोष्ठियों में दर्शकों का संगीत संबंधी ज्ञान तो बढ़ता ही था साथ में मनोरंजन भी होता था। बालक आदि कुमार भी गीत गोष्ठी के माध्यम से मन बहलाया करते थें।[170]

गर्भावस्था में माता मरूदेवी का मन बहलाने के लिए देवांगनाएँ नृत्य गोष्ठी का भी आयोजन करती थी।[171] **नृत्य गोष्ठी** में नर्तक के हावभाव, अंग, अपांग, प्रत्यंग, दृष्टि एवं अनेक प्रकार की शरीर की क्रियाएँ मनोरंजनवर्धक का कार्य करती थी। ये नृत्य गोष्ठियां उत्सव, हर्ष, जय, काम, त्याग, विलास, विवाद आदि अवसरों पर आयोजित की जाती थी। विवाह, पुत्र जन्मोत्सव एवं राज्याभिषेक के अवसर पर उत्तम कोटि के नर्तकों को बुलाकर नृतगोष्ठियों का सम्पादन होता था। नृत्यगोष्ठी की विशेषता इस बात में रहती थी कि दर्शक नृत्य का अवलोकन कर अपना मनोरंजन करते थे। नृत्यगोष्ठी के समान ही **प्रेक्षणगोष्ठी**[172] भी तत्कालीन समाज में प्रचलित थी। इसमें अनेक नर्तक और

नर्तकियों समुदाय रूप में गोलाकार झुण्ड में नृत्य करती थी। विभिन्न हावभाव एवं मुद्रा द्वारा दर्शकों का मनोरंजन किया जाता था।

वादित्र गोष्ठी[173] में वाद्यकला का प्रदर्शन किया जाता था। विभिन्न प्रकार के वाद्यों मृदंग, वीणा, मुरज, तबला, बांसुरी आदि के माध्यम से गीतानुगवाद्य, नृत्यानुगवाद्य का प्रयोग किया जाता था। कुछ वाद्य तो गीत का अनुसरण कर उसके साथ बजते थे ऐसे वाद्य गीतानुग तथा कुछ नृत्य के समय बजते थे ऐसे वाद्य नृत्यानुग, गोष्ठी में सम्मिलित व्यक्ति विभिन्न वाद्यों का श्रवण कर आनन्द को प्राप्त होते थें।

माता मरूदेवी के मनोरंजन के लिए **कथा गोष्ठी**[174] का भी आयोजन होता था। देवांगनाएँ माता मरूदेवी को घेरकर सभी इकठ्ठे होकर कहानी सुनाती थी। इन कथाओं में कई मनोरंजक घटनाएँ, ईर्ष्या, मद, मोह आदि भावों से युक्त मनोरम आख्यान एवं ओजस्वी चरित्रों से युक्त कथाऐं गोष्ठी के माध्यम से प्रस्तुत की जाती थी। इस युग में अधिकतर सत्कथा द्वारा श्रोता को आनन्दित किया जाता था तथा कथा के माध्यम से श्रृंगार, वीर, रौद्र, भय, करूण एवं शांत रसों का संचार किया जाता था। कथागोष्ठी द्वारा नायक–नायिका भी परस्पर मनोरंजन किया करते थे। कथा गोष्ठी के साथ ही **जल्पगोष्ठी**[175] अर्थात कल्पित कथाऐं भी लोगों को आनन्दित करती थी। इसमें मनोरंजक लतीफे सुनाऐं जाते थे। कथागोष्ठी एवं जल्पगोष्ठी में प्रमुख अंतर यह है कि कथागोष्ठी में कथाऐं मनोरंजन के साथ–साथ शिक्षाप्रद भी होती थी पर जल्पगोष्ठी में कथाएँ केवल मनोरंजक ही होती थी।

महापुराण के अनुसार उस समय लोग विभिन्न कलाओं का प्रदर्शन करके मनोरंजन किया करते थे। केरल देश के राजा **कलागोष्ठी**[176] करानें में सर्वश्रेष्ठ थे। केरल देश के अतिरिक्त अन्य कई देशों जैसे कर्नाटक देश के राजाओं को हरिद्रा, तांबुल और अंजन विशेष प्रिय थे।[177] आन्ध्र देश के अधिपति कला के प्रति विशेष रूचि नही रखते थे।[178] कलागोष्ठी में संगीत, नृत्य, गीत, चित्र के अतिरिक्त 64 प्रकार की कलाओं का प्रदर्शन किया जाता था। कलागोष्ठी में गायक–वाद्कों के अतिरिक्त अन्य कलाओं के विशेषज्ञ भी उपस्थित रहते थे।

इस प्रकार उपयोगी एवं ललित दोनों प्रकार की कलाओं का प्रदर्शन कर प्रस्तोता व दर्शक मनोरंजन किया करते थे।

महापुराण में तीर्थंकर ऋषभ देव के मनोरंजन के लिए **पदगोष्ठी**[179] का आयोजन किया जाता था। इस गोष्ठी में शास्त्रीय वार्तालाप किया जाता था। यह व्याकरण संबंधी गोष्ठी भी कहलाती थी। राजसभा में आयोजित यह गोष्ठी सभा में उपस्थित समस्त लोगों का ध्यान आकर्षित करती थी। यह शुष्क विषय को रसमय बनाकर मनोरंजन करती थी।

पदगोष्ठी के साथ ही **काव्य गोष्ठी**[180] का भी कवि समाज द्वारा आयोजन किया जाता था। इस गोष्ठी में कवि नाना अलंकारों से मनोहर वचनों तथा प्रसादगुण पूर्ण सुभाषितों से विशिष्ट मनुष्यों के हृदयों में आनन्द उत्पन्न कर देते थे।

माता मरूदेवी का मन बहलाने के लिए देवांगनाएँ **वीणागोष्ठी**[181] का भी आनन्द लेती थी। इस गोष्ठी में कई प्रकार की वीणाओं द्वारा स्वर उत्पन्न किया जाता था। यह आकर्षक स्वर सभी को आनन्द उल्लास से भर देता था। महापुराण में वीणा के प्रकार व बजाने की विधियाँ इत्यादि से गोष्ठियों में मनोरंजन किये जाने का वर्णन प्राप्त होता है। तीर्थकर के मनोरंजन हेतु देवों द्वारा वीणागोष्ठी की योजना प्रस्तुत की गई थी।[182]

वीणा गोष्ठी के समान **चित्रगोष्ठी** भी ऋषभ देव का मनोरंजन करती थी।[183] इस गोष्ठी में अनेक चित्रकार अपनी तुलिका का कौशल प्रदर्शन कर रमणीय चित्रों का निर्माण करते थे। चित्र गोष्ठी के माध्यम से वे पशु पक्षियों की आकृति, नर–नारियों या युगल चित्र आराध्य देवी–देवताओं का चित्रांकन, प्राकृतिक दृश्यों जैसे सरिता, उपवन, वन, पेड़–पौधें, पुष्प, लताओं का अंकन, श्रमिक व्यक्तियों का श्रम करते हुए तथा विभिन्न कल्पित आकृतियों का अंकन, प्रदर्शन एवं विश्लेषण किया जाता था। जिनालय में स्थित चित्रशाला में प्रदर्शित चित्रों के माध्यम से चित्रों की व्याख्या तथा विशिष्टता प्रस्तुत की जाती थी, इस प्रकार चित्रगोष्ठी चित्रकार एवं चित्रप्रेमी दोनों के मन को आनंदित करती थी।

महापुराण में **धर्मगोष्ठियों**[184] के माध्यम से आत्मिक आनन्द की प्राप्ति के संकेत भी मिलते है। इस गोष्ठी में जिन प्रतिमाओं का स्तवन, तत्व चर्चा, भगवान के गुणों का चिंतन, पूजा इत्यादि धार्मिक कार्यो का आयोजन किया जाता था। इस गोष्ठी में धर्म चर्चा करने में निपुण विद्वान भाग लेते थे तथा दर्शको को आनन्दित करते थे। गोष्ठी का वास्तविक अर्थ मनोरंजन करना है और महापुराण कालीन भारत में गोष्ठियों में सम्मिलित होकर आनन्द का सृजन किया जाता था।

पहेली : पहेली भी उस युग में मनोरंजन का प्रमख साधन थी। उस समय पहेली करना एवं समझना बहुत बड़ी बात थी। देवांगनाएँ मरूदेवी से नाना प्रकार की पहेली पूछकर उनका मनोरंजन करती थी।[185] राजा भी अपने राज्यकार्यो को समाप्त कर भोजन ग्रहण करने के पश्चात पहेली द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करता था। इसके लिए अनेक विद्वान, चतुर, ज्ञानी, साहित्यदाता, सम्मिलित होते थे तथा पहेली पूछने तथा उत्तर देने का कार्य किया जाता था। इस क्रिया में जय–पराजय का भी निर्णय लिया जाता था। इस प्रकार प्रश्नोत्तर विधि द्वारा समस्त व्यक्तियों के ह्दय मे कौतूहल के साथ मनोरंजन का संचार किया जाता था। महापुराण में कई पहेलियों का उल्लेख मिलता है। **अंतर्लापिका, एकालापक, बहिर्लापिका, क्रियागोपिता, प्रश्न, स्पष्टबंधक, बिन्दुमान, बिन्दुच्युतक, मात्राच्युतक प्रश्न, व्यंजनच्च्युतक, अक्षरच्च्युतक, प्रश्नोत्तर, एकाक्षरच्च्युतकपाद, निहतैकालापक, आदिविषम्रन्तरालापक, प्रश्नोत्तर, बहिरालापकमन्तविषय प्रश्नोत्तर, गोमुत्रिका** आदि पहेलियाँ थी। स्वरूपप्रश्ना पहेली के अंतर्गत किसी के स्वरूप को तथा हेतुप्रश्ना में किसी वस्तु के हेतु को पूछा जाता था। अक्षर सार्थक और पदसार्थक पहेली का उत्तर प्रायः अक्षर या पदों के अर्थ द्वारा ही निकाला जाता था। इसमें मध्य, अंत तथा प्रारम्भ का अक्षर या पद छोड दिया जाता था।

दोला क्रीड़ाः प्राचीनकाल में दोला केलि या झूला स्त्रियों में विशेष रूप से मनोरंजन का सार्वजनिक साधन था। महापुराण में अनेक स्थानों पर दोला क्रीड़ा का उल्लेख मिलता है। दोला क्रीड़ा करने वाली नारियाँ एक दूसरे के दोले को

पेंग लगाकर आगे की ओर बढ़ाती थी। झूलते समय उनका मन अति चंचल रहता था। मधुर–मधुर गान द्वारा अपना एवं श्रोताओं का मनोरंजन करती थी।

पुरूष भी स्त्रियों के साथ झूले पर झूलते थें महापुराण से ज्ञात होता है कि राजभवन में दोलागृह नाम का कक्ष बना होता था, स्वयंप्रभा इसी दोलागृह में ललितांग के साथ झूला करती थी।[186] लताओं की बनी दोला का भी उल्लेख मिलता है।[187] महापुराण से विदित होता है कि स्त्रियाँ अधिकतर बसन्त काल में झूले पर बैठकर झूले का आनन्द लती थी। झूलते समय स्त्रियों के गीत गाने का भी उल्लेख मिलता है।[188] इस प्रकार हम देखते है कि महापुराण कालीन प्राचीन भारत में दोला क्रीड़ा का समाज में विषेष प्रचार था तथा स्त्रियों के लिए यह मनोरंजन का विशुद्ध साधन था।

उत्तरपुराण में दोला क्रीड़ा का कोई विशेष वर्णन उपलब्ध नही है। इसके पीछे यही कारण हो सकता है कि दोला क्रीड़ा जो कि प्राचीन काल में विशुद्ध मनोरंजन का साधन थी। धीरे–धीरे पुरूषों के इसमें सम्मिलित होने पर यह काम भाव जागृत करने का महत्वपूर्ण साधन बन गयी। संभवतः इसी कारण आचार्य गुणभद्र ने अपने उत्तरपुराण में इस क्रीड़ा की कोई विशेष चर्चा नही की है।

उद्यान यात्राः प्राचीन काल में उद्यान यात्रा भी मनोरंजन का प्रमुख साधन था उद्यान यात्रा में राजा, राज कुमार, रानियाँ, साधारण जन के साथ–साथ मित्र जन भी सम्मिलित होते थे। घरों में रहते–रहते जब लोग ऊब जाते थे, तब लोग बाहर की तरफ हवा खानें के निए बाग–बगीचे की तरफ जाते थे। वहां वे जितने समय रहते आनन्द में मग्न होकर जीवन का मजा लेते। राजा भी राज्य कार्य से थक कर चूर होने पर रानियों के साथ उपवन में जाया करते थे।

इस सन्दर्भ में महापुराण से ज्ञात होता है कि राजा महाबल अपने चारों मंत्रियों पर राज्यभार रखकर समय–समय पर रानियों के साथ उद्यानों में क्रीड़ा किया करता था।[189] ये उद्यान नंदन वन के समान ही सुन्दर हुआ करते थे तथा यहाँ स्थित घने मंदार के वृक्ष, शीतल सुगंधित वायु समस्त मानसिक संताप को दूर कर मन को प्रसन्न करती थी। तत्कालीन समय में दो तरह के उद्यान

प्रचलित थें। गृहोद्यान, बहिर्उद्यान। राजा वज्रजंघ भी नंदन वन की तुलना करने वाले श्रेष्ठ वृक्षों से शोभायमान तथा महाविभूति से युक्त घर के उद्यानों में तथा कभी लतागृहों एवं क्रीड़ा पर्वतों से सुसज्जित बाहर के उद्यानों में रानी श्रीमती के साथ क्रीड़ा किया करता था।[190] उद्यान जहां एक ओर मनोरंजन के साधन थे। वही उद्यानों की सुन्दरता से आकर्षित होकर उद्यान के स्वामित्व की लड़ाई भी परिवार के मध्य हो जाया करती थी। महापुराण में उद्यान यात्रा के संदर्भ में ही मनोहर उद्यान को लेकर युद्ध करने का उल्लेख है।[191]

सामाजिक मनोरंजन :

संगीतः महापुराण को पढ़ने से ज्ञात होता है कि संगीत उस युग में भी मानव जीवन का अभिन्न सूत्रधार था संगीत के माध्यम से मानव जीवन में रस, उत्साह, उमंग एवं कार्य उत्प्रेरित क्षमताओं की वृद्धि हुई है। संगीत अर्थपूर्ण ध्वनि की जीती जागती प्रतिमूर्ति है जो आत्मिक, मानसिक आनन्द प्रदान करती है। नवजात शिशु से लेकर मरणासन्न वृद्ध तक के आत्मिक मनोरंजन का प्रमुख तत्व बनता है संगीत।

महापुराण में संगीत, वादित्र तथा नृत्यगोष्ठियाँ के आयोजन का उल्लेख उपलब्ध है। जैन सूत्रों में संगीत को बहत्तर कलाओं में स्थान प्राप्त है। जैन ग्रन्थों के अनुसार संगीत में इन तीन तत्वों—गीत, संगीत और नृत्य का समावेश हुआ हैं महापुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय के भारत में उत्सवों एवं त्यौहारों के अवसरों पर स्त्री व पुरूष नाच व गाकर अपना मनो—विनोद करते थे। जन्मोत्सव, विवाहोत्सव एवं राज्याभिषेकोत्सव के अवसर पर अनेक प्रकार नृत्य और गान सम्पन्न किये जाते थे। षडज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरों का प्रयोग होता था। महापुराण में स्वर के शुद्ध और देषज दो प्रकार उल्लिखित है।

गीतो से मनोरंजन : महापुराण में गायन अथवा गीत संबंधी अनेक उल्लेख मिलते है। संगीत को यहाँ गांधर्व संज्ञा प्राप्त होती है और गायकों को गान्धर्व से निरूपित किया गया है। इन्द्र की सात प्रकार की सेना में गान्धर्व भी हुआ करते

थे। जो कि परिस्थिति अनुसार गीत गाकर अन्य लोगों का मनोरंजन करते थे। किन्नरी देवियाँ भी गान्धर्वो का साथ देकर भगवान के जन्मकल्याण महोत्सव संबंधित मधुर गान गाती थी। महापुराण में वर्णित है कि वृषभदेव संगीत का पूर्ण अभ्यास करते थें तथा संगीत की सभी विद्याओं, गुण दोषों का दूसरों को भी अभ्यास कराते थे। महापुराण में निम्न आठ गुणों की पालना से संकेत मिलता है।

1. **पूर्ण कला से गीत गाना**
2. **राग को मधुर रंजक बनाकर गाना।**
3. **अन्य स्वर विशेषों से अलंकृत करके गाना।**
4. **स्पष्ट गाना।**
5. **मधुर स्वरयुक्त गाना।**
6. **ताल वंश के स्वर से मिलाकर गाना।**
7. **मूर्च्छनाओं का ध्यान रखते हुए गायन करना।**

गायन का नियम है कि मन्द स्वर से क्रमशः मध्य एवं तार स्वर में गीत का उच्चारण करना चाहिए। गीत के तीन आकार, छह दोष, अष्ट गुण एवं तीन प्रकार है, तीन आकारों के अन्तर्गत मृदु गीत ध्वनि, तीव्र गीत ध्वनि एवं क्षययुक्त हल्की गीत ध्वनि आ जाती है। गायन के छह दोष है– भयभीत होकर गाना, शीघ्र गाना, धीरे गाना, तालरहित गाना, काकस्वर से गाना, नाक से गाना, अतः दोषरहित, अर्थयुक्त काव्यालंकार युक्त, ही गीत की विशेषता होती है।

महापुराण में **वारांगना**[192], **मागध, वंदीजन**[193], **किन्नर देवियाँ**[194], **चारण**[195], को गायन कला में प्रवीण बताते हुए उक्त गीत के नियमों का पालन करने का वर्णन मिलता है। चारण, मागध एवं वंदीजन प्रसिद्ध दानी पुरूषों एवं राजाओं के समक्ष उनकी कीर्ति गाते थे। गीतों का कथानक वस्तुतः प्रत्येक समय भिन्न–भिन्न था। कभी तो **विजय प्राप्ति के मंगल गीत**[196], **कभी राज्याभिषेक**[197], **जन्माभिषेक**[198], **विवाहोत्सव**[199], **भगवान के गर्भ**[200], **जन्म**[201], **तप**[202], **केवल**[203],

मोक्ष[204], महोत्सव के गीत तथा कभी मागध एवं चारणों द्वारा दानी पुरूषों की कीर्ति का उच्चारण करते हुए गीत गाये जाते थें।[205]

उत्तर पुराण में तो गीत के माध्यम से राजपुत्री को रिझाने का उल्लेख मिलता है। वर्णित है कि नृत्यकारिणियों ने अनन्तवीर्य राजा के गुणों को गाते हुए नृत्य किया जिससे राजपुत्री कनक श्री ने इतने गुणों की खान राजा से विवाह करने का प्रस्ताव रखा।[206] नवदम्पत्ति के लिए गीत दाम्पत्य जीवन में मधुरता लाते थे।

इस सन्दर्भ में अन्य स्थल पर वर्णित है कि जयकुमार और सुलोचना विवाह पश्चात् एक वन में रात्रि व्यतीत करते है। उस समय वे गीत–संगीत द्वारा मनोरंजन करते थे अन्य परिवार जन भी इसमें सम्मिलित होते थे एवं आनन्द उठाते थें।[207]

लोकगीत का वर्णन भी मिलता है। वर्णित है कि धान की रखवाली करने वाली स्त्रियाँ राहगीरों को रोकने के लिए सुन्दर लोकगीत गा रही होती है[208] तथा सबका मनोरंजन करती है। आदिपुराण में गायकों के लिए किसी वर्ग जाति का निषेध नही किया तभी तो गीतों को वारवनिताओं से गवाया गया है। उस युग में गीत गोष्ठी[209] भी आयोजित हुआ करती थी। जो सभी का मन बहलाती थी। आदि तीर्थंकर वृषभदेव ने अपने पुत्र वृषभसेन के लिए सौ से भी अधिक[210] अध्याय वाले गान्धर्व शास्त्र का व्याख्यान दिया था। जो कि आज उपलब्ध नही है। महापुराण में गन्धर्व विद्या के सात स्वरों के लक्षण, तत्व, स्वरूप का स्पष्ट वर्णन नही मिलता फिर भी वर्णित तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि गीत अथवा गायन उस समय आनन्द की प्रतिध्वनि के व्यक्त करने के माध्यम थे।

वाद्यों से मनोरंजनः महापुराण में महाराजा भरत की नौ निधियों का वर्णन मिलता है पहली काल नाम की विधि से प्रत्येक दिन लौकिक शब्द अर्थात् व्याकरण आदि के शास्त्रों की उत्पत्ति होती रहती थी। तथा वीणा, बासुंरी, नगाड़े आदि जो–जो भी इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय थें उन्हें भी यह निधि समयानुसार विशेष रीति से उत्पन्न करती थी।[211]

उक्त तथ्य में वर्णित है कि वाद्य तत्कालीन युग में मनोरंजन के प्रमुख साधन थें, वाद्य विभिन्न अवसरों पर आनन्द की उद्घोषणा करते थे तथा प्रत्येक अवसर के लिए भिन्न–भिन्न वाद्य प्रयुक्त होते थे। प्रातःकाल की मंगलवंदनाओं, मंगलाचरणों, बंदीजन के गान, कल्याणकों, विवाह संस्कारों युद्धोत्सव, जन्मोत्सव, राज्योत्सव आदि भिन्न अवसरों पर वाद्यों के स्वर सुनाई पड़ते थे।

महापुराणकालीन भारत तुणव, वीणा, मुरज, पणव, शंख, तूर्य, काहल, घण्टा, कण्ठीरव, मृदंग, दुन्दुभि, तुणव, महापटह, पुष्कर, आनन्दिनी भेरी, विजयघोष, पटह, गम्भीरावर्त शंख आदि वाद्यों के द्वारा मनोरंजन किया जाता था। इन वाद्यों से निम्न प्रकार मनोरंजन होता था।

तुणव[212]: इसे महापुराण में सितार के रूप में प्रयोग करना उल्लिखित है यह वाद्य विभिन्न अवसरों पर कर्णेन्द्रिय को आनन्द प्रदान करता है।

वीणा : उत्तरपुराण में वीणा को चित्त को वश में करने वाला यंत्र घोषित किया है।[213] वास्तव में वीणा के माध्यम से महापुराण के अनेक पर्वो में आनन्द के स्वर प्रतिबिम्बित होते है। आदिपुराण में वीणा के स्वर को श्रेष्ठ माना गया है।[214] माता मरूदेवी व देवियों के बीच पहेली के प्रसंग में देवियाँ मरूदेवी से पूछती है कि स्वर के समस्त भेदों में उत्तम स्वर कौन सा है उस पहेली को उत्तर में माता मरूदेवी वीणा के स्वर को सबसे उत्तम बतलाती है। गर्भावस्था में माता मरूदेवी के मनोरंजन के लिए देवियाँ अपने हस्तरूपी पल्लवों से वीणा वादन करती थी। कथानुसार देवांगनाओं के हाथ पल्लव के समान थें। वीणा बजाते समय उनके हाथ रूपी पल्लव वीणा की लकड़ी अथवा उसके तारों पर लड़ते थें। जिससे वह वीणा पल्लवित होती सी मालूम पड़ती थी। हाथ की अंगुलियों से ताड़न करने पर वीणा से मधुर स्वर निकलता था। वीणा वादन के समय उन देवियों के हाथों की चंचलता, सुंदरता और बजाने की कुशलता देखकर दर्शकों का मन हर्षित हो जाता था।[215]

उत्तरपुराण में चार प्रकार की वीणाओं द्वारा मनोरंजन किए जाने के प्रमाण मिलते है। **घोषा, सुघोषा, महाघोषा, घोषवती।**[216] इस संदर्भ में वर्णित है कि वसुदेव गंधर्वदत्ता के स्वयंवर में घोषवती वीणा बजाकर वीणा वादन में अपनी

कुशलता सिद्ध करते हुए दर्शक का मन आनन्द और कौतुक से भर देता है।[217] महापुराण में वीणा को आदर की दृष्टि से देखा गया है। तथा उसके साथ अन्य वाद्यों के स्वरों का भी उल्लेख उपलब्ध है।[218] इनमें प्रमुख अलाबु[219] एवं सुघोषा है। अलाबु सारंगी का अत्यधिक विकसित रूप है।[220] उत्तरपुराण में सुघोषा वीणा के द्वारा जीवंधर कुमार का जनसमूह का मनोरंजन करने का वर्णन मिलता है।[221] सुघोषा को उत्तरपुराण में उत्तम वीणा कहा गया है।[222]

मुरज[223] : यह चर्मवाद्य है। इसे गीत के साथ बजाया जाता था। इसकी ध्वनि मधुर व सुखकर मानी गई है। मुरज का उल्लेख आदिपुराण में मृदंग के रूप में ही मिलता है। माता मरूदेवी का मन बहलाने के लिए देवियाँ मुरज का प्रयोग कर अति सुंदर व मनोहर शब्द करती मनोरंजन करती थी। उसे मुण्ड वाद्य के साथ बजाया जाता था।[224]

पुष्कर[225]: इसका प्रयोग मंगल कार्यो, शुभ प्रयोजनों में आनन्द की उद्घोषणा के रूप में होता था। वर्तमान पखावज के रूप में इसे जाना जाता है।

भेरी[235]: तीर्थंकर भगवान का जन्म होने पर व्यंतर देवों के घरों में भेरी की प्रतिध्वनि का उल्लेख प्राप्त है।[226] महापुराण में वज्रजंघ के राज्य प्रवेशोत्सव के समय भेरी के गम्भीर शब्द सबका मन अनुरंजित करते है।[227] उत्तरपुराण में भेरी युद्धोत्सव को संकेत करती है।[228] जयकुमार ने मेघ कुमारों को जीतनें पर मेघघोषा नामक भेरी बजवाई जो कि युद्ध में विजयोत्सव का संकेत थी।[229] भेरी के गम्भीर एवं मधुर शब्द कानों को इतने प्रिय होते है कि सोलह स्पप्न देख रही भगवान की माता एरा भी प्रातः काल भेरी का शब्द सुनकर जाग उठती है।[230] अतः स्पष्ट है कि महापुराण कालीन समय में प्रत्येक मांगलिक कार्य में भेरी जनमानस का चित्त प्रभावित कर आनन्द उत्पन्न करती थी।

मृदंग[231]: महापुराण में मृदंग के द्वारा माता मरूदेवी के मनोरंजन का उल्लेख मिलता है। देवियों के मृदंग वादन की कुशलता की प्रशंसा करते हुए पुराण में मृदंग बजाने की विधि वर्णित है।[232] बताया गया है कि देवियों के हाथों से बार–बार ताड़ित हुए मृदंग यही ध्वनि कर रहे है कि हम लोग वास्तव में मृदंग(मृत–अंग) अर्थात मिट्टी के अंग नही है, किन्तु सोने के अंग है।

पणव[233]: पणव वाद्य भी मनोरंजन का प्राचीन साधन है। इसे प्राचीन व आधुनिक काल में हुडुक नाम से संबोधित किया जाता है तथा मध्य काल में इसे आवाज का नाम दिया गया है। गर्भावस्था में मरूदेवी को पणव के सुन्दर शब्द आनंदित करते है।[234] वर्णित है कि बहुत परिश्रम से बजाने योग्य इस वाद्य के शब्द कभी भी बुरे नही होते वरन् कर्णप्रिय होते है।

पटह[23] : इसे ढक्का नगाड़ा कहा जाता है। महापुराण में पटह एवं महापटह दोनों का विभिन्न अवसरों पर प्रयोग किया जाता था। महापटह का अर्थ नगाड़ा है राजा वज्रजंघ के राज्यभिषेक महोत्सव के समय इस वाद्य की गर्जना सबको सम्मोहित करती थी।[236] भरत चक्रवर्ती के जन्मोत्सव में पटह की ध्वनि सबकों हर्षित कर रही थी।[237] भगवान के कैवल्य ज्ञान महोत्सव के समय पटह व महापटह के द्वारा मनोरंजन का वर्णन उपलब्ध है।[238]

दुन्दुभि[239]: तबले की भांति दो नगों से निर्मित यह वाद्य प्राचीन भारत में मनोरंजन का प्रमुख साधन था। इसकी ध्वनि मधुर और उच्च होती है। दुन्दुभि वाद्य की गणना युद्ध व उत्सव दोनों ही अवसरों पर की गई है। भगवान आदिनाथ के केवल ज्ञान के समय साढ़े बारह करोड़ दुन्दुभि बाजों के द्वारा देवों के आनन्द मनाए जाने का वर्णन देव दुन्दुभि शब्द को सार्थक करता है।[240] श्रीमती व वज्रजंघ के विवाहोत्सव के अवसर पर दुन्दुभि का गम्भीर गर्जन जनसमूह को रोमांचित कर रहा था।[241] तीर्थकर के अभिषेक[242] एवं तपकल्याणक महोत्सव के समय भी इस वाद्य की मनोरंजन के रूप में वर्णन मिलता है।[243] वस्तुतः मंगल व विजय के अवसर पर इस वाद्य का प्रयोग किया जाता था जो सभी का मन बहलाता था।

आनक[244]: इसकी गम्भीर ध्वनि जन समूह को आकर्षित करती थी। तीर्थकर आदिनाथ के जन्मोत्सव प्रसंग में आचार्य जिनसेन ने उच्च स्वर से आनक वाद्यों के बजने का निरूपण किया है और 'प्रधुध्वाना' शब्द द्वारा उसकी घोर गर्जना पर प्रकाश डाला है। इस वाद्य की व्युत्पत्ति 'आनयति उत्साहवतः करोति इति आनकः' के रूप में की जा सकती हैं आनक की गर्जना भी उत्साहवर्धक है। इसकी तुलना आधुनिक नगाड़े या नौबत वाद्य से की जा सकती है।

झल्लरी: भरत चक्रवर्ती के जन्मोत्सव में झल्लरी का वादन सबके चित्त को आनन्दित कर देता है।[245]

काहला[246]: सोना, चांदी एवं ताम्बे से निर्मित यह वाद्य भगवान के तप कल्याणक के समय आत्मिक प्रसन्नता से जन समूह को भर देता है।[247] फूंकने पर इसके मुंह से 'हा हू' ध्वनि निकलती थी। वर्णित है कि इस ध्वनि को सुनकर गुफाएँ भी शब्दायमान हो जाती थी।

शंख: यह एक मांगलिक वाद्य है ग्रन्थ में शंख का प्रयोग प्रातःकाल में पूजा के अवसर पर किया जाता था। युद्ध के अवसरों पर भी शंख ध्वनि सुनाई पड़ती है। भरत चक्रवर्ती के जन्मोत्सव के प्रसंग में शंख बजाये जाने का उल्लेख मिलता है।[248] माता मरूदेवी को प्रातःकाल के अवसर पर देवियाँ शंखनाद कर जागृत करती है।[249] भवनवासी देवों के घरों में शंखध्वनि होने का उल्लेख मिलता है।[250]

ताल: इस मांगलिक वाद्य की तुलना हम मंजीरों से कर सकते है। आदिपुराण के अनुसार मंगलगान के समय देवियाँ प्रातःकाल तालवाद्य द्वारा गंभीर एवं हर्षोत्तेजनक स्वर उत्पन्न करती थी।[251]

घण्टा: इसे प्राचीन मांगलिक वाद्य कहा गया है। घण्टे से उठने वाली तरंगे मन को आनन्दित करती है। इसकी समुद्र के समान गंभीर ध्वनि का उपयोग मंदिर या देवी–देवताओं के पूजा अर्चना में होता है।[252] जहां अन्य कोई वाद्य उपलब्ध नही होता वहां घण्टा बजाया जाता है। यह एक ठोस वाद्य है और जयगान के लिए घण्टा की वाद्य ध्वनि का होना आवश्यक माना गया है। महापुराण में कल्पवासियों के यहां घण्टा ध्वनि होना उल्लिखित है।[253]

सिंहनाद: सिंहनाद भी हर्षोल्लास का प्रतीक माना गया है। भगवान का जन्म होने पर ज्योतिषी देवों के घरों में सिंहनाद् की ध्वनि देवों की प्रसन्नता को सूचित करता है।[254] यह वाद्य भगवान के एक 108 लक्षण में सम्मिलित था।

वेणु[255]: वेणु वादक को वेणुध्मा से सम्बोधित किया गया है। इसका प्रयोग बांसुरी के अर्थ में हुआ है माता मरूदेवी के मनोरंजनार्थ देवियाँ वेणु वाद्य प्रयोग करती है।[256]

तूर्य[257]: में इसे तुरही से जाना जाता हे। इसकी ध्वनि दूर से भारतीय शहनाई के समान प्रतीत होती है। माता मरूदेवी को जगाने के लिए इस मांगलिक वाद्य का वर्णन आया है। भगवान के अभिषेक महोत्सव की विधि को सम्पन्न कराने के लिए भी इस तुरही के स्वर सबकों आनन्द और हर्षोल्लास से भर देते थें।

वंशी: बांसुरी के रुप में प्रचलित इस वाद्य का प्रयोग माता मरुदेवी के मनोरंजन हेतु वर्णित है।[258]

महापुराण में उक्त वाद्यों के अतिरिक्त कुछ वाद्यों के नामाल्लेख मात्र है जिनका उपयोग भी आनन्द के अवसरों में मिलता था। ये निम्न है—नान्दी,[259] झांझ,[260] शहनाइ,[261] सितार,[262] डिन्डिम[263] आदि। इस प्रकार संगीत के अन्तर्गत वाद्य यंत्रों के प्रयोग के प्रमाण मिलते है, जिससे समाज के हर वर्ग के लोग मनोरंजन करते थे।

नृत्य द्वारा मनोरंजन : इस युग में नृत्य मनोरंजन का लोकप्रिय साधन था। भगवान आदिनाथ ने पुत्र भरत को संपूर्ण नृत्य शास्त्र की शिक्षा दी थी।[264] इस से महापुराण कालीन समाज में नृत्य की लोकप्रियता का पता लगता है। प्राचीन काल से ही समाज के सभी वर्गो में नृत्य कला के प्रेमी व अभिरूचि रखने वाले व्यक्ति होते थे जो नृत्य के माध्यम से अपना व दर्शकों का मनोरंजन करते थे। वास्तव में नृत्य ताल और लय के अनुरूप अंग संचालन की प्रक्रिया है। महापुराण में नृत्य में रस, भाव, आंशिक अभिनय, अनुभाव, चेष्टा को मुख्य तत्व बताया है[265] तथा शरीर के विभिन्न अंगों जैसे कटाक्ष, कपोलों, पैरों, हाथों, मुख, नेत्रों, अंगराज, नाभि कटिप्रदेश तथा मेखलाओं द्वारा भाव प्रदर्शन करने का उल्लेख मिलता है।[266] महापुराण में नृत्य का उल्लेख कई संदर्भो में आया है। नृत्य करती हुई देवांगनाएँ नाट्यशास्त्र में निश्चित किये स्थानों पर हाथ फैलाती हुई विभिन्न प्रकार की भाव मुद्राओं का प्रदर्शन करती है।[267] चंचल अंगों को तीव्र गति से घुमाने के कारण नर्तकियों के अंग प्रत्यंग का सौन्दर्य दर्शकों के चित्त को आनंदित कर देता है।[268] नृत्य के साथ वीणा, पुष्कर, बांसुरी, झाँझ, दुन्दुभि, झल्लर, काहल, ताल, मृदंग, पणव, पट्ट, दर्दुर तथा विपन्ची आदि वाद्यों

की साहचर्यता नृत्य को मनोरम बना देती है। महापुराण में नृत्य की विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन हुआ है। जो दर्शकों को चित्ताकर्षक करती है।

1. मुस्कान के साथ मधुर गीत पूर्वक नृत्य करना।[269]
2. भौंहों का संचालन कटाक्षपूर्वक करके नृत्य करना।[270]
3. विलासपूर्ण नृत्य करना।[271]
4. शरीर के अवयवों का प्रदर्शन करना।[272]
5. गतिपूर्वक नृत्य करना।[273]
6. ताल ध्वनि और गायन के सामंजस्य अनुसार नृत्य करना।[274]
7. शारीरिक चेष्टाओं का प्रदर्शन करते हुए फिरकी लेना।[275]
8. मिट्टी के घड़े पुष्पों के घड़े, स्वर्ण घट सिर पर रखकर विभिन्न प्रकार की भाववलियों का प्रदर्शन करना।[276]
9. रसपूर्वक नृत्य करना अर्थात् विभिन्न अंगों के सौदर्य को विभिन्न भावों द्वारा प्रदर्शित करते हुए नृत्य करना।[277]
10. छत्रबंध आदि का प्रदर्शन करते हुए विभिन्न रूपों में नृत्य करना।[278]
11. एक भुजा पर नर्तकी तथा दूसरे पर नर्तक को नृत्य कराते हुए स्वयं नृत्य करना।[279]

महापुराण में वास्तविक नृत्य उसी को माना गया है जिसमें अंगों की विभिन्न प्रकार की चेष्टाएँ सम्पन्न हो और नृत्य करने वाला अनेक रूपों में अपनी रसभावमयी मुद्राओं का प्रदर्शन करें।[280] नृत्य के भेद मधुर एवं उद्धत दोनों ही रूपों द्वारा मनोरंजन वर्णित है। मधुर नृत्य को यहां लास्य नृत्य कहा गया है तथा उद्धत को तांडव नृत्य।[281] नृत्य करने वाले पुरुष को नर्तक तथा नृत्य करने वाली स्त्री को नर्तकी की संज्ञा दी गई है।[282]

महापुराण में वर्णित है कि राजा नट एवं नटी के भेद का ज्ञाता होता था, तथा नट–नटी का नृत्य लोगों को लुभाता था[283]। स्त्री का पुरुष रुप धारण कर नृत्य करना तथा पुरुष का स्त्री रुप धारण कर नृत्य करने का उल्लेख भी मिलता है।[284] वर्तमान में भी रुप बदलकर नृत्य करके लोगों का मनोरंजन किया

जाता है कई प्रकार के नृत्यों का उल्लेख मिलता है। नटी रंगभूमि में विभिन्न शारीरिक अवयवों की चेष्टाएँ दिखाती हुई नृत्य कर लोगों को सम्मोहित करती है[285]। महापुराण में अप्सराओं के नृत्य का भी उन्नेख हुआ है[286]। भगवान के जन्मकल्याणक के समय अप्सराओं का ताल के साथ फिरकी लगाते हुए लीला सहित नृत्य दर्शकों को आनन्द प्रदान कर रहा था।[287] मोरों का ताण्डवनृत्य [288],देवों के हाथी का नृत्य[289] सर्प नृत्य [290] इत्यादि पशु–पक्षियों का महापुराण में नृत्य करके मनोरंजन करने का उल्लेख मिलता है। वास्तव में मुनिराज के ध्यान के प्रभाव से उत्पन्न मानसिक सुख के कारण सर्नो, मयूरों का नृत्य वन की शोभा बढ़ा रहा था[291]

प्रकृति का भी अपना सौन्दर्य वन के वृक्षों के नृत्यों के माध्यम से प्रकट कर मानसिक सुख प्रदान करने का उल्लेख मिलता है[292]। उन दिनों नृत्यशालाएँ भी हुआ करती थी, भरत चक्रवर्ती के वर्धमानक नामकी नृत्यशाला में नृत्य देखने का उल्लेख मिलता है। जहाँ पर नृत्य की शिक्षा के प्रदान करने के अतिरिक्त चक्रवर्ती, सामन्त, राजा, पुरोहित सभी नृत्य देखकर मनोरंजन किया करते थे[293]।महापुराण में राजपुत्रों को भी नृत्य की शिक्षा देने का उल्लेख है।[294] महापुराण में कई प्रकार के नृत्यों का उल्लेख मिलता है जिनकी विभिन्न चेष्टाएं लोगों का मन प्रसन्न करती थी।

ताण्डव नृत्य : इस नृत्य को भक्तिपूर्वक करने का विधान महापुराण में वर्णित है। पाद, कटि, कण्ठ तथा हाथ को तालों, कलाओं, वर्णों तथा लयों पर संचालित कर उत्तम रस दिखलाना ही ताण्डव नृत्य है।[295] पुष्पांजली अर्पण करते हुए नृत्य करना पुष्पांजलीप्रकीर्णक ताण्डव नृत्य[296] तथा विभिन्न रूपों में सुगंधित जल की वर्षा करते हुए नृत्य करना जलसेचन नामक ताण्डव नृत्य है। महापुराण में इन्द्र द्वारा जन्मकल्याणक महोत्सव में हर्षोल्लास से ताण्डव नृत्य किये जाने का उल्लेख है।[297] वहीं मोर के भी ताण्डव नृत्य कर मनोविनोद करने का वर्णन आया है।[298]

अलातचक्र नृत्य [299] : अयोध्या नगरी में जन्मोत्सव मनाने के प्रसंग में इस नृत्य को देखकर सम्पूर्ण नगरी में आनन्द छा जाता है। इस नृत्य में शीध्रता से

फिरकी लेते हुए विभिन्न मुद्राओं द्वारा शरीर के अंग–प्रत्यंग का संचालन किया जाता था।

इन्द्रजाल नृत्य [300] : भगवान के जन्मोत्सव पर आनन्द प्रकट करने हेतु यह नृत्य इन्द्र द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस नृत्य में नर्तक के साथ नर्तकी भी भाग लेती थी। लेकिन नृत्य इतनी शीघ्रता से सम्पन्न होता था कि स्त्री या पुरूष के स्वरूप का भेद ज्ञात नहीं हो पाता था। अत्यधिक भ्रम के साथ किये गए इस नृत्य की विधि में क्षण में व्याप्त, क्षण में लघु, क्षण में निकट, क्षणभर में दूर, क्षण में आकाश एवं क्षण में पृथ्वी पर आना ही प्रदर्शित होता है। यह नृत्य देखकर दर्शक आनन्द और कौतुक से भर उठते है।

चक्र नृत्य [301] : इस नृत्य में नर्तक नर्तकियों के साथ तेजी से चक्कर लगाते हुए नृत्य करता था। सिर का मुकुट ही घुमने के कारण इसे चक्र नृत्य कहा गया है।

निष्क्रमण नृत्य[302]: इस नृत्य में नर्तकियाँ फिरकी लगाते हुए कभी दो–तीन हाथ आगे तथा कभी दो–तीन हाथ पीछे आ जाती थी।

आनन्द नृत्य[303]: महापुराण में इन्द्र द्वारा इस नृत्य को करने का उल्लेख मिलता है। उस समय समाज में इस नृत्य का विशेष प्रचलन था। गार्न्धवों इस नृत्य के समय अनेक वाद्यों को बजाकर दर्शकों के मनोरंजन को बढ़ाते थे। इस नृत्य में नर्तकियाँ भी भाग लेती थी। यह नृत्य श्रृंगार रस से परिपूर्ण तथा सरस होता था।

कटाक्ष नृत्य [304]: इस नृत्य में नर्तकियाँ पुरूष की बाहुओं पर अपने कटाक्षों का विक्षेपर्ण करती हुई नृत्य करती है।

सूची नृत्य[305]: जब नर्तकियाँ नृत्य करते समय सिमट कर सूची के रूप में परिणत हो जाती है तब उसे सूची नृत्य कहते है। महापुराण में किसी पुरूष के हाथ की ऊंगलियों पर लीलापूर्वक नृत्य करना सूची नृत्य है।

लास्य नृत्य[306] : लास्य नृत्य उन दिनों नवयौवनाओं के मनोरंजन कर लोकप्रिय प्रमुख साधन था। यह नृत्य सुकुमार प्रयोगो से परिपूर्ण तथा रसोत्पादक था।

सावन माह में झूला क्रीड़ा करते समय कामिनियों द्वारा यह नृत्य किया जाता है।

मयूर नृत्य[307] : महापुराण में मयूर का रूप धरकर नृत्य करने का उल्लेख मिलता है। जो वर्तमान की तरह उस समय भी मयूर नृत्य के प्रचलन को संकेतित करता है। मोरों का ताण्डव नृत्य[308] भी उत्कृष्ट होता है जिसे देखकर मन प्रसन्न हो जाता था।

पुतली नृत्य[309] : इस नृत्य का विकसित रूप वर्तमान का कठपुतली नृत्य है। इस नृत्य में नर्तक की भुजाओं पर नर्तकियाँ इस प्रकार नृत्य करती है मानों किसी यन्त्र की पट्टी पर पुतलियाँ नृत्य कर रही है।

बहुरूपिणी नृत्य[310]: इसके अंतर्गत नर्तकियाँ मोतियों के हारों को पहनकर इस प्रकार नृत्य करती है जिससे उनकी आकृतियाँ उस हार के मणियों में प्रतिविम्वित हो। इस नृत्य में अनेक स्वरूप परिवर्तित करने के कारण एवं अनेक प्रतिविम्ब पड़ने के कारण इसे बहुरूपिणी नृत्य कहा जाता है।

बांस नृत्य[311] : इस नृत्य में ऐसा प्रतीत होता है जैसे बांस के ऊपर नृत्य किया गया हो। वास्तव में नर्तकियाँ ऊंगलियों के अग्र भाग पर अपनी नाभि रखकर फिरकी लगाती हुई नृत्य करती है।

नीलांजना नृत्य[312] :नृत्य जहाँ एक ओर मनोरंजन कर सर्वोत्कृष्ट साधन रहा है वहीं दूसरी ओर यह नृत्य भगवान आदिनाथ को वैराग्य उत्पन्न करने का कारण भी रहा था।

सामूहिक नृत्य[313]: यह नृत्य सामूहिक रूप से किया जाता था। इस नृत्य में अनेक व्यक्ति संयुक्त रूप से एक ही भाव, अनुभाव, रस, चेष्टाओं के साथ नृत्य करते थे। महापुराण में वर्णित उपर्युक्त नृत्य के प्रकारों को देखकर निष्कर्ष निकलता है कि नृत्य राजा, राज परिवार, सामान्य जन, सभी वर्ग के स्त्री पुरूषों में लोकप्रिय थे। स्त्री व पुरूष अलग–अलग व साथ दोनों ही तरह से नृत्य करके मनोरंजन करते थे। महापुराण में नर्तकी को महारत्न की संज्ञा दी है।[314] उत्तरपुराण में वर्णित है कि राजा अन्य राज्य की नर्तकियों को अपने राज्य में सम्मान आश्रय प्रदान करते थे। वे राजसभा की शान बढ़ाती थी तथा राजा,

सामन्त, पुरोहित सभी का नृत्यशालाओं एवं राजसभा में मनोरंजन करती थी। बर्बरी व चिलातिका दो ऐसी नर्तकियों का उल्लेख मिलता है जो अपने नृत्य से लोगों का मनोरंजन करती थी।[315] इन नृत्यांगनाओं द्वारा नृत्यकला का प्रशिक्षण भी दिया जाता था।[316] नाटकाचार्य भी नृत्य सिखाते थे। इनने अपनी पुत्री नाट्यमालिका को नृत्य का प्रशिक्षण दिया।[317] नृत्य बालकों के भी मनोविनोद के साधन थे। वर्णित है कि भगवान वृषभदेव बालक्रीड़ा के समय नृत्य के द्वारा मनोरंजन करते थे।[318] उत्सव भी बिना नृत्य के अधूरे थे, भगवान के जन्म कल्याणक के समय अप्सराओं का लय एवं ताल के साथ फिरकी लगाते हुए लीला सहित नृत्य लोगों को आनन्द प्रदान कर रहा था। नृत्यकारिणी राजदरबार की शान हुआ करती थी। नृत्य करते समय विभिन्न मनोज्ञ वेश–भूषाएँ भी धारण की जाती थी।[319] अतः तत्कालीन समय में नृत्य में इतनी अधिक रूचि के उदाहरण हमें महापुराण में यत्र–तत्र देखने को मिलते है जो नृत्य की लोकप्रियता को दिग्दर्शित करते है।

सौन्दर्य प्रसाधनः प्राचीन भारतीय समाज में पुरूष और सौन्दर्य प्रिय नारियाँ सौन्दर्य अभिवृद्धि हेतु नाना प्रकार के प्रसाधनों का प्रयोग करते थे। यह सौन्दर्य प्रसाधन विषिष्ट प्रयोजनों में आवश्यकता अनुसार अनिवार्य आवश्यकता के रूप में मान लिए जाते थें जबकि अन्य बहुत से अवसरों पर उनके उपयोग का स्वरूप मनोरंजनात्मक हो जाता था। इससे उन्हें आनन्दानुभूति के साथ आत्मसंतुष्टि की परिपूर्णता प्राप्त होती थी। इन सौन्दर्य प्रसाधनों के अन्तर्गत वस्त्र आभूषण एवं श्रृंगार सामग्री के विभिन्न तरीके सम्मिलित किये जा सकते है।

श्रृंगार : प्राचीन भारतीय समाज के विशिष्टताओं का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि श्रृंगार शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार का मनोंरजन था। राजा, सामंत, पुरोहित अनेक अधिकारियों के साथ–साथ नागरिक भी सौन्दर्य प्रिय थे। सौन्दर्य के साथ व्यक्ति का उससे मनोरंजन भी होता था। स्नान करना, उबटन लगाना, तिलक, काजल, पत्ररचना, कपूर, चंदन, कुमकुम, आलक्तक, सुगंधित चूर्ण आदि पदार्थो द्वारा शरीर का प्रसाधन किया जाता था। आदिपुराण में मुख,

सम्पूर्ण शरीर, केश आदि के लिए विशेष प्रसाधन सामग्री का वर्णन किया गया है।

शारीरिक सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री :

मज्जन[320] :स्नान क्रिया शरीर की शुद्धि के लिए आवश्यक मानी गयी है। स्नान करने से शारीरिक सुन्दरता के साथ ही मनोरंजन भी होता है। महापुराण में स्नान करने से पूर्व उबटन का उल्लेख किया गया है। वर्णित है कि पति के आने से पूर्व विवाहित स्त्रियाँ हल्दी का उबटन लगाकर स्नान करती थी।[321] उबटन लगाकर शरीर को उज्ज्वल बनाया जाता था।[322]

अंजन[323] :सौन्दर्य के लिए आंखों में अंजन का प्रयोग किया जाता थां वृषभदेव के जन्म के बाद इन्द्राणी ने उनके नेत्रों में अंजन/काजल लगाया था।[324] विरह और साधना की स्थिति में अंजन लगाना वर्जित था। अंजन शलाकाओं द्वारा लगाया जाता था। अंजन लगाने से मुख का सौन्दर्य बढ़ जाता था।

तिलक[325]: स्त्री व पुरूष दोनों ही मस्तक पर तिलक लगाकर सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते थे। यह तिलक हरताल, मनः शिला, केसर आदि द्रव्यों का बनाया जाता था। नारियों के लिए तिलक या लाल रंग की बिन्दी लगाना मंगल सूचक सौभाग्य चिन्ह की अभिव्यक्ति माना जाता था। कुमार सम्भव ने तिलक का फूल स्त्रियों के तिलक के समान कहा गया है।[326]

भौंह का श्रृंगार : आधुनिक युग की भांति उस समय भी स्त्रियां सौन्दर्य के लिए अपने भौहों को उचित आकार देकर सुन्दर बनाती थी।

पत्र रचना : स्त्री पुरूष दोनों ही सौन्दर्य अभिवृद्धि हेतु एवं मनोरंजन हेतु मुख पर पत्र रचना किया करते थे। इसके लिए गोरोचन व कुंकुम का प्रयोग किया जाता था। राज्योत्सव के समय स्त्री पुरुष कपोलों पर पत्ररचना करते थे। ललितांग ने स्वयंप्रभा के कपोलफलक पर कितनी ही बार पत्ररचना कर मनोविनोद किया था।[327] विवाहोत्सव के समय पत्ररचना द्वारा सौन्दर्य कई गुना बढ़ जाता था।[328]

ओष्ठ रंगना[329] :लाल ओष्ठों को सौन्दर्य का प्रतिमान माना गया है। औष्ठ रंगने से मुख का सौन्दर्य निखर जाता था। ताम्बूल के रस के संसर्ग से ओष्ठ अत्यधिक लाल हो जाते थे।

कपूर[330] :शरीर को सुगंधित एवं सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु कपूर का उपयोग विविध प्रकार से किया जाता था। मुख को सुवासित करने के लिए पान के साथ भी प्रयोग आता था।

चंदन[331] : स्त्री–पुरूष दोनों ही चंदन का प्रयोग करते थे। चंदन में कस्तूरी, प्रियंगु, कुंकुम एवं हल्दी को मिश्रित करके लेप तैयार किया जाता था। उसके प्रयोग से शारीरिक सौन्दर्य एवं कांति द्विगुणित हो जाती थी। चंदन के पिसे हुए घोल से घर या सड़क को भी सुगंधित किया जाता था। पुष्प भी फैलाए जाते थे।[332]

कुंकुम[333]: शारीरिक स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं सुगंधि के लिए कुंकुम का प्रयोग स्त्री–पुरूष दोनों करते थे। इसका लेप स्तनों पर लगाया जाता था। शरीर पर लगाने के लिए जिस अंगराग का व्यवहार किया जाता था उसमें प्रधान अंश कुंकुम का था।

आलक्तक[334]: इससे पैरों की सुन्दरता में अभिवृद्धि होती थी। यह मेंहन्दी के रूप में वर्तमान में भी प्रचलित है। आदिपुराण में इसको लाक्षारस कहा है।[335] आलक्तक को पदयावत भी कहा गया है।[336]

सुगंधित चूर्ण[337]: वर्तमान में पाउडर के रूप में प्रचलित पदार्थ उस समय सुगंधित चूर्ण कहलाते थे। पटवास चूर्ण अत्यन्त सुगंधित होता था जिसकी सुंगध सभी को आकृष्ट करती थी। कमलपराग[338], केसरचूर्ण, कस्तूरीचूर्ण आदि का भी उपयोग किया जाता था।

पुष्पों द्वारा सौन्दर्य[339] :

कर्णोत्पलः कानों को सुन्दर दिखाने के लिए अशोककलिका, चम्पककलिका, कमलकलिका आदि से तो कानों को अलंकृत किया जाता था, पर उत्पलों को भी आभूषणों के रूप में धारण किया जाता था।

पुष्पमालाएँ[340]: पुष्पमालाओं का व्यवहार हर वर्ग के स्त्री–पुरूष प्रसाधन के रूप में करते थे। धनी–गरीब सभी प्रकार के व्यक्ति जीवन में आनन्दोल्लास प्राप्त करने के लिए इच्छुक रहते थे। पुष्पमालाओं के आभूषण सभी के लिए सुलभ थे। इन पुष्पमालाओं को केशों, बाहों तथा हाथों में आभूषण की भाँति धारण किया जाता था।

आम्रमंजरी[341]: वनविहार एवं जलक्रीडा करते समय स्त्री–पुरूष आम्रमंजरी द्वारा विविध प्रकार से क्रीड़ाएं करते थे। महापुराण में आम्रमंजरी के प्रति भ्रमर की आसक्ति को ललितांग देव की स्वयंप्रभा पर प्रेम से व्यवहत किया है। सहकार वनक्रीडाओं में वसन्तऋतु के समय आम्रमंजरी द्वारा मनोरंजन किया जाता था।[342]

पुष्पमंजरी[343]: वनविहार के समय उद्यानों में पुष्पों के गुच्छों से मनोविनोद किया जाता था।

केशविन्यास एवं श्रृंगारः सौन्दर्य प्रसाधन के साधन के रूप में केश श्रृंगार का प्रमुख स्थान था। प्रागैतिहासिक काल से ही भारतीय स्त्री–पुरूष अपने केशों को विभिन्न ढंगो से सज्जित करते थे। इस युग में भी स्त्री–पुरूषों में केशों के प्रति सर्वाधिक रूचि जागृत थी, पुरूषों और स्त्रियों की केश सज्जा में अंतर था। स्त्रियाँ अपने केशों का बंधन विशेष रूप से करती थी। विशेष केश रचना का नाम कबरी है। कबरी शब्द पीछे की ओर बनाए हुए जूड़े के लिए प्रयुक्त होता था।[344] अमरकोश के अनुसार कबरी लम्बाई के रुप में बालो को ग्रथित करने पर निर्मित होती थी।[345] सौन्दर्य प्रसाधन हेतु सभी नायिकाएं जूड़ा बंधन किया करती थी। महापुराण में केश बंधन की विधि में धम्मिल का भी उल्लेख मिलता है।[346] बेला, चमेली आदि सुगंधित पुष्पों को भी धम्मिल नामक जूड़ों में गूँथा जाता था। केशों को सुगंधित करने के लिए कालागुरू की विशेष सुगंधित धूप तैयार की जाती थी।[347] इस धूप का धुँआ बहुत सुगंधित और सुहावना होता था। श्रीमंत घरों की नारियाँ केशों को धोने के बाद धूप के धूम से सुगंधित करती थी। अलको के लिए चूर्ण का प्रयोग किया जाता था। घुंघराले बालो को सौन्दर्य की दृष्टि से आवश्यक माना जाता था।[348] स्त्रियाँ केशों पर पुष्पमालाएँ भी धारण

करती थी।[349] वर्णित है कि मरूदेवी के कुटिल केशों से सुशोभित मस्तक पर धारण की गई पुष्पमाला नीलगिरि के शिखर के समीप प्रवाहित होती हुई सीता नदी के समान शोभायमान हो रही थी। चोटी के ढ़ीले हो जाने पर उसमें बांधे गए पुष्प फैल गये थे।[350] एक अन्य संदर्भ में बताया गया है कि देवियाँ अपने ललाटतल पर लटकते हुए जिन अलको को धारण कर रही थी वे सुवर्णपट्ट के किनारे पर जड़े हुए इन्द्रनील मणियों के समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। देवियों केशपाशों के शिथिल हो जाने से लटकती हुई पुष्पमालाएँ ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों कृष्ण वर्ण के सर्प श्वेतवर्ण के सर्पो को निगलकर पुनः उगल रहे हों।[351] बालों में पुष्प लगाकर भी सुगंधित केश बनाए जाते थें। मरूदेवी व श्रीमती दोनों ही केश प्रसाधन में पुष्पों का व्यवहार करती थी। कमलपराग एवं अन्य सुगंधित पुष्प केशों को सजाने के लिए काम में लिए जाते थें। महापुराण में पुरूषों के केशों के सौन्दर्य का विशिष्ट वर्णन प्राप्त नही होता। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह उल्लेख है कि प्राचीन भारतीय सामाजिक परिवेश में सौन्दर्यप्रियता हेतु प्रयुक्त विभिन्न साधनों का मनोरंजनात्मक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण स्थान था।

वस्त्र :महापुराण में मनोज्ञ वेशभूषा पर अत्यधिक बल दिया गया है। विभिन्न शुभ अवसरों पर इसकी महत्ता प्रतिपादित की गई है। मनोज्ञ वेशभूषा अधिक आकर्षक होती थी तथा इस प्रकार की वेशभूषा वाले व्यक्ति को सभी स्नेह करते थे।[352] 'वस्त्राभरण माल्यानि' पद द्वारा आदिपुराण में वेशभूषा की विशेषता पर प्रकाश डाला गया है।[353] विवाह, राज्याभिषेक जैसे विशेष अवसरों पर उत्तम वेशभूषा धारण की जाती थी। व्रत उत्सवादि के अवसर पर भी वेशभूषा परिवर्तन करने का निर्देश उपलब्ध होता है। उत्सव विशेष में सम्मिलित होने के लिए नवीन और आकर्षक वेशभूषा धारण की जाती थी। राजकुमार–राजकुमारियों, दास–दासियों, सामन्तों, सैनिकों, शिकारियों आदि की वेशभूषा विशेष प्रकार की होती थी। साधारण जनता उत्तरीय और अधोवस्त्र का ही व्यवहार करती थी। सम्भ्रान्त परिवार की महिलाऐं रेशमी वस्त्र धारण करती थी। वस्त्रों को सुवासित करने वाले चूर्ण को पटवास कहा गया है।[354] विवाह के अवसर पर माताएं

अपनी कन्याओं का स्वयं श्रृंगार करती थी[355] तथा उनकों उत्तम प्रकार के वस्त्राभूषणों से सजाती थी। सहज सुन्दर अंगो को अधिक रमणीय बनाया जाता था। सुगंधित द्रव्यों के व्यवहार की प्रथा भी थी। पटवास चूर्ण के द्वारा वस्त्रों को सुवासित किया जाता था। महापुराण के भारत में धोती, चादर और पगड़ी को धारण करने की जो प्रक्रिया है, वह अजन्ता के भित्ति चित्रों में अंकित वेशभूषा की प्रक्रिया से मिलती जुलती है, नारियाँ साड़ी धारण करती थी, किन्तु उनके पहनने की कई विधियाँ प्रचलित थी। साड़ी की निचाई एड़ी तक रहती थी और स्तनों के बीच पट्ट बांधा जाता था। दर्पण में मुख देखती हुई राजकुमारियाँ धारीदार साड़ी या घघरी पहनती थी। एलोरा की चामर ग्राहिणियों की मूर्तियों में अंकित वेशभूषा की विधि भी महापुराण के समान ही है।

महापुराण में सूती, रेशमी तथा ऊनी ये तीन प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। महापुराण कालीन भारत में अंशुक एक उत्तरीय वस्त्र था[356] जिसका व्यवहार करते समय माला एवं पुष्पहारों का धारण करना अधिक सौन्दर्य सूचक माना जाता था अंशुक के कई प्रकार थे शुकच्छायांशुक, संदशुक, पट्टाशुक, उज्ज्वलांशुक, स्तनांशुक आदि अंशुक स्त्री व पुरूष दोनों ही धारण करते थे। आदि तीर्थकर ऋषभदेव संदशुक को धारण करते थे।[357] यह वस्त्र स्वच्छ, श्वेत, सूक्ष्म, स्निग्ध एवं अत्यधिक मूल्यवान था। संदशुक राजपरिवार के लोगों की सुन्दरता को बढ़ाता था। अंशुक को ग्रीष्म ऋतु में पहना जाता था।[358] उच्च कोटि के स्त्री–पुरूष ही इसको प्रयोग में लाते थें। उज्ज्वलांशुक धारण करते समय श्रीमती अत्यधिक सुन्दर प्रतीत होती थी। सामान्य वर्ग की महिलाएं भी अंशुक पहनती थी। स्तनांशुक का प्रचलन था जो कि एक प्रकार की अंगिया थी।[359] यह रेशमी वस्त्र का टुकड़ा था जिसे वक्षस्थल पर सामने से ले जाकर पीछे गांठ बांध दी जाती थी। अंशुक भारत और चीन दोनों देशों में बनता था तथा चीन से भारत भी लाया जाता था जिसे चीनपट या चीनांशुक कहा जाता था।[360] विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर क्षौम का भी प्रयोग किया जाता था जो कि अत्यन्त महीन एवं सुन्दर वस्त्र था।[361]

समृद्ध परिवारों में दुकूल वृक्ष की छाल से निर्मित दुकूल का भी प्रयोग होता था।[362] सूती वस्त्रों में कुसुम्भ प्रचलित था जो कि सूती लाल रंग का होता था।[363] इसका प्रयोग साधारण जनता करती थी। अत्यधिक महीन रेशमी कपड़े का भी व्यवहार किया जाता था महापुराण में इसे नेत्र वस्त्र कहा गया है।[364]

ओढ़ने, बिछाने योग्य वस्त्रों में प्रावार का प्रचलन था। यह प्रावार/दुशाला राजा–महाराजाओं के ओढ़ने बिछाने योग्य ऊनी या रेशमी चादर होती थी।[365] अधोवस्त्रों में परिधान[366] और उपसंव्यान[367] का संकेत मिलता हैं ये दोनों ही शब्द धोती के लिए प्रयुक्त किये गए है।

पुरूष सिर पर पगड़ी धारण करते थे। यह उष्णीश कहलाती थी।[368] इसे बाँध कर निकाल लिया जाता था तथा पुनः उसका प्रयोग किया जा सकता था। महापुराण में तपस्वी एवं जटाधारी साधुओं के लिए भी वल्कल वस्त्रों के प्रयोग का वर्णन मिलता है।[369] तपस्वी मृगचर्म भी धारण करते थे। पैरों में भी उपानत्क पहना जाता है।[370] महापुराण में उपानत्क का अर्थ जूता से है, जूतों, पादुकाओं का मनुष्य के पहनावें में विशेष स्थान है।

प्राचीन भारतीय समाज में भौतिक जीवन को सुखमय बनाने हेतु वस्त्रों का उपयोग आवश्यकता से अधिक करके इसे मनोरंजनात्मक स्वरूप प्रदान कर दिया। अन्ततोगत्वा यह मनोरंजन का एक प्रमुख स्त्रोत माना जाने लगा। परिणामस्वरूप उन्हें इससे आनन्द, उत्साह एवं हर्षोन्मुख मानसिक संतुष्टि का बोध हुआ।

आभूषणः सौन्दर्य प्रेम मानव का सहज गुण है। मानव की यह सौन्दर्यप्रियता व्यक्तित्व को सुन्दर और आकर्षक बनाती हैं एक तरफ यह व्यक्ति को सुन्दर बनाने का साधन माना गया है तो दूसरी तरफ मनोरंजन का भी प्रमुख साधन रहा। मनुष्य की यह सौन्दर्यप्रियता प्राग्वैदिक काल से ही रही है। जैन पुराणों में सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए आभूषण की उपादेयता का प्रतिपादन हुआ है। महापुराण में वर्णित है कि कुलवती नारियाँ अलंकार धारण करती है[371] जबकि विधवा स्त्रियाँ इसका परित्याग कर देती है।[372] महापुराण में विभूषणांग नामक कल्पवृक्षों का प्रतिपादन किया गया है[373] जो विभिन्न प्रकार के आभूषण एवं

प्रसाधन सामग्री प्रदान करते थे। प्राचीन काल से वृक्षों के द्वारा जीवनोपयोगी भोजन, वस्त्र, आभूषण एवं प्रसाधन सामग्री की उपलब्धि होने के उल्लेख प्राप्त है। शाकुंतलम में वर्णित है कि शकुन्तला की विदाई के शुभावसर पर वृक्षों ने उसको वस्त्र, आभरण एवं प्रसाधन सामग्री प्रदान की थी।[374]

महापुराण में विभिन्न मणियों के प्रयोग से आभूषणों के निर्माण का उल्लेख किया गया है **पद्मरागमणि**[375], **मरकतमणि**[376], **स्फटिकमणि**[377], **मुक्ता**[378], **गोमुखमणि**[379], **प्रवाल**[380], **वज्र**[381], **हीरा**[382], **इन्द्रमणि**[383], इसके दो प्रकार बनाए गए है हल्के नीले रंग की मणि को इन्द्रनीलमणि तथा गहरे नीले रंग की मणि को महाइन्द्रमणि कहा जाता है।

महापुराण में नर और नारी दोनों के आभूषणों में विशेष अन्तर नही है दोनों के आभूषण समान है अंगद, वलय, हार, मुद्रिका, कुण्डल दोनों के ही आभूषण है। पुरूष वलय बाँये हाथ में पहनते थे। वे गले में माला भी धारण करते थे। कमर के आभूषणों में रशना, मेखला, कांची और पैरों में नुपूर नारियाँ ही धारण करती थी। पुष्पों का प्रसाधन भी नारियों द्वारा ही किया जाता था। पुरूषों के शिखान्मणि, किरीट और मुकुट विशेष आभूषण थें। किरीट, मांलि और मुकुट राजा, सामन्त ही पहनते थे, साधारण व्यक्ति नही।

सिर को विभूषित करने वाले अंलकरणों में **मुकुट**[384], **किरीट**[385], **चूड़ामणि**[386], **किरीटी**[387], **मौलि**[388], **पट्ट**[389], **उत्तंस**[390], **कुन्तली**[391] आदि है। कानों में भी आभूषण धारण किए जाते थे। स्त्री–पुरूष दोनों ही के कर्ण बालियों में छिद्र होते थे और दोनों ही इसे धारण करते थे। कुंडल[392], कर्णपुर, अवतंस आदि कर्णाभूषण में परिगणित होते है। कुंडल के अनेक नाम महापुराण में मिलते है : **मणिकुण्डल**[393], **रत्नकुण्डल**[394], **कुण्डली**[395], **मकरांकित कुण्डल।**[396] इनका उल्लेख समराइच्चकहा, यशस्तिलक, अजन्ता की चित्रकला तथा हम्मीर महाकाव्य में भी उपलब्ध है।[397] स्त्री व पुरूष गले में भी आभूषण धारण करते थें जिन्हें कण्ठाभूषण कहा गया है। कण्ठाभूषण के निर्माण में मात्र मोती और स्वर्ण का ही प्रयोग होता था जिसे नर–नारियाँ बड़े ही आनन्द के उत्सवों, पर्वो, मंगलकार्यो एवं आमोद–प्रमोद के अवसर पर धारण करती थी। वास्तव में तो

आभूषण दिन–प्रतिदिन ही धारण किये जाते थे। कण्ठाभूषणों में यष्टि, हार, रत्नावली आदि। महापुराण में गले में पहने जाने वाले आभूषणों की एक लम्बी सूची मिलती है। हार लड़ियों के समूह को कहा गया है।[398] लड़ियों की संख्या के न्यूनाधिक होने से हार के ग्यारह प्रकार होते थें। **1. इन्द्रच्छन्द हार[399], 2. विजयच्छन्द हार[400], 3. हार[401], 4.देवच्छन्द हार[402], 5. अर्ध हार[403], 6. रष्मिकलापहार[404], 7. गुच्छ हार[405], 8नक्षत्रमाला हार[406] 9. अंर्धगुच्छ हार[407], 10. माणव हार[408], 11.अंगमाणव हार[409]।** हार के ग्यारह प्रकारों के साथ यष्टि के पांच प्रकारों को भी सम्मिलित कर लिया जाए तो इसके 55 उपप्रकार हो जाते है। उक्त सभी आभूषण गले का सौन्दर्य बढाकर आनन्द और सुख की प्राप्ति कराते थे। उक्त आभूषणों के अतिरिक्त गले में कण्ठमालिका[410], कण्ठाभरण[411] हारलता[412], वल्लरी[413], हारवल्लरी[414] मणिहार[415], मुक्ताहार[416], आदि भी विभिन्न अवसरों पर धारण किए जाते थें।

हाथ में पहने जाने वाले आभूषणों में **अंगद[417], केयूर[418], कटक[419] एवं मुद्रिका[420]** आदि प्रचलित थे। स्त्री व पुरूष दोनों ही इन्हें पहनते थे। स्त्री के घुधंरू सहित आभूषण होते थें लेकिन पुरूष सारे आभूषण ही पहनता था। कमर में **कान्ची[421], मेखला[422], रसना[423], दाम[424], किंकिणीयुक्त मणिमयदाम[425]** आदि आभूषण धारण किए जाते थे। इन्हें स्त्री–पुरूष दोनों धारण करते थे।

पैरों की सजावट के लिए भी तत्कालीन युग में आभूषण प्रयोग में लाए जाते थे। उपर्युक्त साक्ष्यों से प्रमाणित हो जाता है कि भारतीय समाज में नारियों का प्रदर्शन आभूषण प्रिय होने के रूप में मिलता है। इसी के साथ ही वे नारियाँ आभूषण धारण करके गौरवान्वित और आनन्दित अनुभव करती है। इससे उनकी मनोरंजनात्मक प्रवृत्ति की भी झलक मिलती है।

खान–पान: प्राचीन भारतीय समाज में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक खान–पान ने मनोरंजन के साधनों में अपना प्रमुख स्थान बना लिया। महापुराण से ज्ञात होता है कि सामाजिक एवं धार्मिक क्रिया कलापों में स्वादिष्ट भोजन, मदिरा का सेवन मनोरंजन का प्रमुख साधन था।

महापुराण में भोजन सामग्री की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया गया है।[426] तथा शाकाहार पर पूर्णतः बल दिया है। जैन ग्रन्थों में माँसाहार के प्राप्त उल्लेख सामाजिक एवं धार्मिक दोनों ही दृष्टि से निंदनीय बताए है।[427] महापुराण में दस प्रकार के **भोगों—भाजन, भोजन, शय्या, सेवा, वाहन, आसन, निधि, रत्न, नगर एवं नाट्य का उल्लेख** दिया है[428] तथा भोज्य पदार्थो को चार प्रकारों में विभक्त किया गया है **अशन** (भात, दाल, रोटी आदि), **पानक** (दूध तथा जल आदि पेय पदार्थ), **खाद्य** (खाने योग्य पदार्थ लडडू आदि) एवं **स्वाद्य** (पान—सुपारी आदि स्वाद वाले पदार्थ) आदि चार प्रकार के आहार वर्णित है।[429] महापुराण में विभिन्न प्रकार के मधुरान्न के प्रचलन का उल्लेख मिलता है। यहाँ पकवान को ही मधुरान्न कहा गया है। चक्रवर्ती राजा के लिए दिव्य भोजन बनता था जो खाद्य, स्वाद्य, लेय और पेय का अद्भूत मिश्रण होता था। यह महाकल्याण भोजन पुष्टि कर, स्वादिष्ट, सुगंधित व प्रिय था।[430] इसके अतिरिक्त अमृतगर्भमोदक[431] एवं अम्रत कल्पखाद्य[432] भोजन भी चक्रवर्ती के लिए बनता है। उक्त दिव्य भोजन सुस्वादु, लवंग, इलायची, दालचीनी आदि पदार्थो से सुसंस्कृत किया जाता था। अन्य पकवान में अपूप[433], गुड़[434], विष्वाण[435] (कचौड़ी) आदि भी व्यवह्त थे जो भोजन को रूचिकर बनाते थे। ऐसे व्यंजनों का भी प्रचलन था जिनसे भोजन स्वादिष्ट एवं रूचिकर बनता था, दाल, दधि, घृत एवं शाक इत्यादि।[436]

महापुराण में ज्ञात होता है कि सुलोचना एवं जयकुमार मार्ग में प्रस्थान के समय एक जगह रूककर भोजन के द्वारा मनोविनोद करते थे।[437]

पेय पदार्थो में अमृतपानक का उल्लेख मिलता है। भरत चक्रवर्ती अमृतपानक के द्वारा आनन्द की प्राप्ति करते थे। यह दिव्यपानक दुग्ध, कुंकुम, कस्तूरी एवं अन्य मधुर एवं सुगंधित पदार्थो के संयोग से बनाया जाता था जो स्वाद एवं गुण दोनों में ही अमृत के समान था।[438] महापुराण में पेय पदार्थो में दूध[439], मट्ठा, कषाय रस (वर्तमान में चाय) तथा मदिरा का प्रचलन था। ये पेय पदार्थ आदिपुराण में वर्णित विभिन्न देशों के मनोरंजन के साधन थे। हेमव्याकरण के अनुसार उषीनस देश निवासी दूध पीने के शौकीन[440], सौराष्ट्र निवासी मट्ठा पीने के शौकीन, गान्धार निवासी कषाय रस पीने के शौकीन तथा वाल्हीक—मद्र

देशवासियों में सौवीर–कॉजी[441] एवं प्राच्य देशों में सुरा[442] पीकर लोग मनोरंजन करते थे।

मद्यपान/मदिरा सेवन : प्राचीन भारतीय समाज में प्रचलित मनोरंजन के साधनों में मद्यपान का महत्वपूर्ण स्थान था। महापुराण में मद्यांग जाति के वृक्षों का उल्लेख मिलता है। ये वृक्ष अत्यन्त सुगंधित तथा अमृत के साथ मीठे मधु–मैरेय, सीधु, अरिष्ट और आसव आदि अनेक प्रकार के रस देते थे।[443] आर्य पुरूषों के लिए मद्य सेवन त्याज्य बताया गया है, क्योंकि मदिरा नशा उत्पन्न करती है तथा अन्तःकरण को मोहित करती है।[444] महापुराण में कई प्रकार की सुरा बनाने का उल्लेख मिलता है :

1. **सुरा[445]** – यह मदिरा का ही रूप है। तत्कालीन भारतीय समाज में लोग मदिरा या सुरा पीने के शौकीन थे। यह कामक्रीड़ा में सहायक थी तथा स्त्री व पुरूष दोनों ही इसका सेवन करते थे।
2. **मैरेय[446]** – मिरा देश में तैयार यह मदिरा अधिक मद उत्पन्न करती थी। इसे सुवासित भी किया जाता था।
3. **सीधु[447]** – उत्तम प्रकार की मदिराओं में इसकी गणना की जाती हैं इसे राव या गुड़ से तैयार किया जाता था।
4. **अरिष्ट[448]** – यह दाख, गुड़ तथा जड़ी–बूटियों से निर्मित की जाती थी। इसमें नशा नहीं होता था।
5. **नारिकेलासव[449]** – नारियल से बनी हुई मदिरा को नारिकेलासव कहते है। यह मदिरा अन्य मदिराओं से अत्यधिक मादक होती थी। वर्णित है कि महाराजा भरत का यशगान करते हुए सिंहल द्वीप की स्त्रियाँ नारियल की मदिरा पीकर अत्यधिक मदमत्त हो रही थी। मदिरा निर्माण के योग्य वृक्षों को उखाड़कर ही मदिरा बनाई जाती थी।

कामक्रीड़ा के मनोविनोद को बढ़ाने के लिए और मनोरंजनार्थ स्त्री–पुरूष मद्यपान करते थे। उस समय सर्वसाधारण स्त्रियों में भी मद्यपान का प्रचार था। कुछ स्त्रियाँ तो वासना को उत्तेजित करने के लिए मद्यपान करती थी[450] तथा मद्य पीने के लिए घृणित कार्य भी कर देती थी। वर्णित है कि एक स्त्री ने मद्य

खरीदने की इच्छा से बालक को मारकर उसके आभूषण ले लिए।[451] मद्यपान के समान सम्मान और धर्म को नष्ट करने वाला दूसरा पदार्थ नही है। यही सोचकर ईष्यालु, कलहकारिणी, सपत्नियाँ अपनी सहवासिनियों को भरपूर मद्य पिताती थी।[452] जो स्त्रियाँ मद्यपान नही करती थी वे श्राविका मानी जाती थी।[453] विरहिनी स्त्रियाँ कामाग्नि की जलन को मद्य की जलन समझकर मदिरा का परित्याग कर देती थी।[454]

मद्यपान को अपवित्र मानते हुए महापुराण में वर्णित है कि मद्य पीने वाले को पवित्रता तथा अपवित्रता का विवेक नहीं रहता। ऋतुमती स्त्री का भी स्पर्श करने लगते है। इस तरह जगतपूज्य तथा कुलीन पुरूष भी मद्यपान के कारण बांधे जाते है।[455] मदिरा के निमित्त से ही द्वारिका का नाश हुआ था।[456] सही अर्थो में मदिरा शरीर को शिथिल कर देती है, बुद्धि भ्रष्ट कर देती है, वचनों में अस्पष्टता ला देती है। महापुराण में मद्यपान की सर्वत्र निंदा की गई है।

पारिवारिक उत्सव : प्राचीन काल से ही मनुष्य उत्सवों के द्वारा अपने नीरस एवं एकरस जीवन में रंग भरता आ रहा है। अतः मानव जीवन में उत्सवों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे जीवन में क्रियाशीलता आती है तथा आन्तरिक आनन्दानुभूति से नवोल्लास का सृजन होने से जीवन में नवीनता आती है। महापुराण में उत्सवों में जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, वर्षवृद्धिदिनोत्सव, ऋतुत्सवों, रक्षाबंधन, होलिकोत्सव आदि का उल्लेख मिलता है। इन उत्सवों द्वारा जीवन में आनन्द आता था। राजपरिवार तथा साधारण सभी वर्ग के मनुष्य इन उत्सवों के माध्यम से भरपूर मनोरंजन करते थे।

जन्मोत्सव : महापुराण में वर्णित है कि इस संसार में साधारण से साधारण व्यक्ति को भी पुत्र जन्म की प्रसन्नता होती है[457] इसी कारण माता–पिता अपनी सामर्थ्य के अनुसार पुत्रजन्म का उत्सव मनाते है, चाहे धनी हो या गरीब सभी में पुत्र जन्म पर हर्ष छा जाता है।[458] इस अवसर पर राजा एवं सामन्तों के यहाँ विषेष तैयारियाँ की जाती है। नगर को सुसज्जित किया जाता है। राजपथ को सुगंधित चंदन के जल से सिंचित किया जाता है। घर आंगन को कुंकुम केसर आदि से सुवासित करते है।

भरत चक्रवर्ती के जन्म हाने पर दादा नाभिराज व दादी मरूदेवी दोनों ही परम हर्ष को प्राप्त हुये थे।[459] पिता वृषभदेव अपने पुत्र भरत का जन्मोत्सव बड़ी धूम–धाम से सम्पन्न करते है। जन्मोत्सव पर माता को भी पवित्र आशीर्वादों से शुभकामनाएँ दी जाती है। राजभवन में भेरी नाद होता है। तुरही, दुन्दुभि, शहनाई, सितार, शंख, काहल और ताल आदि अनेक प्रकार के वाद्य बजते है।[460] सुगंधित पुष्पों की वर्षा होती है, नर्तकियों के द्वारा ताल एवं लय के साथ नृत्य एवं संगीत का आरम्भ किया जाता है। सम्पूर्ण अयोध्यापुरी की सजावट की गई थी। नगर की गलियों को चंदन जल से सींचा गया था। जो कि स्वर्ग की शोंभा को भी लज्जित कर रही थी। घर–घर में आकाश में इन्द्रधनुष और बिजलीरूपी लता की सुंदरता धारण करते हुए रत्ननिर्मित तोरणों की सुंदर रचनाएँ शोभायमान हो रही थी। भूमि पर रत्नों के चूर्ण से रंगोली बनाई गई थी तथा उनसे चौक पूरकर स्वर्णकलश स्थापित किये गये थे, जिस प्रकार समुद्र की वृद्धि होने से उसके किनारे की नदी भी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार राजा के घर उत्सव होने से समस्त अयोध्या नगरी उत्सव से सहित हो रही थी। पुत्र जन्मोत्सव पर वृषभदेव ने याचकों को मनचाहा दान दिया था। अतः नगरी में कोई भी दरिद्री नहीं था।[461] अयोध्या नगरी में पताकाएँ फहरा रही थी। सभी स्त्री–पुरूष आकर्षक एवं सुन्दर वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर आनन्द से नाच–गा रहे थे।

सामान्य परिवार के व्यक्ति भी पुत्रजन्म के अवसर पर अनेको मंगलकार्य करते है। गीत, नृत्य का आयोजन करते है। विभिन्न पक्वान्न तैयार किये जाते है। रंग–बिरंगे वस्त्रों को धारण किया जाता है। वार–वनिताओं के द्वारा कार्यक्रम में रस के संचार हेतु नृत्य किया जाता है। महापुराण में भगवान आदिनाथ का जन्म होने पर माता मरूदेवी व राजा नाभिराज भी इसी प्रकार पुत्र जन्मोत्सव मनाते है।[462] भरत चक्रवर्ती का पुत्र जन्मोत्सव एवं चक्रवर्ती रत्न की प्राप्ति दोनों का एक साथ उत्सव मनाने का प्रसंग मिलता है। भरत चक्रवर्ती भी याचकों को मनचाहा धन दान में देते है।[463]

महापुराण में पुत्री का जन्मोत्सव भी मनाने का वर्णन मिलता है।[464] अतः महापुराण कालीन समाज में पुत्र एवं पुत्री दोनों के जन्म पर हर्ष होता था तथा आनन्द की घोषणा की जाती थी।

विवाहोत्सव : प्राचीनकालीन अनेक उत्सवों में विवाहोत्सव का प्रमुख स्थान रहा हैं महापुराण में वर्णित है कि संसारी जनों को विवाह आदि लोकप्रिय धर्म ही प्रिय होता है। विवाहोत्सव में स्त्री–पुरूष अनेक आमोद–प्रमोद करते थे। विवाह से पूर्व नगरी की सजावट की जाती थी। विवाह मण्डप सुन्दर ढंग से सजाया जाता था तथा नृत्य–गान का भी आयोजन किया जाता था। चंदन, कुंकुम, कस्तूरी जैसे सुगंधित पदार्थो से विवाह स्थल को सुगंधित बना दिया जाता था। विवाहोत्सव के समय वर और कन्या को देखने के लिए नारियों की दशा का मनोरम चित्रण महापुराण में किया गया है। उत्सुकता इतनी अधिक रहती थी कि किसी का जूड़ा खुल जाता था,पर उसे बांधने की सुध भी नही रहती थी। गवाक्षों में से स्त्रियाँ वर व कन्या को देखने के लिए दौड़ पड़ती थी। केश खुले हुए, केशों के पुष्प बिखरे हुए, महावर लगाती हुई पीले पैरों से ही झरोखें की तरफ दौड़ पडती थी। विवाहोत्सव के अवसर पर सम्पूर्ण नगरी के स्त्री व पुरूष वर–वधु के सौन्दर्य के दर्शन के लिए उत्सुक रहते थे।

सभी इष्टजन उत्तम वस्त्राभूषण धारण करते हुए विवाहोत्सव में सम्मिलित होते थे। सम्पूर्ण नगरी को विवाह के लिए सजाया जाता है। चंचल सफेद पताका फहराई जाती है। तोरण बांधे जाते है, चित्र–विचित्र रंगावलियाँ बनाई जाती है। पुष्प बिखेरे जाते है। वाद्यों का सुंदर शब्द किया जाता है।

महापुराण में राजा वज्रजंघ एवं रानी श्रीमती के विवाहोत्सव का बहुत सुंदर चित्रण किया गया है। वज्रजंघ की माता अपने पुत्र का विवाह देखकर हर्षित हो उठती है।[465] विवाहोत्सव में दरिद्र लोगों को भी दान दिया गया था तथा समस्त इष्ट बंधुओं को दान, मान, सम्भाषण आदि के द्वारा सम्मान किया गया था। विवाह मण्डप में सुवर्ण के खम्भे लगे हुए थे। मण्डप में लगी हुई स्फटिक मणि की दीवाल सभी का मनोरंजन कर रही थी। मण्डप को नील रत्नों, मोतियों की मालाओं, सफेद शिखरों, वेदिका, गोपुरद्वार, रत्नों, मंगलद्रव्यों

से सजाया गया था।[466] नगरी की सुन्दरता के साथ राजभवन की भी सुन्दरता अद्वितीय होती थी। राजभवन के आंगन में सभी और चंदन छिड़का गया था तथ पुष्प बिखेरे गये थे विवाहोत्सव के समय वारांगनाओं के मांगलिक गीत गाने के भी उल्लेख मिलते है। बंदीजन, मागध जनों के साथ मिलकर मंगल पाठ पढ़ रहे थे। विवाहोत्सव के लिए वर–वधू उत्तम वस्त्राभूषण पहनते थे, विवाह के प्रसंग में सुहागिन स्त्रियाँ नृत्य, गीत, वाद्यों द्वारा मनो–विनोद करती थी। विवाहोत्सव के समय राजा बंदियों को कारागार से छोड देता था।[467] विवाह के प्रसंग में स्वयंवर का भी आयोजन किया जाता था। स्वयंवर के समय विवाहोत्सव और अधिक रोचक हो जाता था।[468]

महापुराण में सुलोचना के स्वयंवर का बहुत ही सुन्दर चित्रण आया है।[469] बताया गया है कि राजभवन अनेक प्रकार की गलियों, कोटों एवं श्रृंगार करने के गृहों से व्याप्त था। स्वयंवर गृह की रचना भी की जाती थी। इस गृह के चार दरवाजे थे जो कोट और गोपुर द्वारों से सुशोभित थे। स्वयंवर भवन नीलमणियों, चंदोवे से सुसज्जित था। स्वयंवर महाभवन लक्ष्मी के लीलागृह के समान प्रतीत होता था। स्वयंवर के अवसर पर विविध वाद्य बजते थे और घर–घर मंगलाचार होते थे। विवाहोत्सव को सूचित करने के लिए मंगलभेरी बजायी जाती थी। भूमि पर पुष्पों के उपहार, आकाश में पताकाएँ तथा बड़े–बड़े नगाड़ों का शब्द हो रहा था। स्त्रियाँ नेत्रों में काजल लगाये हूुए केशों में मालाओं को धारण किये हुए, ललाट पर चंदन तिलक लगाये हुए, उज्जवल मणियों के कंकड़ और कुंडल पहने हुए सुशोभित हो रही थी। इन स्त्रियों के कपोलों पर पत्र रचना की गई थी, पान के रस से उनके होंठ लाल हो रहे थें मुक्ताहारों से उनका कंठ सुशोभित था। वे वक्षस्थल पर चंदन का लेप किये हुए थी। उन स्त्रियों ने अनेक सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण धारण किये हुए थें। समस्त राजमहल उत्सव से सराबोर था। सुलोचना ने भी अभिषेक पर्यन्त सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये एवं मंदिर में पूजा करने के पश्चात् स्वयंवर में आकर मनोनुकुल राजा के गले में वरमाला डाली।[470] इस समय विवाह विधि की जानकारी सौभाग्यवती स्त्रियों ने तात्कालिक मांगलिक क्रियाऐं सम्पन्न की तथा मंगलपाठ, नृत्य, गान द्वारा

आमोद–प्रमोद किया। इसी संदर्भ में अन्य स्थल पर वर्णित है कि राजकुमारी गंधर्वदत्ता ने स्वयंवर विधि में योग्य राजा का चयन करने के लिए वीणावादन् की कुशलता की परख की।[471] स्वयंवर विधान ग्रन्थ की रचना का उल्लेख भी मिलता है, जिसमें वर के अच्छे और बुरे लक्षण बताये गये।[472]

जन्मदिनोत्सव :महापुराण में जन्मदिन के उत्सव को वर्षवृद्धिदिनोत्सव के रूप में उल्लिखित किया गाय है। महापुराण में राजा महाबल के जन्मदिनोत्सव का बहुत ही सुन्दर चित्रण किय गया है।[473] जिसका जन्मदिन मनाते थे उसे सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर उच्चासन से बैठाते थे। इस समय मंगलगीत, वादित्र तथा नृत्य आदि से जन्मदिन की शुरूआत की जाती थी। मंत्री, सेनापति, पुरोहित, सेठ तथा अन्य अधिकारी लोग मंगलकामना करते थे। वारांगनाएँ श्वेत वस्त्र पहनकर नृत्य करती थी, चामरधारिणी स्त्रियाँ चमर ढोरती थी। नृत्य करते समय नारियों के अंग–प्रत्यंग अपना अद्भुत सौन्दर्य प्रदर्शित करते थे। राजा महाबल अपने जन्मदिन के अवसर पर मंत्री आदि से घिरे हुए किसी के साथ हंसकर, किसी के साथ संभाषण कर, किसी को ज्ञान देकर, किसी को स्थान देकर, किसी का सम्मान कर तथा किसी को और आदर सहित देखकर समस्त सभासदों को संतुष्ट कर रहे थे।[474] इस समय गोष्ठी का भी आयोजन किया जाता था। गोष्ठी के समय स्पर्धा देखकर राजा का चित्त अनुरंजित हो जाता था।[475] जन्मदिन के अवसर पर उपहार भी दिये जाते थे।[476] वास्तव में महापुराण कालीन भारत में जन्मदिनोत्सव आमोद–प्रमोद का विशिष्ट साधन था। अपने प्रिय पुत्रों का वर्षवृद्धिदिनोत्सव संभ्रांत परिवार के व्यक्तियों के अतिरिक्त सामान्य जनता भी मनाती थी।

क्रीड़ा पर्वत : प्राचीन भारत में मनोरंजन के लिए विशिष्ट स्थानों का चयन किया जाता था। ऐसे स्थानों में वृक्षवाटिका, वनों, उपवनों, क्रीड़ा पर्वतों का नामोल्लेख प्राप्त होता है। महापुराण में सुमेरू पर्वत की सुन्दरता का चित्रण किया गया है। जहां जन्माभिषेक किया था तथा अनेक वाद्यो, गीतों के साथ पर्वत पर उत्सव किया जा रहा था। विजयार्थ पर्वत पर किन्नर और नागकुमार जाति के देव अपनी देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा कर छह ऋतुओं के भोग भोगते

थे।[477] महापुराण में ऐसे कई पर्वतों के उल्लेख मिलते हे जिन पर कृत्रिम रूप से क्रीड़ाचल बनाये गये थे।[478] नन्दन आदि वनों से सहित मेरू पर्वत, नील निषध पर्वत विजयार्ध पर्वत, कुण्डलगिरि, रूचकगिरि, मानुषोत्तर, कैलाश पर्वत, हिमवान पर्वत, अंजनगिरि आदि अनेक पर्वतों की शोभा अत्यन्त रमणीय थी। ललितांग देव का इन पर्वतों पर क्रीड़ा करने का उल्लेख मिलता है।[479] इन क्रीड़ा पर्वतों का बड़ा ही सुन्दर विवरण किया गया है। पशु–पक्षी भी इनकी सुन्दरता में वृद्धि कर रहे थे। हरिणियाँ का अपने बच्चों के साथ लेटकर क्रीड़ा करना[480], कहीं सुवर्णमय तटों की छाया में बैठी हुई हरिणियों का सुवर्ण जैसा लगना, मद से भरे हाथियों की वनक्रीड़ा,[481] सिंहो की गर्जना[482], सर्प की क्रीड़ा[483], सारस, कलहंस के मधुर शब्द आनन्द का संचार कर रहे है। पर्वत पर लतागृह बने हुए है, जिनमें पड़े हुए झूलों पर विद्याधरियाँ दोलाक्रीड़ा का आनन्द लेती है।[484] पर्वत के वनों में अनेक तरूण विद्याधरियाँ अपने–अपने तरूण विद्याधरों के साथ विहार कर रही थी। इन विद्याधरियों ने फूलों के आभूषण एवं पत्तों के कर्णमूल बनाये थे तथा वे इधर–उधर घूमती हुई फूल तोड़ने में आसक्त हो रही थी।[485] पर्वत के किनारों पर देव, असुरकुमार, किन्नर और नागकुमार आदि देव अपनी–अपनी स्त्रियों के साथ अपने को अच्छे लगने वाले तथा अपने–अपने योग्य संभोग आदि का उत्सव करते हुए निवास करते है।[486] पर्वत कामदेव का निवास स्थान प्रतीत हो रहा था। पर्वत पर लतागृह, तालाब, बालू के टीले क्रीड़ाचल बनाए गए थे। यह एक विशिष्ट तथ्य है जो पर्वत लताएँ, गुफाएँ मनोरंजन के स्थान थे वहीं स्थल उन आत्मयोगी मुनिराज के ध्यान के स्थल या आत्मिक मनोरंजन के स्थल थे[487] ऐसी निर्जन भूमि जहाँ राक्षस नृत्य करते थे वहाँ आदि प्रभू ध्यान करते थे।[488] महापुराण में में वर्णित है कि ये पर्वत इतने अधिक रमणीय थे कि यहाँ पर क्रीड़ा करने के लिए इन्द्रों का मन भी ललचाता रहता था। पर्वत पर कामदेव का विजयोत्सव भी मनाया जाता था।[489] वनविहार, उद्यानयात्रा, नृत्यगीतादि, रति क्रीड़ा जैसे मनोरंजनों में क्रीड़ा पर्वतों का उपयोग किया जाता था। पर्वतों की गुफाएँ क्रीड़ा विनोदों के काम में आती थी।

छहों ऋतुओं के अनुरूप भोग–विलासः भारत में जलवायु अनुसार छह मौसम या ऋतु की परिकल्पना की गई है। प्राचीन काल में लोग मौसम का भी आनन्द उठाते थे। महापुराण का कथन है महाराजा वज्रजंघ ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती के साथ छहों ऋतुओं के अनुकूल नाना प्रकार के भोग भोगते हुए बहुत–सा समय बिता दिया, शरद ऋतु में खिले हुए कमलों से सजे हुए तालाबों के जल में सप्तवर्ण वृक्षों की सुंगधि से लहलहाते हुए वनों में क्रीड़ा करता था। हेमंत में मीठी धूप से तपे हुए शयनागार में वह देवी के स्तनों की उष्णता का रस लेता, शिशिर ऋतु आने पर वह केसर से पुती हुइ तथा प्रसन्नता से खिली हुई देवी श्रीमति के गले से लग जाता था था, वसन्त ऋतु में वज्रजंघ आम के वन में क्रीड़ा करता तथा श्रीमती के कानों में अशोक वृक्ष की नई कली पहनाता था। गर्मी के दिनों में जल क्रीड़ा के द्वारा श्रीमति को प्रसन्न करता हुआ विहार करता, फिर चन्दन से पुते हुए देवी के अंगों में शिरीष कुसुम के बने हुए नाना प्रकार के गहने बनाकर पहनाता था। पुनः वर्षाऋतु में जब बादल की गरज सुनकर मोर मस्त होकर नाचने लगते थें पाटों के लबालब भर जाने से प्रमत्त नदियाँ उमड़ पड़ती थी और गगन–मण्डली में घनघोर घटा देखकर कंदब के फूलों में स्वभावतः सिहरन आती थी। तब भय के मारे देवी राजा के गले लिपट जाती थी।[490] बसन्त ऋतु भी आनन्द को बढ़ाने वाली थी।

महापुराण में वर्णित है कि बसन्त ऋतु के आने पर गीत गाये जाते है। विविध खेल खेले जाते है। स्त्रियाँ झूला झूलती है। यह बसन्त ऋतु काम की उत्पत्ति भी करती है जो कि मनुष्यों और वनस्पतियों दोनों में फलता है।[491] महापुराण में ही एक अन्य प्रसंग में चक्रवर्ती भरत और रानी सुभद्रा के छह ऋतुओं के भोगों का वर्णन दिया गया है।[492] भरत चक्रवर्ती इन ऋतुओं में वर्धमानक नाम की नृत्यशाला में[493] धारागृह नामक गर्मी को नष्ट करने वाले स्थान में[494] गृहकूटक नाम वर्षा ऋतु में निवास करने वाला महल[495], जीमूत नाम का स्नानगृह[496] आदि कई भोगोंपभोग के साधनों के साथ सुप्रभा के साथ क्रीड़ा करता था। आनन्द प्राप्ति में ऋतुओं की सुन्दरता का महती योगदान होता है। काल विशेष के इसी सौन्दर्य का आनन्द विलासी लोग उठाते है।

राजनैतिक मनोरंजनः प्राचीन भारत में मनोरंजन के स्वरूपों में राजनैतिक मनोरंजन का विशिष्ट महत्व रहा है। प्रारम्भ से ही राजसभा में मनोरंजनों का सहारा लिया जाता था। इस प्रकार के मनोरंजनात्मक उत्सवों का मुख्य उद्देश्य न केवल राजा या राजदरबारियों का मनोरंजन करना था बल्कि इसका सीधा सम्बन्ध साधारण जनता के मनोरंजनात्मक अभिरूचियों से था। राजा के राज्यारोहण के अवसर पर आयोजित मनोरंजनात्मक उत्सव को इसी श्रेणी में शामिल किया जा सकता है।

महापुराण के अनुसार राज्याभिषेक एक पवित्र एवं महत्वपूर्ण संस्कार था। आदि तीर्थंकर ने अपने राज्य का उत्तराधिकारी अपने बड़े पुत्र भरत को सौंपा था। वंश परम्परा से चले आ रहे राज्याभिषेक से उत्तराधिकारी की पुष्टि हो जाती थी। महापुराण में राज्याभिषेक के उत्सव एवं विधिविधान की व्यवस्था के सम्बन्ध में यथेष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। अभिषेकोत्सव में बहुत से राजागण उपस्थित रहते थे। मंत्री और मुकुटबद्ध राजा पट्टबंधन करते थे। पट्टबंधन के समय भावी राजा छोटे सिंहासन पर तथा महाराजा बड़े सिंहासन पर विराजमान हाते थे। अभिषेक के शुभ अवसर पर विभिन्न प्रकार के वाद्य, शंख, झालर, तूर्य, दुन्दुभि आदि बजाये जाते थे। स्त्रियाँ चमर ढुराती थी। युवराज को सभी प्रकार के वस्त्राभूषण पहनाये जाते थे।[497] महाराज उत्तराधिकारी के मस्तक पर अपने मस्तक का मुकुट उतारकर पहनाते थे। इस समय महाराज, पुरोहित, सामन्तवर्ग भावी राजा को आशीर्वाद देते थे।

महापुराण में **वज्रनाभि का राज्याभिषेक[498], भगवान वृषभदेव का राज्याभिषेक[499], भरत चक्रवर्ती का राज्याभिषेक[500]** महोत्सव का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। राज्याभिषेक की विधि होने से पूर्व समस्त नगर को ध्वज व पताकाओं से सजाया जाता था।[501] आनन्द की महाभेरी बजती थी, वारवनिताएँ मंगलगान करती थी और देवांगनाओं द्वारा नृत्य किया जाता था।[502] बंदीजन मंगलपाठ करते थे और समस्त वातावरण जय जीव की घोषणा से आल्हादित हो उठता था।[503] राज्याभिषेक की क्रियाओं को विधिपूर्वक सम्पन्न करने के लिए सभामण्डप के मध्य भाग में मिट्टी की वेदी बनायी जाती थी। इस वेदी पर एक

आनन्दमण्डप का निर्माण किया जाता था।[504] इसके ऊपर रत्नों के चूर्ण समूह से रंगोली बनाई जाती थी तथा विभिन्न प्रकार के सुगंधित पुष्प बिखेरे जाते थे।[505] मोतियों की बंदनवारें भी मणियों से जटिल फर्श की सुन्दरता बढ़ाती थी तथा रेशमी वस्त्र के चंदोवे सभी ओर टांग दिए जाते थे।[506] इस मण्डप के मध्य भाग में अष्टमंगलद्रव्य स्थापित किए जाते थे और देवांगनाएँ मंगलद्रव्य को लेकर वहीं खड़ी रहती थी।[507] स्नान की सामग्री एक दूसरे के हाथों मे दी जाती थी।[508] ऐसे समय देवांगनाएँ लीला सहित पैरों में नुपुर पहनकर रूनझुन करती हुई भ्रमण कर रही थी।[509] अनेक नुपुरों की ध्वनि बहुत ही मधुर और आनन्दमयी प्रतीत हो रही थी। भावी राजा को रंगभूमि में सिंहासन स्थापित कर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठाया जाता था।[510] इस समय गंधर्व मनोहर गान करते थे तथा मंगलवाद्यो की ध्वनियाँ आनन्द को बढ़ा रही थी।[511] नृत्य करती हुई अंगनाएँ अभिषेक–क्रिया सम्पन्न होने वाले परिवार का गुणगान करती थी।[512] सामन्त एवं अधीनस्थ राजन्य वर्ग औषधि मिश्रित सुवर्ण एवं राजत कलशों में रखे गए जल से अभिषेक क्रिया सम्पन्न करते थे।[513] अभिषेक क्रिया के लिए गंगा, सिंधु आदि नदियों का पवित्र जल लाया जाता था।[514] पुण्यमय गंगाकुण्ड से और सिंधुकुण्ड से भी जल लाया जाता था।[515] सरस्वती आदि अन्य नदियों से तथा स्वच्छ और निर्मल कुण्डों से जल लाया जाता था।[516] वापी जल[517], केसर कुमकुम युक्त जल[518], लवण समुद्र[519] का जल, नन्दीश्वर द्वीप आदि प्रसिद्ध स्थानों का जल लाया गया था। इसके अतिरिक्त क्षीर सागर, नन्दीश्वर समुद्र, स्वयम्भू रमण समुद्र का जल भी लाया जाता था।[520] सरयू का जल[521] तीर्थजल, कषायजल, सुंगंधित द्रव्य मिश्रित जल[522] एवं गर्म कुण्ड का जल[523] लाया गया था। इस तीर्थोपनीत जल द्वारा केसर, कस्तूरी, चन्दन तथा अनके जड़ी बूटियों मिश्रित कर जलाभिषेक किया जाता था। बंदीजन मंगलपाठ करते थे।[524] नगरनिवासी साधारण जन भी कमलपत्र के बने दोने तथा मिट्टी के घड़ों में जल भरकर चरणों का अभिषेक करते थे।[525] तदनन्तर भावी राजा को उत्तराधिकारी प्रदान करने वाले महाराजा मस्तक पर मुकुट स्थापित करते थे।[526] अन्य जैनेतर ग्रन्थों में ये क्रिया पुरोहित द्वारा सम्पन्न किए जाने का उल्लेख

मिलता है।[527] तदुपरान्त ललाट पर पट्टबंधन किया जाता था तथा विभिन्न प्रकार के सुन्दर वस्त्राभूषण भी प्रदान किए जाते थे।[528] इस क्रिया के सम्पन्न होते समय बडे बडे शब्दों वाले नगाड़े बजाए जाते थे तथा आनन्द की महाभेरियाँ बजाई जाती थी[529] और आनन्द मण्डप में राज्याभिषेक से सम्बन्धित गीत संगीत के कार्यक्रम चलते थे। इस अवसर पर धार्मिक विधि–विधान भी सम्पन्न होता था। राज्याभिषेक के अवसर पर आए अन्य देशों के राजाओं का सत्कार किया जाता था। साथ ही परिवार जनों का भी सम्मान किया जाता था।[530] याचकों को मनचाहा दान दिया जाता था।

विजयोत्सवः राजा जब युद्ध में शत्रु पर विजय प्राप्त कर अपनी राजधानी में पहुँचता था तो वह बड़े उल्लास से विजयोत्सव का आयोजन करवाता था। इस उत्सव में राजा, मंत्रीगण, राज परिवार के सदस्य तथा नागरिक सभी सम्मिलित होते थे। परिवार के सदस्यों द्वारा विजयी राजा को मंगल आर्शीवाद दिऐ जाते थे। इस समय वेश्याएँ भी आर्शीवाद तथा मंगलाक्षत के लिए उपस्थित रहती थी। सम्पूर्ण नगर को अत्यन्त सुन्दर ढंग से सुसज्जित किया जाता था। विभिन्न तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता था। विजय में उपलब्ध धन का वितरण सैनिकों द्वारा निर्धनों में किया जाता था। यह उत्सव कई दिनों तक चलता रहता था।[531]

आर्थिक मनोरंजन :

प्राचीन भारत समाज में प्रचलित मनोरंजन के विभिन्न साधनों में बहुत से ऐसे मनोरंजन के साधन थे जो मनोरंजन प्रदान करने के साथ–साथ व्यवसायिक स्वरूप भी रखते थे। तत्कालीन समाज में नाटक, नट–नर्तक, गणिका, शिकार जैसे न केवल मनोरंजन के साधन के निमित प्रयुक्त हुए थे बल्कि वे लोगों के भरण–पोषण अथवा अजीविका के प्रमुख स्त्रोत बन गए। इन कुशल कारीगरों अथवा कला विशेषज्ञों ने अपने प्रदर्शन के माध्यम से धनोपार्जन किया, जो उनके जीवन का प्रमुख अंग बना गया। महापुराण में वर्णित ये साधन निम्न हैः

नाटक : महापुराण में नाटक के विषय में वर्णित है कि पहले किसी के द्वारा किये गए कार्य का अनुसरण करना नाट्य है।[532] यह नाट्य शिष्य–प्रशिष्य रूप पात्रों में संक्रान्त होकर मनोरंजन करता है।[533] महापुराण में नाट्य शास्त्र के अनुसार ही नाट्य करने की विधि बताई गई है। आचार्य जिनदेन ने तात्कालीन समय में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की लोकप्रियता को वर्णित किया है। नाट्यशास्त्र में हाव, भाव, विलासों को मरूदेवी के हाव, भाव, विलासों से ग्रहण किया गया है।[534] संवाद, पाठ्य, गीत, अभिनय एवं रस के संयोग से नाटक का गठन किया जाता है। महापुराण में नाट्यकला के सम्बन्ध में शैलूष[535], नट–नटी[536], नर्तक आदि शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि इस काल में नट–नर्तकों के क्रिया कलाप, नाटक के रूप में समाज में विधिवत स्थान पा चुके थे। नटों की सहयोगी नटियाँ भी मनोरंजनात्मक कार्यो में सम्मिलित होती थी। नटी रंगभूमि में अनेक रूप धारण करती हुई तथा अपना शरीर क्षण–क्षण में इधर–उधर घुमाती हुई लीला दिखाती थी। आभूषणों से सजी हुई नटी अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती थी।[537]

महापुराण कालीन समय में नाट्यवेद को भी व्यवहारिक धरातल प्राप्त हो गया था। वर्णित है कि जिनैन्द्र देव के जन्म–कल्याणक के समय देवों के समूह जन्म–कल्याणक सम्बन्धी अर्थो से सम्बन्ध रखने वाले अनके उदाहरणों के द्वारा नाट्यवेद का प्रयोद कर रहा था।[538] नाट्यशास्त्र में भी वर्णन है कि नाट्कीय तत्वों ने पाड्य सामग्री को ऋग्वेद से, गीति तत्वों को सामवेद से, अभिनय को यजुर्वेद से एवं रसों को अथर्ववेद से लेकर ब्रह्मा ने नाट्यवेद की रचना की।[539] अतः स्पष्ट है कि इस समय नाट्यवेद का प्रयोग लोकप्रिय स्थिति में था।

महापुराण अनुसार ऋषभ देव के मनोरंजन हेतु इन्द्र आदि देवों ने अनेक प्रकार के नाटकों का आरम्भ किया।[540] नाटक से धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति होना ही नाटक का फल कहा गया है।[541] नाटक से पहले होने वाले संगीत को पूर्वरंग कहा जाता है।[542] पूर्वरंग प्रारम्भ करते समय इन्द्र ने कुसुमांजलि क्षेपण करते हुए सर्वप्रथम ताडण्व नृत्य आरम्भ किया।[543] ताण्डव नृत्य के प्रारम्भ में उसने नान्दी मंगल किया तदनन्तर रंगभूमि में प्रवेष किया।[544] रंगभूमि में अवतीर्ण

होते ही उसने नृत्य–संगीत युक्त विभिन्न प्रकार की अभिनय क्रियाएं सम्पन्न की। इन्द्र रंगभूमि में वैशाख आसन से खड़ा पुष्पांजलि बिखेरता हुए नाट्यरस दर्शकों में बाँटने को उत्सुक था।[545] उसने नृत्य–संगीत युक्त विभिन्न प्रकार की अभिनय क्रियाऐं कर रहा था। पुष्पांजलि क्षेपण कर उनके द्वारा ताण्डव नृत्य किया जाता था। इस समय पुष्कर, वीणा, मुरली, वंशी, मृदंग जैसे वाद्यों की प्रतिध्वनि सम्पूर्ण वातावरण को चितरंजित कर रही थी।[546] इन्द्र ने हाथ, पैर हिलाकर, कमर को, शरीर को मटकाते हुए रस को दिखलाते हुए ताण्डव नृत्य किया। इस अद्भूत दृष्य को देखकर भक्ति से प्रसन्न हुए देव–देवांगनाऐं नाना प्रकार के अभिनयों द्वारा श्रोताओं और दर्शकों का मनोरंजन कर रही थी। बीच–बीच में परदे उठाकर और गिरकर दर्शकों के हृदय में अपूर्व जिज्ञासा उत्पन्न करते थे।[547] इन्द्र के साथ देवियाँ भी नाट्य रस में भीग रही थी। नाट्यरस देवियों के शरीर में, कटाक्षों में, कपोलों में, पावों में, हाथों में, मुख पर, नेत्रों में, अंगराज में नाभि, कटिप्रदेश, मेखला पर झलक रहा था। इसी नाट्यरस की वृद्धि को प्राप्त हुई अनेक देवांगनाऐं सूचीनाट्य का प्रदर्शन कर रही थी।[548] सूची नाट्य एक ऐसी नृत्य क्रिया है जिसका प्रयोग बहुत कुशल कलाकार ही कर सकते है।[549] देव और देवियाँ इन्द्र की प्रदक्षिणा देते हुए नृत्य कर रहे थे। मध्य में इन्द्र सूत्रधार के समान था।[550] इस प्रकार आनन्द नाटक के माध्यम से इन्द्र ने गर्भावतार सम्बन्धी नाटक, जन्माभिषेक सम्बन्धी नाटक तथा भगवान के महाबल आदि दशावतार सम्बन्धी वृतांत को लेकर अनेक रूप दिखलाने वाले नाटक किये।[551] ये नाटक सदैव नहीं खेले जाते थे धार्मिक उत्सवों पर विशेष समारोह के साथ नाटक किये जाते थे। महापुराण में रंग, प्रेक्षागृह, पर्दा रंगमंचीय परिधान, भूमिका, संगीत, हास्य आदि नाटकीय सामग्रियों का उल्लेख मिलता है।[552] नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व पात्र नेपथ्य में श्रृंगार आदि करते थे।

इस काल में नाट्यशाला की भी समुचित व्यवस्था थी।[553] महापुराण में समवशरण में नाट्यशाला की सुन्दरता का वर्णन किया गया हैं ये संख्या में दो थी तथा सुवर्ण के खम्भों तथा स्फटिक मणि से देदीप्यमान थी। नाट्यशालाओं में नृत्य कर रही देवांगनाएँ सामूहिक रूप से नाट्यशाला में जिनेन्द्र देव के

विजय सम्बनधी गीत गा रही थी तथा विजय का अभिनय करती हुई पुष्पांजलि छोड़ रही थी। इस अभिनय के समय मृदंग, वीणा जैसे वाद्यों से नाट्यशाला सुशोभित हो रही थी। अनेक देव भी देवियों के साथ नाट्य में भाग लेकर आसक्ति को प्राप्त हो रहे थे।[554] इन नाट्यशालाओं को प्रेक्षागृह भी कहा गया है।[555]

प्राचीन भारतीय समाज में नट–नर्तक लोग अपनी क्रियाओं के माध्यम से तमाशों का प्रदर्शन करते थे इस तरह वे आर्थिक धनोपार्जन तो करते ही थे साथ ही सामान्य–जनों का मनोरंजन भी करते थे।महापुराण में नट–नटियों द्वारा खेल तमाशें दिखाने के वर्णन भी मिलते है।[556] खेल दिखाते समय सामान्य जनता भीड़ बनाकर उन्हें घेर लेती थी। नट, नटी वेश बदलकर भी अभिनय करते थे। स्त्री का वेश धारण कर पुरूष अभिनय करता था तथा पुरूष का वेश धारण कर स्त्री अभिनय करती थी।[557] पतंजलि के महामाष्य में स्त्री की भूमिका ग्रहण करने वाले नट, भ्रकुंस कहलाते थे।[558] अतः वेश बदलकर नट–नटी दर्शकों का मनोरंजन करते थे। महापुराण के अनुसार दर्शकों में नाट्य रस का संचार कुछ तरह से करते थे।[559]

1. **देखकर।**
2. **मुस्कुराकर।**
3. **दर्शकों का सम्मान कर।**
4. **उनके साथ वार्तालाप कर।**
5. **दर्शकों पर प्रेमपूर्ण दृष्टि डालकर।**
6. **कभी प्रसन्नता एवं कभी क्रोध प्रकट करके।**
7. **शांत रस का संचार करके।**

इस प्रकार नट–नटी का नाटक देखकर जनता भरपूर आनंद उठाती थी।

महापुराण में वर्णित है कि भरत चक्रवर्ती दस प्रकार के भोगों के साधनो से क्रीड़ा करता था इनमें नाट्यशाला भी थी जहाँ अच्छे अच्छे बाजों तथा गानों सहित बत्तीस हजार नाटकों के द्वारा मनोरंजन किया जाता था।[560]

वेश्याः प्राचीन भारतीय समाज में वेश्याएँ मनोरंजन का एक ऐसा साधन था जिसके द्वारा सम्पन्न लोग आमोद–प्रमोद हेतु इस वृत्त का अनुसरण करते थे। मनुष्य अपनी कामवासना की पूर्ति हेतु गोपनीय ढ़ंग से इस वृत्ति का अनुसरण करते थे। साधारण वर्ग की उपेक्षा सम्पन्न एवं समर्थवान व्यक्ति इस कार्य में लिप्त रहते थे। अतः समाज में मार्यादा की स्थापना हेतु वेश्यावृत्ति को स्वीकारा गया। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में वेश्या के लिए गणिका, रखैल, अप्सरा, जार, वारागंना, वारवनिता आदि शब्द प्रयुक्त हुए है।

महापुराण में वेश्या के लिये **गणिका**[561], **वारांगना**[562], **वारवनिता**[563], **वारस्त्री**[564], **पण्यस्त्री**[565] ,**कुट्टनी**[566] जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है परन्तु इन शब्दों की गंभीरता से तुलनात्मक समीक्षा करने पर उनके स्वरूप एवं कार्य में कुछ न कुछ अंतर दृष्टिगोचर होता है। महापुराण में वेश्याओं के दो वर्ग मिलते है। प्रथम वर्ग में वारांगना एवं बारनारी का उल्लेख मिलता है जो कि वेश्या की अपेक्षा अधिक पवित्र होती थी। बारांगनाएँ धार्मिक महोत्सवों में सम्मिलित होकर संगीत प्रस्तुत करती थी।[567] वारांगनाएँ मधुर मंगलगीत गाती थी। विवाह, जन्म, एवं राज्याभिषेक के अवसर पर वारांगनाओं का सम्मिलित होना मंगलमय माना जाता था। ये शुभ की प्रतीक थी एवं समाज में इनका सम्मानपूर्वक स्थान था। विवाहोत्सव के समय वारांगनाएँ मुधर मंगल गीत गाती थी तथा वर–वधु को शुभ आर्शीर्वाद देती थी। वारांगनाएँ चमर भी ढुराती थी।[568] इस काल में वारांगनाएँ कला में अत्यन्त सुंदर और आकर्षक होती थी वह राजदरबारों में, समाज में सम्मानित स्थान ग्रहण करने की अधिकारिणी होती थी। वर्णित है कि भरत चक्रवर्ती के विजयोत्सव के समय इन वारांगनाओं ने उन्हे मंगलाक्षत तथा आर्शीवाद दिये[569]। जब ऋषभदेव दीक्षा के लिए जाने लगे तब एक ओर तो दिक्कुमारी देवियाँ स्वागत के लिए खडी हो गई और दूसरी और वस्त्राभूषण पहने उत्तम वारांगनाएँ मंगल द्रव्य लेकर प्रस्तुत थी।[570] इसी प्रकार आदितीर्थकर के निष्क्रमण कल्याणक के समय वारांगनाएँ नृत्य करती हुई दिखलाई पड़ती है।[571] वारांगनाओं की सामाजिक स्थिति से भिन्न वेश्याओं के अन्य नाम गणिका, पण्यस्त्री, वारवनिता, वारस्त्री, कुट्टनी आदि मिलते है। ये वेश्यावृत्ति से

जीविकोपार्जन तथा मनोरंजन दोनो करती थी। महापुराण में वेश्याओं के लक्षण बताए गए है।[572]

1. **वेश्याएँ विपंका अर्थात विशिष्ट पाप से सहित होती है।**
2. **वेश्याएँ ग्राहवती–धनसन्चय करने वाली होती है।**
3. **वेश्याएँ ऊपर स्वच्छ होती है।**
4. **अन्दर से कुटिलवृत्ति वाली होती है।**
5. **अलंघ्य–विषयी मनुष्यों द्वारा वशीभूत नहीं होती है।**
6. **सर्वभोग्या– सभी वर्गो के द्वारा भोग्य।**
7. **वेश्याएँ विविध आश्चर्यों से भरी होती है।**
8. **वेश्याएँ नीच पुरूषों की ओर जाती है।**

इस प्रकार महापुराण में वेश्याओं को नीच बताकर उनकी बड़ी निंदा की गई है।[573] वेश्याऐं वर्णसंकरता से उत्पन्न होती है तथा अनेक आश्चर्यकारी कार्यों के द्वारा संसार के कामी पुरूषों का मनोरंजन करती है। पण्यस्त्री के द्वारा भी लोगों को ठगे जाने का वर्णन है वे लोगों को लुभाकर धन वसूल करती थी।[574] समकालीन ग्रंथ कुट्टनीमतम् के अनुसार पण्यस्त्री बाजारू स्त्री होती थी ये ग्राहकों का कुतूहल बढ़ाने के लिए वस्त्रादि पहनती थी लाज रखने के लिए नही। लोगों का मन लुभानें के लिए वे भड़कीला साज–श्रृंगार करती है, सामाजिक स्थिति बतलाने के लिए नही। उनका प्रेम बोल–चाल तक सीमित रहता है। ये थोड़े समय के लिए ही ग्राहकों के वश में हो जाती है। चिरकाल के लिए बाजारू वेश्या को कौन मोल ले सकता है।[575] वृद्ध लोग भी तरूण के समान बाल काले कर, आंखो में काजल लगा कर इन कुट्टिनीयों के पीछे पडतें थे। इन वेश्याओं को आयु से कोई मतलब नही होता था। इसी माया से वेश्याएँ पैसे कमाती थी।[576] बारस्त्री के और भी अनेकों कार्य थे। ये अपने गुणों से लोगों का स्वागत करती थी, नृत्य से मनोरंजन करती थी तथा मनुष्य की काम पिपासा को शांत करती थी। इन्हीं सब कार्यो के लिये युद्ध में सेनाओं के साथ बारस्त्री के जानें का वर्णन महापुराण में मिलता है।

इन गणिकाओं को उपहार में दिया जाता था। राजकुमार जयकुमार ने सुलोचना के भाईयों को विदा करते समय उनको मनचाही गणिका भेंट में दी थी।[577] वेश्याओं पर अपना सर्वस्व धन न्यौछावर करने के उदाहरण भी मिलते है। वर्णित है कि उग्रसेन ने राजा के भण्डार की रक्षा करने वाले लोगों से बलपूर्वक घी और चावल निकालकर वेश्याओं को दे दिये।[578] इस कृत्य के परिणामस्वरूप राजा उस पर लात धूसों से मार दिलवाता है। रतिपिंगल, वेश्या को पाने के लिए सेठ घर से बहुमूल्य मणियों का हार चुराता है और कामवासना की पूर्ति के उद्देश्य से वेश्या को दे देता है। इसी अपराध में उसे शूली पर चढ़ाया जाता है।[579] मूर्ख लोग वेश्याओं के रचे ढ़ोंग में फँस जाते है और उसी माया से वेश्यायें पैसे कमाती है। वेश्या के एक साथ दो कामियों को भी प्रसन्न करने का उल्लेख मिलता है।[580] अतः धन की कमाई के लिए वेश्या कुछ भी करती थी। अपनी कला, सौंदर्य के बल पर ये वेश्यायें देवों को भी आकर्षित करती थी। वेश्याओं की सुन्दरता मुनियों को भी आकर्षण उत्पन्न होने के प्रमाण मिलते है। वर्णित है कि सातेक नगर में बुद्धिषेणा वेश्या इतनी सुन्दर थी कि जिस पर मुग्ध होकर विचित्रमति मुनि ने मुनि पद पर त्याग कर दिया था।[581] वेश्याओं के आकर्षण को देखकर देवकुमार भी आश्चर्य करते थे।[582] वास्तव में ये वेश्यायें शील बेचकर धनार्जन करती थी। मद्यपान करना उनके लिए साधारण बात थी।

तत्कालीन समाज में वेश्याओं के निम्न माने जाने पर भी कुछ वेश्यायें गुणों की तरफ आकर्षित होती थी एवं व्रत अंगीकार करती थी। महापुराण में उत्पलमाला नाम की वेश्या के शीलव्रत धारण करने का उल्लेख है।[583] वास्तव में वेश्या जुआ आदि छल विद्या से पुरूषों को फँसाकर स्वगृह में रखती थी और पुरूषो से धन चूसती थी। धनवान ही वेश्या के मित्र होते थे। जिस प्रकार लोग रसहीन ईख के छिलके को छोड़ देते है, वैसे ही धनरहित मनुष्य को वेश्या छोड़ देती है।[584]

शिकार[585]**:** प्राचीन साहित्यों मे इस मृगयाविनोद से सम्बोधित किया गया है। मृगया विनोद प्रारम्भ से ही राजाओं मे विशेष रूप से मनोरंजन का साधन रहा है। दिग्विजय के लिए यात्रा करने में जितना उद्देश्य राज्य विस्तार का है, उतना ही मनोरंजन का भी। इसी प्रकार मृगया में मनोरंजन ही एकमात्र कार्य कारण है। दुर्गम कण्टाकीर्ण मार्ग, अन्धकाराच्छन्न वन, सरोवर एवं सरिता तट, समतल मैदान आदि प्रदेश मृगया के लिए उपयुक्त माने गये है। मृगया को आदि पुराण में सर्वथा हेय तथा पाप का कारण माना है। जिनसेन ने मृगया को उपमान के रूप में प्रस्तुत कर विषय शिकारी के रूप को उपस्थित किया है। मृगया करने वाले को लुब्धक,–शबर एवं किरात आदि शब्दों द्वारा अभिहित किया गया है। आदिपुराण की मान्यतानुसार पहाड़ी जातियों में मृगया विनोदार्थ नही की जाती थी, अपितु आजीविका के लिए। उनके इस आचरण की निंदा की गई है।

धार्मिक मनोरंजनः प्राचीन काल से लोगों का जीवन धर्म के प्रति विशेष अनुप्राणित रहा है। धर्म के प्रति इसी आध्यात्मिक अभिरूचि ने प्राचीन भारतीय समाज में धार्मिक परम्परा को सामाजिक व्यवस्था के अभिन्न अंग का रूप प्रदान किया। धार्मिक परम्पराओं का अनुसरण करके आध्यात्मिक शांति एवं सुख तो मिला ही साथ ही यह धार्मिक मनोरंजन का भी रूप बन गया। मनोरंजन की इस विद्या में आस्थावान धार्मिक लोगों के लिए विशेष आनन्दानुभूति मानी गई औ जो धर्म में अरूचि रखते थे उनके लिए यह मनोरंजन का नवीन स्वरूप बन गया। धार्मिक क्रियायें उत्सवों के रूप में सम्पन्न की जाती थी जिसमें जीवन की एकरसता नष्ट होकर मनोरंजन की अनुभूति होती थी। जैन आगमों में उल्लिखित इन धार्मिक उत्सवों मे पूजा, पंच कल्याणक महोत्सव, कल्याणाभिषेक आदि सम्मिलित है।

पंचकल्याणक महोत्सवः महापुराण में तीर्थंकरों के पंचकल्याणक महोत्सव, गर्भ, जन्म, दीक्षा के समय, केवल ज्ञान प्राप्त होने एवं निर्वाण के समय देवताओं द्वारा सम्पन्न किये जाते थे।[586] ये पंच कल्याणक जगत के लिए कल्याणकारी होते है। तीर्थकर का धरती पर आना, जन्म लेना, दीक्षा धारण करना, केवल ज्ञान प्राप्त करना और मोक्ष प्राप्त करना इन पाँचों प्रसंगों में जीवों को कल्याण की

प्राप्ति होती है इस समय समस्त देव एवं मनुष्य विशेष प्रकार का उत्सव मनाते है।

कल्याणाभिषेक महोत्सवः यह उत्सव भगवान के माता–पिता के स्वर्गावतरण के अवसर पर इन्द्र द्वारा सम्पन्न किया जाता है।[587]

आहार दान महोत्सवः इसमें मुनिसंघ को विधिपूर्वक हाथ जोड़कर पड़गाहन कर, नमस्कार कर भोजनााला में ले जाते है। फिर मुनियों को ऊँचे स्थान पर बैठाकर उनके चरणकमलों को प्रक्षालन करते है। पूजा, नमस्कार तथा मन, वचन, काय को शुद्ध करते है।फिर श्रद्धा, तुष्टि, शक्ति, अलोभ, क्षमा, ज्ञान और शक्ति इन गुणों से विभूषित होकर आहार देते है।[588] इस समय देव लाग पंचाश्चर्य प्रकट करते है। आकाश से रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि,जलकणों की वर्षा, दुन्दुभि वाद्यों की गर्जना, अहोदानम् के शब्द इस प्रकार देव लोग आहार दान महोत्सव हर्ष एवं आनन्द के साथ सम्पन्न करते है।[589]

पूजाः पूजा विधि से भी धार्मिक एवं आध्यात्मिक मनोरंजन होता था। पूजा के समय भगवान के मन्दिर को सुसज्जित करते थे तथा गायन, वादन, नृत्य से हर्षपूर्वक पूजा सम्पन्न की जाती थी। महापुराण में एक नगर सेठ का उल्लेख आया है जो कि प्रतिदिन दस दीनारों से, अष्टमी को सोलह दीनारों से, अमावस को चालीस दीनारों से और चतुर्दशी को अस्सी दीनारों से मन्दिर में पूजा किया करता था। इस कार्य से उसे आनन्दानुभूति होती थी तथा सुख–संतोष की प्राप्ति होती थी। पूजा के इसी गुण के कारण उसने नगर में प्रसिद्धि भी प्राप्त की।[590] अतः यह उल्लेख है कि प्राचीन भारतीय समाज में पूजा के माध्यम से लोगो ने आध्यात्मिक एवं मानसिक शान्ति, सुख एवं आनन्द की अनुभूति की। इसके परिणामस्वरूप उनका किसी न किसी रूप में धार्मिक मनोरंजन भी हुआ। उपरोक्त तथ्यों के यह निष्कर्षित है कि महापुराण कालीन समाज के नागरिक विभिन्न मनोरंजनात्मक प्रक्रियाओं का हिस्सा बन अपने जीवन में रस भरते थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आदिपुराण 29/153
2. वही 36/76
3. वही 44/342
4. वही 36/58
5. वही 36/59
6. कामसूत्र पृष्ठ 29
7. आदिपुराण 8/162
8. वही 14/198
9. उत्तरपुराण 61/175
10. आदिपुराण 14/200
11. अष्टाध्यायी 4.2.57,3.3.36
12. उत्तरपुराण 61/58
13. वही 70/473–494
14. हरिवंश पुराण 2/30/1–61, विष्णुपुराण 5/20/51–68, ब्रह्मपुराण 193/152, भागवतपुराण 10/42/32
15. आदिपुराण 20/261
16. उत्तरपुराण 46/155–160
17. नृत्य गीत सुखा ळपैवरिणारोहा आदिभिः।
    वनवापी सरः क्रीडा कन्दुकादि विनोद नैः ।। आदिपुराण 4/5/183
18. वही 3/58
19. उत्तरपुराण 75/262
20. आदिपुराण 5/273
21. वही 26/17
22. उत्तरपुराण 41/128
23. स्नान भोजन वा वाद्य गीत नृत्य विनोदनैः । आदि. 46/111
24. वही 37/152
25. वही 23/47

26. उत्तरपुराण 63/289
27. आदिपुराण 4/111
28. वही 4/64
29. वही 35/230
30. वही 35/223
31. वही 19/136, 4/60, 9/56, 5/290, 8/34, 6/51
32. वही14/19
33. वही 10/74
34. वही 15/10
35. वही 4/61, 3/170, 5/218
36. वही 7/159
37. वही 5/6
38. उत्तरपुराण 41/37
39. आदिपुराण 1/208
40. उत्तरपुराण 47/44
41. आदिपुराण 3/170
42. वही 9/3
43. वही 19/140
44. वही 6/72, 4/61, 15/114
45. वही 26/18
46. वही 14/69, 14/199, 26/150
47. वही 4/74, 26/127, 14/69, 9/15, 15/110
48. वही 6/74, 11/27, 12/21
49. वही 29/46
50. वही 3/176
51. उत्तरपुराण 46/96
52. वही 63/77
53. वही 77/77

54. आदिपुराण 41.68

55. वही 1/32

56. वही 30/107

57. वही 29/161

58. वही 8/131, 29/153, 10/42

59. वही 4/78

60. वही 31/26

61. वही 8/231

62. वही 12/105

63. वही 10/119, 8/36

64. वही 30/108

65. वही 30/107

66. वही 30/107

67. वही 30/106

68. वही 8/122

69. वही 30/107

70. वही 30/107

71. वही 30/107

72. आदिपुराण 31/157

73. उत्तरपुराण 61/25

74. आदिपुराण 15/367

75. उत्तरपुराण 63/160

76. वही 63/162

77. वही 63/158

78. वही 63/52

79. आदिपुराण 8/22–28

80. वही 8/22

81. वही 8/28

82. वही 4 / 180, 14 / 206
83. वही 37 / 150
84. समरागंण सूत्रधार 31 / 117,142
85. आदिपुराण 14 / 205
86. वही 12 / 107
87. वही 14 / 204—206
88. उत्तरपुराण 46 / 56
89. वही 68 / 148
90. वही 71 / 129
91. आदिपुराण 37 / 47
92. आदिपुराण 12 / 189
93. वही 8 / 19—20
94. वही 14 / 207—208
95. वही 27.41
96. प्राचीन भारतीय मनोरंजन, मन्मथ राय, पेज न. 204
97. आदिपुराण 27 / 139
98. उत्तरपुराण 46 / 58
99. वही 70.227
100. आदिपुराण 36 / 174
101. वही 23 / 14
102. वही 23 / 16
103. वही 23 / 18
104. वही 23 / 20
105. वही 23 / 25
106. वही 22 / 30—34
107. वही 23 / 92
108. वही 23 / 93
109. वही 9 / 8

110. वही 19/134

111. वही 19/133

112. उत्तरपुराण 47/9

113. वही 59/75

114. उत्तरपुराण 59/75–77

115. वही 59/75–80

116. वही 61/73–74

117. वही 61/167

118. वही 72/215

119. आदिपुराण 14/193–194

120. वही 17.146

121. उत्तरपुराण 43/107

122. वही 68/152

123. वही 68/197

124. वही 68/198–202

125. वही 72.1115, 162–165

126. वही 68/193

127. वही 68/163

128. आदिपुराण 17/154

129. वही 6/181, 9/23

130. वही 7/120–155

131. उत्तरपुराण 63/366

132. आदिपुराण 7/121–130

133. वही 7/128

134. वही 7/126

135. वही 7/124

136. वही 7/128

137. वही 7/129

138. वही 7/130

139. वही 7/132

140. वही 7/133

141. वही 7/135

142. वही 7/117

143. उत्तरपुराण 46/161—166

144. आदिपुराण 16/121

145. वही 16/121

146. उत्तरपुराण 75/27—28

147. आदिपुराण 14/192

148. उत्तरपुराण 75/101

149. उत्तरपुराण 45/104—106

150. उत्तरपुराण 45/167—168

151. वही 62/201

152. आदिपुराण 1/117 , उत्तरपुराण 74/12

153. उत्तरपुराण 74/11

154. वही 74/12

155. आदिपुराण 1/118

156. वही 1/118

157. वही 1/119

158. वही 1/122

159. वही 35/212

160. उत्तरपुराण 45/105

161. वही 45/168

162. आदिपुराण 37/35

163. उत्तरपुराण 47/82

164. आदिपुराण 1/126—134

165. उत्तरपुराण 75/253

166. आदिपुराण 1/135–136
167. वही 14/191
168. वही 5/9
169. वही 7/65
170. वही 12/188
171. वही 14/192
172. वही 12/188
173. वही 12/188
174. वही 14/192, 12/188
175. वही 12/187
176. वही 14/191
177. वही,29/94
178. वही, 29/91–93
179. वही, 29/93
180. वही, 14/191
181. वही, 14/191
182. वही, 12/188
183. वही, 14/192
184. वही, 14/192
185. वही, 11/138
186. वही, 12/220–248
187. वही, 7/126
188. वही, 15/194
189. वही, 43/223
190. वही, 4/197
191. वही, 8/19–20
192. वही, 62/76–77
193. वही, 16/197

194. वही, 15 / 202

195. वही, 13 / 174

196. वही, 26 / 12

197. वही, 48 / 209

198. वही, 16 / 197

199. वही, 13 / 58

200. वही, 7 / 243

201. वही, 12 / 121–122

202. वही, 13 / 174

203. वही 17 / 110

204. वही 12 / 21

205. उत्तरपुराण 47 / 350

206. आदिपुराण 26 / 12

207. उत्तरपुराण 62 / 467–472

208. वही 45 / 111

209. आदिपुराण 26 / 119

210. 12 / 188

211. वही 16 / 120

212. वही 37 / 75–76

213. वही 15 / 47

214. उत्तरपुराण 68 / 188

215. आदिपुराण 12 / 239

216. वही 12 / 199

217. उत्तरपुराण 70 / 295–296

218. वही 70 / 301

219. आदिपुराण 14 / 117

220. वही 12 / 203

221. लालमणि मिश्र, भारतीय संगीत वाद्य, प्र, 182

222. उत्तरपुराण 75/227

223. वही 75/227–235

224. आदिपुराण 12/207

225. उत्तरपुराण 54/192

226. आदिपुराण 37/174, 14/515

227. वही 12/208, 13/13

228. वही 13/13

229. वही 8/45

230. उत्तरपुराण 62/136–137

231. वही 63/389

232. आदिपुराण 3/174, 5/169, 12/204, 13/177, 16/37, 28/195

233. वही 12/204–206

234. वही 23/62, 12/207

235. वही 12/207

236. वही 15/147, 23/63, 4/77

237. वही 7/242

238. वही 15/147

239. वही 22/14

240. वही 13/177, 23/61, 17/206, 13/177, 5/261, 6/89

241. वही 25/58

242. वही 7/225

243. वही 13/101, 177

244. वही 17/106

245. वही 13/7

246. वही 15/147

247. वहीं 15/147, 17/113, 12/139

248. वहीं 17/113

249. वही 15/147

250. वही 12/257
251. वही 13/13
252. वही 12/209
253. वही 6/188
254. वही 13/13
255. वही 13/13
256. वही 15/37–44
257. वही 12/199–200
258. वही 12/209, 15/147, उत्तरपुराण 68/549
259. वही 14/116
260. वही 13/181
261. वही 6/194, 13/13
262. वही 15/147
263. वही 15/147
264. वही 36/176
265. वही 16/119
266. वही 14/119
267. वही 14/145–147
268. वही 12/191
269. वही 12/190
270. वही 12/195
271. वही 12/194
272. वही 12/196
273. वही 14/145–147
274. वही 12/197
275. वही 12/197
276. वही
277. वही

278. वही

279. वही 17／109

280. वही 14／159

281. वही 14／149—150

282. वही 14／155

283. वही 14／153, 62／428

284. वही 47／15

285. वही 47／11

286. वही 3／174—175

287. वही 5／269

288. वही 13／213

289. वही 3／170

290. वही 22／7

291. वही 36／175

292. वही 36／174—175

293. वही 11／141

294. वही 37／149

295. वही 16／120

296. वही 14／120—121

297. वही 14／114

298. वही 14／133

299. वही 3／170

300. वही 14／128

301. वही 14／130—131

302. वही 14／136

303. वही 14／36

304. वही 14／157

305. वही 14／144

306. वही 14/142

307. वही 14/133, 14/155

308. वही 4.77

309. वही 3/170

310. वही 14/150

311. वही 14/141

312. वही 14/143

313. वही 7/7

314. वही 14/148–149

315. उत्तरपुराण 58/67

316. वही 62/429

317. वही 62/465

318. वही 46/299

319. आदिपुराण 14/193

320. वही 14/195–196

321. वही 20/21–22

322. वही 1/17

323. वही 25/327

324. वही 27/126

325. वही 14/9

326. वही 14/6

327. कुमारसंभव 3/30

328. आदिपुराण 7/134

329. उत्तरपुराण 43/248

330. वही 43/249

331. आदिपुराण 31/61

332. वही 1/81, 6/80, 8/9, 9/11

333. वही 8/200

334. वही 12/34, 13/178, 9/7, 31/61

335. वही 7/133

336. वही 7/145

337. वही 4/86

338. वही 14/88

339. वही 9/5

340. वही 15/88

341. वही 20/18, 11/133, 16/234, 5/257, 10/205, 9/42, 3/34, 3/108, 17/167, 16/88, 11/120

342. वही 5/288

343. वही 9/8

344. वही 11/18

345. वही 37/107, 12/41

346. वही 2/6—17

347. वही 6/80

348. वही 9/21

349. वही 12/221

350. वही 7/232, 15/90

351. वही 12/53

352. वही 15/90

353. वही 5/276

354. वही 17/211

355. वही 14/88

356. वही 7/239

357. वही 10/181, 11/133, 12/30, 15/23

358. वही 16/134

359. मोतीचन्द्रः प्राचीन वेश—भूषा पृ. 55

360. आदिपुराण 12/176, 672, 8/8

361. वही 9/42

362. वही 12/173

363. वही 9/24, 9/42, 11/27, 6/66

364. वही 3/188

365. उत्तरपुराण 43/211

366. आदिपुराण 9/48

367. वही 9/48, 13/48

368. वही 13/70

369. वही 10/178

370. वही 1/7

371. वही 39/193

372. उत्तरपुराण 62/29

373. वही 68/225

374. आदिपुराण 9/41

375. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/5

376. आदिपुराण 13/136

377. वही 13/138

378. वही 13/154

379. वही 7/231, 15/81

380. वही 14/14

381. वही 35/142

382. वही 12/44, 35/234

383. वही 2/10

384. उत्तरपुराण 58/86

385. आदिपुराण 9/41, 10/126, 15/5, 16/234, 3/91, 3/130, 3/154, 5/4

386. वही 11/133

387. वही 14/8, 4/94

388. वही 3/8

389. वही 9/189

390. वही 16/233

391. वही 14/7

392. वही 3/78

393. वही 10/127, 11/17, 11/133, 14/10, 16/234, 16/13, 3/130, 3/154, 2/257

394. वही 33/124, 9/190, 14/11

395. वही 4/177, 15/189

396. 3/78

397. 16/33

398. देवीप्रसाद मिश्रः जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन प्र. 155

399. हारोयधि कलाप : स्यात्/आदिपुराण 16/55

400. वही 16/56

401. वही 16/57

402. वही 16/58

403. वही 16/58

404. वही 16/58

405. वही 16/59

406. वही 16/59

407. वही 16/60

408. वही 16/61

409. वही 16/61

410. वही 16/61

411. वही 6/8

412. वही 15/193

413. वही 29/167

414. वही 15/192

415. वही 15/193, 15/194

416. वही 14/11

417. वही 7/231, 15/81

418. वही 7/235, 15/199, 9/41, 11/144, 11/133, 14/12, 14/283

419. वही 9/41, 9/190, 11/133, 14/12, 15/20, 15/199, 4/181, 5/287

420. वही 14/12, 15/199, 16/236, 7/235

421. उत्तरपुराण 47/219, 7/235

422. आदिपुराण 12/29–30, 14/213, 7/129

423. वही 15/23

424. वही 2/236, 15/203

425. वही 4/184

426. वही 14/13

427. वही 20/86

428. वही 39/29

429. उत्तरपुराण 54/119

430. आदिपुराण 9/46

431. वही 37/187

432. वही 37/188

433. वही 37/189

434. वही 8/236–237

435. वही 20/277

436. वही 36/112

437. वही 3/202

438. उत्तरपुराण 45/111

439. आदिपुराण 37/189

440. आदिपुराण 26/42

441. हेम व्याकरण 5/157

442. वही 5/1/158, 2/3/77

443. वही 2/3/76

444. आदिपुराण 9/137

445. वही 9/39

446. वही 36/87

447. वही 9/37

448. वही 9/37

449. वही 9/37

450. वही 30/25

451. उत्तरपुराण 44/291

452. वही 46/281

453. वही 44/289

454. वही 44/290

455. वही 44/288

456. आदिपुराण 22/126

457. उत्तरपुराण 72/180

458. वही 59/20

459. आदिपुराण 26/1

460. वही 15/144

461. वही 15/147

462. वही 15/152—157

463. वही 13/25—26

464. वही 26/1—2

465. उत्तरपुराण 63/116—117

466. आदिपुराण 7/210

467. वही 7/212

468. वही 7/243

469. उत्तरपुराण 46/358

470. वही 43/196—339

471. वही 43/208–214

472. उत्तरपुराण 67/227–231

473. वही 75/327–334

474. आदिपुराण 5/1

475. वही 5/7

476. वही 5/9

477. वही 5/11

478. वही 13/66–80

479. वही 21/89

480. वही 21/147

481. वही 5/290–292

482. वही 23/33

483. वही 23/40

484. वही 22/117

485. वही 21/128–133

486. वही 22/117

487. वही 21/147

488. वही 20/215

489. वही 19/101

490. वही 19/96

491. वही 9/1–20

492. उत्तरपुराण 68/43–44

493. आदिपुराण 37/116–142

494. वही 37/149

495. वही 37/150

496. वही 37/151

497. वही 37/152

498. वही 11/39–45

499. वही 11／39—45

500. वही 16／193—240

501. वही 37／4—15

502. वही 16／196

503. वही 16／197

504. वही 16／198

505. वही 16／199

506. वही 16／200

507. वही 16／201

508. वही 16／202

509. वही 16／203

510. वही 16／204

511. वही 16／205

512. वही 16／206

513. वही 16／207

514. वही 16／208

515. वही 16／209

516. वही 16／210

517. वही 16／211

518. वही 16／214

519. वही 16／212

520. वही 16／213

521. वही 16／215

522. वही 16／225

523. वही 16／227

524. वही 16／228

525. वही 16／229

526. वही 16／225

527. वही 16 / 231

528. रामायण

529. वही 23 / 60

530. वही 37 / 7–8

531. वही 37 / 6

532. वही 28 / 209–212

533. वही 14 / 96

534. वही 14 / 98

535. वही 12 / 15

536. उत्तरपुराण 74 / 210

537. वही 75 / 469

538. आदिपुराण 3 / 174–175

539. वही 13 / 176

540. प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन प्र. 162

541. आदिपुराण 14 / 101

542. वही 14 / 105

543. वही 35 / 191

544. वही 14 / 106

545. वही 14 / 107

546. वही 14 / 108

547. वही 14 / 115–118

548. वही 14 / 112

549. वही 14 / 145–147

550. वही 14 / 142

551. वही 14 / 154

552. वही 14 / 103

553. वही 26 / 53

554. वही 22 / 150, 5 / 275

555. वही 22 / 155

556. वही 22 / 260

557. उत्तरपुराण 70 / 203—204

558. वही 47 / 11

559. पतंजलि महाभाष्य 2 / 1 / 69

560. आदिपुराण 31 / 34—37

561. वही 37 / 59

562. वही 6 / 181

563. वही 7 / 244

564. वही 28 / 209

565. वही 31 / 160

566. वही 27 / 119

567. वही 27 / 120

568. वही 7 / 243—244

569. वही 38 / 255

570. वही 28 / 209

571. वही 27 / 83

572. वही 27 / 86

573. उत्तरपुराण 61 / 180—181

574. वही 44 / 298

575. आदिपुराण 27 / 119

576. कुट्टनीमतम् 6 / 89—90

577. आदिपुराण 27 / 120

578. उत्तरपुराण 45 / 184

579. आदिपुराण 8 / 225

580. उत्तरपुराण 46 / 275

581. वही 63 / 368

582. वही 61 / 263—265

583. वही 74/42

584. वही 46/302

585. वही 50/48

586. आदिपुराण 5/128, 11/202

587. उत्तरपुराण 72/275

588. आदिपुराण 8/173

589. वही 8/172–175

590. उत्तरपुराण 70/148–149

अध्याय–सप्तम

समीक्षा एवं उपसंहार

उपसंहार

जैन धर्म वैराग्य प्रधान धर्म है, जैन ग्रन्थों में संयम, तप, ध्यान, साधना, व्रत, उपवास दीक्षा, कर्मसिद्धान्त, पाप, पुण्य का मुख्य रूप से विवेचन मिलता है। जैन पुराण रचनाकारों ने किसी नगर के महत्व और ऐश्वर्य का वर्णन करते समय, राजा की दिनचर्या बतलाते समय, शलाकापुरूषों का जीवन वृत्तांत देते समय, तीर्थंकरों के कल्याणकों के विवरण के समय, दम्पत्ति की काम क्रीड़ा के समय, उत्सवों (धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक) का विवरण देते समय उन दिनों के समाज में प्रचलित मनोरंजन के साधनों का दिग्दर्शन कराया है।

जैन पुराणों में मनोरंजन विषयों की जो सामग्री प्राप्त होती है। उससे एक और तो मनोरंजन के अनेक प्रकारों का पता चलता है तो दूसरी और मनोरंजन की सात्विकता के विषय में जैन पुराणकारों की विशेष दृष्टि की भी जानकारी प्राप्त होती हैं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध जैन पुराणों के विशेष संदर्भ में प्राचीन भारतीय मनोरंजन" सात अध्यायो में विभक्त किया गया है।

1. विषय प्रवेश
2. पुराणों का उद्‌भव एवं विकास
3. जैन पुराणों का क्रमिक विकास व उनकी विषयवस्तु
4. मनोरंजन शब्द, आयाम, अर्थ, रूप, एतिहासिक आधार
5. प्राचीन भारतीय मनोरंजन के साधन
6. जैन पुराणों में प्रतिपादित मनोरंजन के साधन
   (अ) पद्मपुराण में वर्णित।
   (ब) हरिवंश पुराण में वर्णित
   (स) महापुराण (आदिपुराण व उत्तर पुराण) में वर्णित।
7. उपसंहार

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में विषय में प्रवेश करने के लिए चार बातों पर विचार किया गया है।

1. **अध्ययन की प्रकृति**
2. **उद्देश्य**
3. **साहित्य का पुनर्वीक्षण**
4. **शोध प्रबन्ध की प्रविधि।**

द्वितीय अध्याय में पुराण का अर्थ एवं पर्याय, प्राचीनता, उद्‌भव प्रक्रिया, पुराण विषय, संख्या, क्रम, पुराणों का विस्तार एवं महत्व को प्रस्तुत किया गया है। है। पुराकाल में विद्यमान होने के कारण पुराण कहलाता है। प्राचीन काल में ऐसा हुआ था, इस पर जोर देने के कारण भी पुराण संज्ञा सार्थक होती है।

तृतीय अध्याय में जैन पुराणों का रचना काल, पुराणों की विषयवस्तु, महत्व को निरूपित किया गया है। इनके माध्यम से हमें पुराणों में वर्णित सम्पूर्ण सांस्कृतिक जीवन की मनोरंजनात्मक झाँकी की झलक देखने को मिलती है।
जैन पुराण साहित्य अपने– अपने समय के विश्व कोश है। ये विविध कथानकों, उपकथानकों के अतिरिक्त तत्कालीन संस्कृति, सामाजिक स्थिति, राजनैतिक एवं आर्थिक पक्ष का परिचय प्राप्त करने के लिये अच्छे संदर्भ ग्रंथ है। इन पुराणों में मनोरंजन के साधन के रूप में वर्णित विविध क्रीड़ाएँ, जल क्रीड़ा, वनक्रीड़ा, दोलक्रीड़ा, उद्यान क्रीड़ा, द्यूत क्रीड़ा, चित्रकारी, इन्द्रजाल, मुष्टियुद्ध, गीत, संगीत, नाट्य, वाद्य, कथा–कहानी, आख्यान, गोष्ठी, सौन्दर्य प्रसाधन, श्रृंगार, वस्त्राभूषण, विविध सामाजिक व पारिपारिक उत्सवों जैसे विवाहोत्सव, जन्मोत्सव, वर्षवृद्धिदिनोत्सव, बसंतोत्सव, ऋतुमहोत्सव, मदनोत्सव, दीपावली उत्सव, रक्षाबंधन, होलिकोत्सव एवं कई धार्मिक महोत्सव जैसे अष्टान्हिका महोत्सव, तीर्थयात्रा, पूजा–पाठ, तीर्थकरों के पंच कल्याणक महोत्सव (गर्भ, जन्म, तप, केवल, ज्ञान), नगर प्रवेशोत्सव, विजयोत्सव, विहार महोत्सव इत्यादि का वर्णन दिया गया है जिसे पढकर मन आनंद विभोर हो जाता है।

चतुर्थ अध्याय में मनोरंजन के विभिन्न अर्थ, मनोरंजन की अवधारणा,मनोरंजन का उद्‌भव एवं विकास, मनांरंजन के विविध रुप व उद्देश्यों का विवेचन किया गया है।

पंचम अध्याय में प्राचीन काल के साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक प्रमाणों के आधार पर कालक्रमानुसार प्राचीन भारतीय मनोरंजन के साधनों का अध्ययन किया गया है। प्राचीन भारतीय सामाजिक जीवन में मनोरंजन के साक्ष्य मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा के उत्खनन में खण्डहरों से प्राप्त होते है। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा के निवासी विभिन्न प्रकार की दौड़–धूप, नृत्य–गीत, आखेट, जुआ, खिलौने, शतरंज के माध्यम से जीवन की समस्याएं हल करते थे। इसके बाद प्रत्येक काल में मनोरंजन के साधनों का क्रमागत विकास देखने को मिलता है। पूर्व वैदिक एवं वैदिक काल में ओलम्पिक खेलकूद, पैदल दौडने की प्रतियोगिता, रथों की दौड़, घुडदौड़, ललित कला– नृत्य गीत, आख्यानों का वर्णन, नाटक, जादूगर का खेल, शौकीनी हस्तकला, वंश नर्त्तिन, मुष्टि युद्ध, अक्ष–क्रीड़ा, समन, सुरापान के वर्णन मिलते है। उत्तर वैदिक (ई.पू. 600 से 500 ई..) तक के काल में पालिसाहित्य, प्राकृत साहित्य तथा संस्कृत साहित्य में मिले मनोरंजन के साधनों में एकरूपता थी। आखेट, कुश्ती, उद्यान यात्रा, जल क्रीड़ा, पालतू जन्तु, मायाकार या जादूगर, गांधर्व नाटक, सुरापान, नृत्य, स्नानागार, गणिका, वनविहार, आकर्षक्रीड़ा, शालभंजिका, तालभंजिका, जीव पुत्र प्रचायिका, सहकार भंजिका, विस खादिका, नव पत्रिका, दमन भंजिका, अशोकोत्तंसिका, पुष्पावचायिका, कुंकुम क्रीड़ा, गोष्ठी, आदि उल्लिखित है। परवर्ती काल (गुप्तोत्तर काल एवं राजपूत युग) में बालोचित खेल–कूद, यष्टिकाकर्षण, नृपक्रीड़ा, कृत्रिम वृषभक्रीड़ा, निलायन क्रीड़ा, मर्कटोत्प्लावन क्रीड़ा, लंघन क्रीड़ा, भ्रामण क्रीड़ा, बाजिबाह्यालादि विनोद/पोलो, गुलिका क्रीड़ा, अंक विनोद या कुश्ती, पशु युद्ध, जुआ, व्यायाम, छहों ऋतुओं के अनुरुप भोग विलास, दोला केलि, वैशिकी, जल क्रीड़ा, उद्यान क्रीड़ा, आखेट, वन विहार का विवेचन किया गया है। परवर्ती

काल के उपलब्ध साहित्यों के क्रीड़ा कौतुको में कुछ विशेष अंतर नही है। ये भी उत्तर वैदिक काल के समान ही थे। भौगोलिक स्थिति के अनुसार क्वचित् कदाचित् कुछ प्रथक्ता अथवा अभिनवता होने पर भी मूलतः उनमें एकरसता थी। इस अध्याय से हमें प्राचीन भारत के सभी वर्गो (स्त्री, पुरुष, बच्चों) में प्रचलित मनोरंजन के साधनो की जानकारी भी प्राप्त होती है।

छठे अध्याय में जैन पुराणों में वर्णित मनोरंजन के साधनों को विभिन्न रुपों (शारीरिक,मानसिक,सामाजिक,राजनैतिक,आर्थिक, धार्मिक) में प्रस्तुत किया गया है। यह अध्याय तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में पद्मपुराण, द्वितीय खण्ड में हरिवंश पुराण एवम तृतीय खण्ड में महापुराण में प्रतिपादित मनोरंजन के साधनो को शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक मनोरंजन में विभक्त कर प्रस्तुत किया गया है। शारीरिक मनोरंजन में स्नान, पशु–पक्षी कीड़ा ,जल कीड़ा, युद्ध क्रीड़ा, कन्दुक कीडा का वर्णन दिया गया है। मानसिक मनोरंजन में द्यूतकीड़ा, इन्द्रजाल, चित्रकारी, कथा–कहानी, गोष्ठी, छह ऋतुओं के भोग, विद्यानिर्मित क्रीड़ाएं उल्लेखनीय है। सामाजिक मनोरंजन के साधनो में संगीत, उत्सव(सामाजिक व पारिवारिक), खान–पान, सौन्दर्य प्रसाधन, वस्त्र, आभूषण, बाल कीड़ा, वन क्रीड़ा, दोला कीड़ा के द्वारा मनोरंजन को परिगणित किया गया है। आर्थिक मनोरंजन में उल्लिखित नाटक, गणिका, मृगयाजीविना भरण पोषण के साथ मनोरंजन भी करते थे। राजनैतिक मनोरंजन में राज्याभिषेक महोत्सव, राजदरबारियों के मनोरंजन के उल्लेख मिलते है। मनोरंजन के धार्मिक प्रारुप के अन्तर्गत पंचकल्याणक महोत्सव (गर्भ, जन्म, तप, केवल ,निर्वाण),आहारदान महोत्सव, अष्टान्हिका महोत्सव के माध्यम से तत्कालीन समय में मनोरंजन की झाँकी को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में 7 वीं से 10 वीं शती में प्रचलित मनोरंजन के साधनो को प्रस्तुत किया गया है।

वास्तव में जैन पुराण प्राचीन भारतीय संस्कृति में मनोरंजन के तत्वों के एक बड़े अंश को प्रस्तुत करते है जिनके अन्वेषण के बिना यथार्थ में मनोरंजन सामग्री का अध्ययन अधूरा माना जाएगा। इस प्रकार जैन पुराणों में जीवन की

विभिन्न स्थितियों से गुजरते हुए मनोरंजन के विभिन्न स्वरूपों का प्रचलन देखने को मिलता है। वास्तव में मनोरंजन के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक रूप जैन धर्मानुसार भोग के साधक है परन्तु आध्यात्मिक मनोरंजन वैराग्य साधक है यह व्यवहार नय में निश्चय नय परिवर्तित होकर धीरे–धीरे मोक्ष प्राप्ति की और अग्रसर होने का संकेत करता है।

मनोरंजन के प्राचीन साधनों की वर्तमान में प्रासंगिकताः– प्राचीन प्रथ्वी के लगभग सभी देशों में मनोरंजन के बहाने लोग पाशविक प्रवृत्तियों को चरितार्थ करने का नाम जीवित रहने का मजा चखना मानते रहे, जब तथाकथित सारे समय संसार में अस्वाभाविकता की विकट ताण्डव लीला चलती रही। उन दिनों जैन पुराणों में वर्णित विशुद्धता,संयम और आत्मनियंत्रण के उदाहरणों के लिए सम्पूर्ण विश्व को कृतज्ञ होना चाहिए तथा भारतीय संस्कृति की यह देन निराली माननी चाहिए इस प्रकार अतिशयता का तीर काटते हुए और जीवदया का कार्यतः उपयोग करते हुए हमारे पूर्वज मनोरंजन के भिन्न–भिन्न साधनों के द्वारा अपनी भलाई के साथ–साथ समग्र विश्व–ब्रह्माण्ड की भलाई करने का प्रयत्न करते थे और प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरवमयी पक्ष को प्रतिबिम्बित करते थे।

सातवीं से दसवी शतीं के वर्णित मनोरंजन के इन साधनों की वर्तमान में भी लोकप्रियता व विकास देखा जा सकता है। मल्ल युद्ध या कुश्ती की बात करें तो आज राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय खेलों, ओलम्पिक में इनका आयोजन करवाया जाता है। शारीरिक सौष्ठव का मापदण्ड वही पुरातन ही है। दौड़ प्रतियोगिता को वर्तमान में रेस या मैराथन के नाम से जाना जाता है, देखने वालों व भाग लेने वालो दोनों को आनंद की प्राप्ति होती है। पशु–पक्षी क्रीड़ा, मेढ़ा, भैसा, सर्प, हाथी, सांड, कबूतर का आपस में युद्ध राष्ट्र में नहीं अपितु विदेशों में भी लोकप्रिय है। सुबह की किरणों के प्रस्फुरण के साथ ही व्यायाम सम्पूर्ण विश्व में योग के माध्यम से लोगों को स्वास्थ्य एवं मनोरंजन प्रदान कर रहा है। गेंद का प्राचीन नाम संस्कृत ग्रंथो में कन्दुक मिलता है। इसके कई

आयामों को लघु एवं विस्तरित करके विभिन्न खेल संचालित किए जाते है। बाथटब, शहरवासियों, गांववासियो के लिए भी बेहतर विकल्प है। वो सुबह की दौड़ धूप कर ठण्डे, गर्म पानी से स्नान करते है। प्रत्येक शहर के आस–पास प्राकृतिक जल स्त्रोत, झरने इत्यादि है। वर्तमान में वर्षा ऋतु, ग्रीष्म ऋतु में जलक्रीड़ा का आनंद लेने सपरिवार या समूह में जाते है। वहाँ विभिन्न प्रकार के आमोद–प्रमोद करते है।

स्वीमिंग पुल, वाटर पार्क, जल क्रीड़ा के वर्तमान में परिवर्तित रूप है। चित्रकारी, जादूगरी के कारण लोगों में विभ्रम की स्थिति पैदा होती है। यही रहस्यमयी आवरण मनोरंजन प्रदान करता है। सर्कस शो, जादूगर शो के विशेष कार्यक्रम हर जगह आयोजित किए जाते है। जहाँ बच्चों से लेकर बड़ों तक की भीड़ देखी जा सकती है।

बच्चों की बात की जाए तो कथा, कहानियों के माध्यम से उनमें रोचकता पैदा की जाती है नयी पद्धति सिखाई जाती है। वर्तमान में किटी पार्टी, क्लब, समूह, गोष्ठी के विकासमान स्वरूप है जहाँ विभिन्न कलाएँ प्रदर्शित कर मनोरंजन किया जाता है। उद्यान यात्रा, वनविहार प्रकृति की नैसर्गिक सुन्दरता को व्याख्यायित करते है। इनका रूप अब व्यावसायिक हो गया है। उत्सवों, मेलों का आयोजन सामाजिक, राष्ट्रीय स्तर पर किया जाने लगा है। इन उत्सवों में बहुत सी ऐसी मनोरंजनात्मक परम्पराएँ प्रचलित थी। जो मनोरंजन के साधन तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि वे उनके सांस्कृतिक जीवन के एक प्रभा वोत्पादक स्त्रोत बने रहे उन्हीं के माध्यम से लोगों ने विशिष्टता अर्जित करते हुए व्यावसायिक अध्यवसाय मान कर अपने जीविकोपार्जन का एक प्रमुख अंग बना लिया।

मानव की नैसर्गिक सौन्दर्योपासना की भावाभिव्यक्ति के लिए आभूषण, वस्त्र, सौन्दर्य प्रसाधन की वर्तमान में बाढ़ सी आ गई है। फिर भी अपने–अपने भौगोलिक परिवेश में सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह करते हुए इनका भिन्न–भिन्न प्रान्तों, राष्ट्रों में मनोरंजन के क्षेत्र में अलग ही स्थान है। गीत, संगीत, नृत्य वादन, नाटक द्वारा मानसिक सुकून, शांति का आभास होता है।

सिनेमा, पिक्चर, मनोरंजन जगत का सबसे बड़ा कारोबार बन गया है। हरिवंश पुराण में तो सम्पूर्ण संगीतशास्त्र वर्णित है। यह भरत के नाट्यशास्त्र के अनुरूप ही है। चूंकि अब राजा का राज्याभिषेक नहीं होता है क्योंकि लोकतांत्रिक पद्धति है। फिर भी व्यक्ति चुनाव प्रक्रिया में भाग लेकर राजनैतिक रंग में रंग जाता है।

निष्कर्ष: वास्तव में मानव का मन एक ऐसा मनोवैज्ञानिक तत्व है जो अधिक समय तक किसी विशेष विषय पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकता। अतः मनोरंजन के विभिन्न रूपों के माध्यम से मनुष्य अपने जीवन में आशा, उत्साह, प्रेरणा, कौतुहल, खुशी का संचरण कर प्रफुल्लित हो जाता है।

इतिहास कहता है कि प्राचीन प्रथिवी की सभी जातियों के मटियामेट हो जाने का मुख्य कारण था—मनोरंजन के साधनों का दुरूपयोग। प्रस्तुत शोध में आलोचित ग्रन्थों में मनोरंजन के साधनों की विस्तृत सूची मिलती है और यह भी निर्देश मिलता है कि लोग किस तरह, किस परिस्थिति में, कौनसे परिवेश, किन–किन लोगों के साथ, कहाँ–कहाँ किन साधनों के द्वारा मनोरंजन करते थे तथा सात्विकता का वातावरण बनाए रखते थे। वर्तमान में आवश्यकता है हमें इन पुरातन साधनों की और लौटने की, जो जीवन में वास्तविक रूप से उमंग, उल्लास नयी ऊर्जा भरते थे। जो कि दीर्घस्थायी छाप होती थी न कि वर्तमान के क्षर भर मनोरंजन की जिसमें वही विकार, वही तनाव, चिंता, अवसाद, थकान। अतः हमें जरूरत है कि हम प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित इन साधनों का अवलोकन व अनुसरण करें तभी प्राचीन भारतीय मनोरंजन के साधन व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के उन्नयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ–ग्रन्थ

जैन मूल ग्रंथ :

1. आचारांग सूत्रः सुधर्म स्वामी, सं. श्रीचन्द्र सुराणा,पद्म प्रकाशन, दिल्ली, 2000
2. उत्तराध्ययन सूत्र : सं. राजेन्द्रमुनि शास्त्री,श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1983
3. औपपातिक सूत्र : सं. श्री मिश्रीमल जी महाराज, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1982
4. कथा कोश : प्रभाचन्द्र सम्पा. ए .एन. उपाध्ये, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली 1974
5. कषायपाहुड़ : सूत्र एवं चूर्णि सहित : यति वृषभ, वीर शासन संघ कलकत्ता 1955
6. कल्पसूत्र : सं. एवं अनुवादक विनय सागर प्राकृत भारत, जयपुर, 1984
7. गद्यचिंतामणि :वादिभ सिंह सूरि, सम्पा. पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली 1968
8. चन्द्रप्रभचरितम् : वीरनन्दि, सम्पादक अम्रतलाल शास्त्री, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, 1971
9. चन्द्रप्रभ चरितम् : वीर नन्दि, सम्पा. काशीनाथ शर्मा, निर्णय सागर, बम्बई, 1912
10. जीवधर चम्पू : हरिशचन्द्र, सम्पा. पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली 1958
11. ज्ञानार्णव : शुभचन्द्र, सम्पा. पन्नालाल बाकलीकाल, जैन ग्रन्थागार, बम्बई 1927
12. तत्वार्थवात्तिक : अकलंकदेव, सम्पादक महेन्द्र कुमार जैन, यूनिवर्सल एजेन्सीज, देरगाँव (आसाम), वि. सं. 2044
13. तत्वार्थ सूत्र : उमास्वामि, सं. कैलाशचन्द शास्त्री, प्रकाशचन्द्र एवं सुलोचना जैन यू.एस.ए. 2006

14. तिलोयपण्णत्ति : यतिवृषभ, सम्पादक ए.एन. उपाध्ये तथा हीरालाल जैन, जीवराज जैन ग्रन्थमाला 1, शोलापुर, 1943
15. त्रिषष्टि शलाका पुरूष चरित्र (भाग 1, 2, 3) : आचार्य हेमचन्द्र अनु.एच.एम. जानसान गायकवाड़ ओरियण्टल संस्कृत
सीरीज, बडौदा, 1931–1954
16. द्रव्यसंग्रह : आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्तदेव, श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास, 1999
17. धर्माम्रत (सागार एवं अनगार) : आशाधर, सम्पादक कैलाशचन्द्र, भाग 1 व 2, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 1944
18. पद्मपुराण : रविषेण (भाग 1,2,3) सम्पादक पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2008
19. पाण्डव पुराणम् : आचार्य शुभचन्द्र, सम्पादक ए. एन. उपाध्ये तथा हीरालाल जैन, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, 1954
20. पार्श्वनाथ चरित्र : भट्टारक सकलकीर्ति,सं. पन्नालाल जैन, भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत परिषद्, 1944
21. प्रतिष्ठातिलकम् : नेमिचन्द्रकृत, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर,1925
22. प्रतिष्ठासारसंग्रह : वसुनन्दि, सं. ब्र. शीतलदासजी, मूलचन्द किसानचन्द कापड़िया, मालिक दिग. जैन पुस्तकालय, सूरत, वि.सं. 2019
23. पुराणसार संग्रह : दामनंन्दी, सम्पा. गुलाबचन्द्र जैन भाग 1, 2, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1954–1955
24. प्रवचन सार : कुन्दकुन्दाचार्य, सम्पा. अजित कुमार, पटना वीर वि. सं. 2495
25. महापुराण (आदिपुराण) : आचार्य जिनसेन (भाग 1,2) सम्पादक, पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2010
26. महापुराण (उत्तरपुराण) : आचार्य गुणभद्र (द्वितीय भाग) सम्पादक, पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2010
27. महापुराण (अपभ्रंश) : पुष्पदंत (भाग 1–4), सम्पादक देवेन्द्र कुमार जैन, माणिक्य चन्द्र ग्रन्थमाला, दिल्ली, 1979–1983

28. यशःस्तिलक चम्पू : आचार्य सोमदेव, अनु. पं. सुंदर लाल शास्त्री,भारतवर्षीय अनेकान्त परिषद्, 1977
29. श्री हनुमान चरित्रः कवि श्री ब्रह्मराय जी,भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत परिषद्
30. समयसार : कुन्दकुन्द, सम्पादक कैलाशचन्द्र, शोलापुर 1960
31. संगीत समयसार : आचार्य पार्श्वदेव,भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2006
32. सर्वाथसिद्धिः आचार्य पूज्यपाद, सं. अनुवादक पं.फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1944
33. सिद्धान्त सार संग्रह : जीवराज जैन ग्रंथ माला, 1957
34. स्वयम्भू स्त्रोत : समन्तभद्र, अनुवादक जुगलकिशोर मुख्तार, वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट, सहारनपुर, 1951
35. हरिवंश पुराण : आचार्य जिनसेन द्वितीय, सम्पादक पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1999
36. हरिवंश पुराण : आचार्य पुष्पदन्त, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
37. कार्तिकेयानुप्रेक्षा संस्कृत हिन्दी टीका सहित :स्वामी कार्तिकेय, सम्पादक आदिनाथनेमिनाथउपाध्ये, प्रकाशक परमश्रुत प्रभावक मण्डल श्रीमद्रामचन्द्रजैन शास्त्र माला, वि. सं. 2478

जैनेतर मूल ग्रंथ

1. अग्निपुराण : वेदव्यास, अनुवादक तारिणीश झा एवं घनश्याम त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1998
2. अथर्ववेद : सायण भाष्य, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1895
3. अर्थशास्त्र : कौटिल्य, अनुवादक रघुनाथ सिंह, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1986
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् : कालिदास, निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1926
5. अमरकोश : अमरसिंह, नाग प्रकाशक, जवाहरनगर, दिल्ली1989
6. अष्टाध्यायी : पाणिनि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1929

7. आपस्तम्भ ग्रह्य सूत्र : सुदर्शनाचार्य, द गवर्नमेन्ट ब्रांच प्रेस, 1898
8. आपस्तम्भ धर्म सूत्र : सं. हलस्यनाथ शास्त्री, चौखन्ना सस्कृत सीरीज प्रकाशन, वाराणसी 1969
9. आश्वलायन ग्रह्यसूत्र : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1894
10. ऋग्वेद : सायणाचार्य, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी 1991
11. ऋतुसंहार : कालिदास, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1922
12. ऐतरेय आरण्यक : श्री मत्सायणाचार्य, सं. जमुना पाठक, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2013
13. ऐतरेय ब्राह्मण : आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पूना 1931
14. कथासरित्सागर : सोमेश्वर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना,2005
15. काठक संहिता : स्वाध्याय मण्डल, औन्ध, 1943
16. कात्यायन श्रौतसूत्र : सं. श्री विद्याधर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 2004
17. कादम्बरी : बाणभट्ट, सं. मथुरानाथ शास्त्री, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1948
18. कामसूत्र : वात्स्यायन, सं. दुर्गाप्रसाद, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1964
19. काव्यमीमांसा : राजशेखर, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी 1984
20. कुमार संभव : कालिदास, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1927
21. कूर्मपुराण : वेदव्यास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1993
22. गरूड़ पुराण : खेमराज श्रीकृष्णदास, नाग पब्लिशर्स दिल्ली, 1996
23. गोपथ ब्राह्मण : इण्डोलोजिकल बुक हाउस, दिल्ली, 1972
24. गौतम धर्मसूत्र : सं. उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, 1966
25. चुल्ल बग्ग : नालन्दा, देवनगरी–पाली ग्रन्थमाला, बिहार,1959
26. छान्दोग्योपनिषद् (शांकर भाष्य) : सं. काशीनाथ शास्त्री अगाशे, आनन्दाश्रम मुद्र्णालय, पूना, 1934
27. जातक : सं. बी.ए. कौशल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 1994–95

28. तैत्तिरीय आरण्यक : आनन्दाश्रम, संस्कृत सिरीज, 1891–1898
29. तैत्तिरीय ब्राह्मण : प्रो. पुष्पेन्द्र कुमार,नाग प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली, 1998
30. तैत्तिरीय संहिता : भारत मुद्रणालय, औन्ध्र, 1945
31. दिव्यावदान : मिथिला विद्यापीठ, प्रकाशन, दरभंगा, 1958
32. देवी भागवत पुराण : सं. कमल कृष्ण स्मृति भूषण, बिबलोथेका इण्डिका, कलकत्ता, 1903
33. नारदीय पुराण : वेदव्यास, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2009
34. नायाधम्म कहाओ : सम्पादक–एन. बी. वैद्य, पुना, 1940, हिन्दी अनुवाद प्यारे चन्द्र जी महाराज, रतलाम, 1995
35. पद्मपुराण : सं. खेमराज श्री कृष्णदास, नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, नई दिल्ली, 1996 पारस्कर ग्रह्यसूत्र : हरिहर भाष्य, डॉ. हरिदत्त शर्मा, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1976
36. वृहत संहिता : वराहमिहिर, सं. अच्युदानन्द झा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी 1959
37. ब्रह्म महापुराणः सं. नागशरण सिंह,नाग प्रकाशक,जवाहर नगर, दिल्ली, 1985
38. ब्रह्माण्ड पुराण : वेदव्यास, क्षेमराज श्रीकृष्ण द्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1906
39. भविष्य पुराण : वेदव्यास, बी. उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, 1995
40. भागवत पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर, 1982
41. मत्स्य पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर, 2003
42. महाभारत : सं. रामचन्द्र शास्त्री, शंकर नरहरि जोशी चित्रशाला प्रेस, 1932, पूना
43. महाभाष्य : पतंजलि, हरियाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल, झज्जर, रोहतक, 1961–64
44. मनृस्मृति : भाष्यकार, अनुसंधानकर्ता एवं समीक्षक, प्रो. सुरेन्द्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली, 1985

45. मालविकाग्निमित्र : कालिदास, बम्बई संस्कृत सीरीज, 1889
46. मुद्राराक्षस : विशाखदत्त, एम. आर.काले, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, 2006
47. मेघदूत : कालिदास, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1940
48. याज्ञवल्क्य स्मृति : व्या. पं. थानेशचन्द्र उपैति, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001
49. रामायण : वाल्मिकि, गीता प्रेस गोरखपुर, 2001
50. रघुवंशः कालिदास, सम्पादक सीताराम चतुर्वेदी,अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, सं. 2007
51. राजतंरगिणी : कल्हण, सम्पादक रघनाथ सिंह, वाराणसी, 1969
52. लिंग पुराण : वेदव्यास, संस्कृत संस्थान, बरेली, 1970
53. वामन पुराण : अनुवादक गोपालचन्द्र, सर्वभारतीयकाशीराजन्यास, वाराणसी, 1968
54. वायु पुराण : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1905
55. विष्णु पुराण :सं. खेमराज, श्री कृष्णदास, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली,1985
56. विष्णु धर्मोत्तर पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1912
57. शतपथ ब्राह्मण : चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1964
58. शिवपुराणः वेदव्यास, सं. हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2013
59. संगीतरत्नाकर : आचार्य शार्ड़्गदेव,सं. सुप्रभा चौधरी, राधा पब्लिशर्स, 2000
60. स्कन्द पुराण : वेदव्यास, मोतीलाल, बनारसी दास, पब्लिशर्स, 1951
61. स्वप्नवासवदत्ता : सं. अनन्तराम शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1923
62. हरिवंश पुराण : सम्पादक आर. आर. शर्मा, भाग 1–2, मुरादाबाद, 1926
63. हर्षचरित : बाणभट्ट, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1912

सहायक ग्रंथ :

1. अग्नि होत्री, प्रभुदयाल : पतंजलि कालीन भारत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 1963
2. अग्रवाल, वासुदेव शरण :
    1. हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना 1958
    2. कादम्बरीःएक सांस्कृतिक अध्ययन, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1958
    3. भारतीय कला, चौखम्भा विद्या भवन,वाराणसी,1977
    4. कला एवं संस्कृति, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड,इलाहाबाद, 1958
3. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव : प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, भारती भंडार लीडर प्रेस, प्रयाग, सं. 2004
4. उपाध्याय, वासुदेव :
    1. गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग–2, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद 1995
    2. प्राचीन भारतीय स्तुप, गुहा एवं मंदिर, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1972
5. उपाध्याय, बलदेव : पुराणविमर्श, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1965
6. उपाध्याय, भगवतशरण : कालिदास का भारत, भाग 1–2, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003
7. उपाध्याय, रामजी : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कतिक भूमिका, लोक भारतीय प्रकाशक, इलाहाबाद, 1966
8. काणे, पाण्डुरंग वामन : धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1–3, (हिन्दी अनुवाद), अर्जुन चौबे कश्यप, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, 1992
9. कासलीवाल, कस्तूरचन्द्र : राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की सूची (भाग1–4), जयपुर, दि. जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी, 1967
10. कुमारस्वामी, ए. के. : इण्ट्रोडक्शन टु इण्डियन आर्ट, थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, अड्यार, मद्रास, 1923

11. के. भुजबल शास्त्री : जैन साहित्य का ब्रहद इतिहास, भाग–5, पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी, 1981
12. कैलाशचन्द्र : जैन साहित्य का इतिहास (पूर्व पीठिका), श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्था, नरिया, वाराणसी, वि.नि.सं. 2489
13. गिरी कमल : भारतीय श्रृंगार, मोतीलाल बनारसी दास,दिल्ली, 1987
14. गिरी कुमुद : जैन महापुराण कलापरक अध्ययन, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी 1995
15. गैरोला, वाचस्पति : भारतीय चित्रकला, लोक भारतीय प्रकाशक, इलाहाबाद, 1963
16. गोपीनाथ कविराज : अभिनंदन ग्रंथ, प्रकाशक अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् लखनऊ, 1969
17. गोयल प्रीतिप्रभा : हिन्दू विवाह मीमांसा,रुपायन संस्थान,बोरुन्दा,1976
18. घोष, अमलानंद : आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर (अनु. लक्ष्मी चन्द्र जैन) जैन कला और स्थापत्य, नई दिल्ली, 197
19. चतुर्वेदी, गिरिधर शर्मा : पुराण परिशीलन,बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1970
20. चौधरी, गुलाबचन्द्र : जैन साहित्य का ब्रहद इतिहास, भाग 6,पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, 1973
21. चौधरी राममूर्तिः हरिवंश पुराण : एक सास्कृतिक अध्ययन, सुलभ प्रकाशन, लखनउ, 1989
22. जैन कमल प्रभाः प्राचीन जैन साहित्य में आर्थिक जीवन, पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी, 1986
23. जैन कोमलचन्द्र : जैन और बौद्ध आगमों में नारी जीवन, काशी हिन्दु वि.वि. वाराणसी 1967
24. जैन गोकुलचन्द्र : यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर, 1967

25. जैन जगदीश चन्द्र : जैन आगम में भारतीय समाज, चौखम्भा विद्या भवन,वाराणसी, 1965
26. जैन ज्योतिप्रसाद : भरतीय इतिहास : एक दृष्टि, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1961
27. जैन प्रेमचन्द्र : हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, देव नागर प्रकाशन जयपुर, 1983
28. जैन प्रेमसुमन : कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, 1975
29. जैन पुष्पा : महाभारतकालीन समाज,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966
30. जैन, बलभद्र : जैन धर्म का प्राचीन इतिहास भाग 1–2, गजेन्द्र पब्लिकेशन, धर्मपुरा दिल्ली, वि. नि. सं. 2578
31. जैन भागचन्द्र : देवगढ़ की जैनकला एक सांस्कृतिक अध्ययन, भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिल्ली, 1974
32. जैन रमेशचन्द्र : पद्मचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति, श्रीभारतवर्षीय दि. जैन महासभा, कोटा,1983
33. जैन रूक्मिणी : हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर 1973
34. जैन श्रीचन्द्र : जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर 1971
35. जैन हीरालाल : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल, 1975
36. तिवारी पुष्पा : प्राचीन भारतीय आभूषण, किताब महल, इलाहाबाद, 1922
37. त्रिपाठी, श्रीकृष्णा मणि : पुराण तत्व मीमांसा, हिन्दी प्रचारक मण्डल, लखनऊ, 1961
38. दास, एक. के. : इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑव ऐशेन्ट इण्डिया, कोस्मो पब्लिकेशन, दिल्ली, 2006

39. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1963
40. दीपंकर : कौटिल्य कालीन भारत, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 19
41. देव, कैलाश चन्द्र : भरत का संगीत सिद्धान्त, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, लखनऊ, 1951
42. दोशी, बेचनदास : जैन साहित्य का व्रहत इतिहास, भाग 1, पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी, 1989
43. नाथुराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, हेमचन्द्र मोदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई 1942
44. पाण्डेय, वीणापाणि : हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, लखनऊ, 1960
45. पुरी, बैजनाथ : इण्डिया इन द टाइम ऑव पतंजलि,भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1957
46. फूलचन्द्र : वर्ण, जाति और धर्म, भारतीय ज्ञानपीठ,काशी, 1963
47. बनर्जी सुरेशचन्द्र : फण्डामेण्टल्स ऑव ऐशेन्ट इण्डियन म्यूजिक ऐण्ड डान्स, इन्सिट्यूट ऑफ इण्डोलोजी, अहमदाबाद, 1976
48. बेनी प्रसाद : हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, हिन्दूस्तान एकेडमी, इलाहाबाद 1950
49. भट्टाचार्य, नगेन्द्रनाथ : जैन फिलासफी, हिस्टॉरिकल आउट लाइन्स, मुंशीराम मनोहर लाल, नई दिल्ली, 1976
50. भास्कर, भागचन्द्र : जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास, विद्यापीठ प्रकाशन, नागपुर, 19
51. महेन्द्र कुमार : जैन दर्शन, श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी 1975
52. महतो, मोहनलाल : जातककालीन भारतीय संस्कृति, ओमप्रकाश कपूर ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1957

53. माताजी चन्दनामतिजी : भगवान ऋषभदेव दशावतार नाटक, दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापूर, मेरठ, 2000
54. माताजी ज्ञानमतीजी : भगवान ऋषभदेव, दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापूर, मेरठ, 1996
55. मिश्र जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2006
56. मिश्र, लालमणि : भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली, 1973
57. मिश्रदेवी प्रसाद : जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन, हिन्दूस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, 1980
58. मिश्रा सुदर्शन : महाकवि पुष्पदंत एवं उनका महापुराण एक अध्ययन, वैशाली प्रकाशन, बिहार, 1982
59. मुखर्जी राधाकुमुद : हिन्दू सभ्यता, अनु. वासुदेव शरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2007
60. मुनि प्रमाणसागर : जैन तत्व विद्या, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, चौथा सं. 2001
61. मेनन, पद्मिनी : पुराण संदर्भ कोश कृतित्व, ग्रन्थम पब्लिकेशन, कानपुर 1968
62. मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, भारती भंडार, प्रयाग सं. 2007
63. यादव झिनकू : जैन धर्म की एतिहासिक रुपरेखा, इण्डिक अकादमी, दिल्ली, 1981
64. राय, कृष्णदास : भारत की चित्रकला, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1966
65. राम, मन्मथ : प्राचीन भारतीय मनोरंजन, भारतीय विद्या भवन,इलाहाबाद 1956
66. प्राचीन भारतीय लोकोत्सव, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद,1951
67. राय, सिद्धेश्वरी नारायण : पौराणिक धर्म एवं समाज, पंचनद पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1968
68. वाजपेयी कृष्णदत्त : कला का इतिहास, हिन्दी साहित्य, प्रयाग, 1962

69. विन्टरनित्ज, एम. : ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर,भाग 1–2, मोतीलाल, बनारसी दास, नई दिल्ली, 2010

70. व्यास, शांति कुमार नाथूराम : रामायण कालीन संस्कृति, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 1958

71. शर्मा, भगवत शरण : भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस, 2001

72. शाह, अम्बालाल : जैन साहित्य का वृहद इतिहास भाग 5, पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी, 1981

73. शास्त्री काशीनाथ : पुराण तत्व मीमांसा, हिन्दी प्रचारक मण्डल, लखनऊ, 1961

74. शास्त्री के. वासुदेव : संगीत शास्त्र, हिन्दी समिति, लखनऊ 1968

75. शास्त्री नेमिचन्द्र : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी 1968

76. शुक्ल द्विजेन्द्र नाथ : भारतीय स्थापत्य, हिन्दी समिति विभाग, लखनऊ 2002

77. श्रीवास्तव, हरीशचन्द्र : वाद्य शास्त्र, संगीत सदन प्रकाशन इलाहाबाद, 1959

78. सांकृत्यायन राहुल : ऋग्वैदिक आर्य, किताब महल, इलाहाबाद, 1957

79. सिंह मदन मोहन : बुद्धकालीन समाज और धर्म, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1972

80. हस्तीमल : जैन धर्म का मौलिक इतिहास (भाग 1), जैन इतिहास समिति, जयपुर 1995

शोध पत्रिकाएँ :

मार्डन रिव्यू

महावीर जयंती स्मारिका प्रकाशन

अनेकान्त : वीर सेवा मंदिर, सरसावा

अंहिसा वाणी (मासिक) : अखिल भारतीय जैन मिशन, अलीगंज

इण्डियन ऐण्टीक्वेरी : बम्बई

ऐनुअल रिपोर्ट ऑफ द आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया : नई दिल्ली

जिनवाणी : जयपुर

जिन संदेश : श्री भारतीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा

जैन महिलादर्श

प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार :

तुलसी प्रज्ञा : जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)

सम्यग्ज्ञान : दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर, मेरठ

सन्मति संदेश : प्रकाश हितैषी शास्त्री, दिल्ली

श्रमण : पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी

महावीर जयन्ती स्मारिका : प्रकाशक राजस्थान जैन सभा, जयपुर 1964

प्राचीन भारतीय मनोरंजन के साधनों को प्रतिबिम्बित करते चित्र फलक

वस्त्र एवं वेशभूषा

अंशुक

महापुराण,10/191,पद्म पु. 3/198 मस्तक पर अंशुक (अजन्ता फलक 28,पंक्ति 4,चित्र 4)

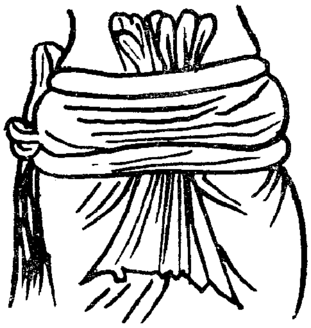

उपसंव्यान

(महापुराण 13/70) पल्ले सहित धोती पहनने का ढंग वासुदेव शरण अग्रवाल-हर्षचरित

उष्णीष

(महापुराण 10/178) साफा या पगड़ी (अमरावती फलक 7)

केश प्रसाधन

धम्मिल विन्यास

(महापुराण 6/80) केशों को इकट्ठा करके जूड़े की तरह बांधना (अजन्ता फलक 39)

कवरी विन्यास

(महापुराण 12/41) चोटी तथा चोटी में माला(वासुदेव शरण अग्रवाल, वही चित्र 41)

अलक जाल

(महापुराण 11/221) केश बांधने का विशेष ढंग। राजघाट से प्राप्त एक मृण्मूर्ति (गोकुल चन्द जैन-यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, चित्र 33)

आभूषण

मौलि

(पद्म पुराण 71/7), पुरूषों के केश बांधने का विशेष प्रकार (गोकुल चन्द जैन, वही चित्र 34)

सीमान्तक मणि

(पद्म पुराण 8/70) स्त्रियों की मांग का आभूषण (अहिच्छत्र में मिट्टी के खिलोने, दृष्टव्य-अग्रवाल-वही, चित्र16)

मुकुट

(महापुराण 3/91, पद्म पुराण 85/107, हरिवंश 41/36) (अजन्ता फलक 78)

आभूषण

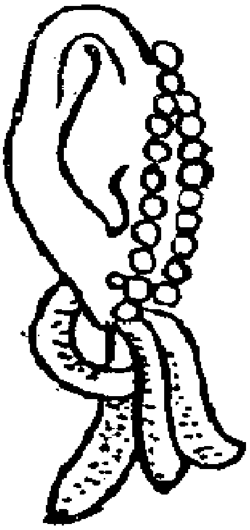

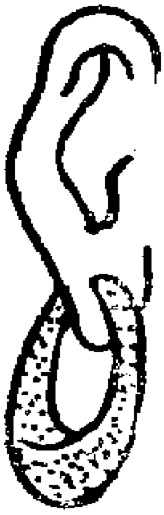

अवतंस
पद्‌पुराण 3/3 कान का आभूषण अजन्ता फलक 33

दाम
महापुराण 4/184 कमर में धारण करने का आभूषण अमरावती फलक चित्र 27

कुण्डल
महापुराण 3/78, पद्म पु. 118/4, हरिवंश 7/89 कान का आभूषण अजन्ता फलक 33

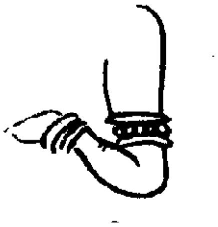

केयूर,
महापुराण, 9/41, हरिवंश 7/89 भुजा का आभूषण, अमरावती फलक चित्र 7-8

कण्ठमालिका
महापुराण6/8, कंठ का आभूषण अमरावती फलक 4 चित्र 29

रसना
महापुराण, 15/103 कमर में पहनने का आभूषण, वही चित्र 34

मेखला
महापुराण, 15/23 कमर में पहनने का आभूषण, चोड़ी तथा घुंघरूदार, वही चित्र 26

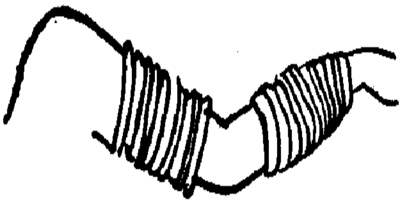

अंगद
महापुराण, 5/257, हरिवंश 11/14 भुजा का आभूषण, अमरावती फलक 8 चित्र 7-8

नूपुर
महापुराण, 6/63, हरिवंश 14/41 पैर की उंगलियों में आभूषण, वही चित्र 18

कांची
पद्‌मपुराण, 8/72 कमर में पहनने की करधनी, अमरावती फलक 4 चित्र 28

आभूषण

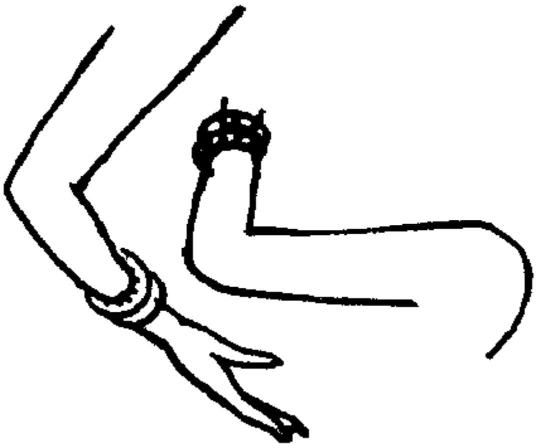

कटक

पद्मपुराण, 3/3, हरिवंश 11/11

कलाई का आभूषण, अमरावती फलक 8 चित्र 9, 11

किरीट

महापुराण 11/33 चक्रवर्ती तथा सम्राटों द्वारा धारण किया जाने वाला सिर का बहुमूल्य आभूषरण अमरावती फलक 7 चित्र 8

वृंदवादन

मंजीरा, एकतंत्री वीणा, वंशी, झांझ तथा हुडूक, खजुराहों 10 वीं शती

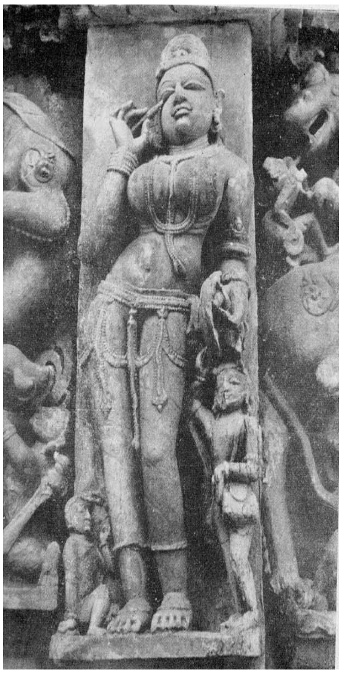

अंजन लगाती हुई अप्सरा
दक्षिणी भित्ति (मंडप) पार्श्वनाथ मंदिर,
खजुराहों 10 वीं शती

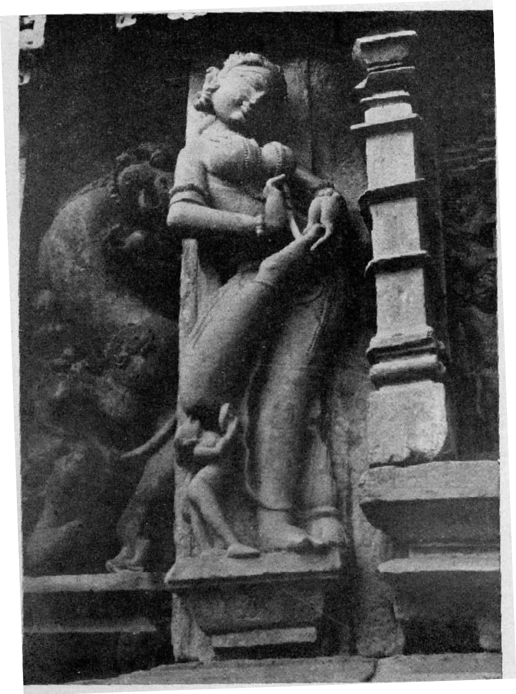

महावर रचाती हुई अप्सरा,
उत्तरी भित्ति (मंडप) पार्श्वनाथ मंदिर,
खजुराहों 10 वीं शती

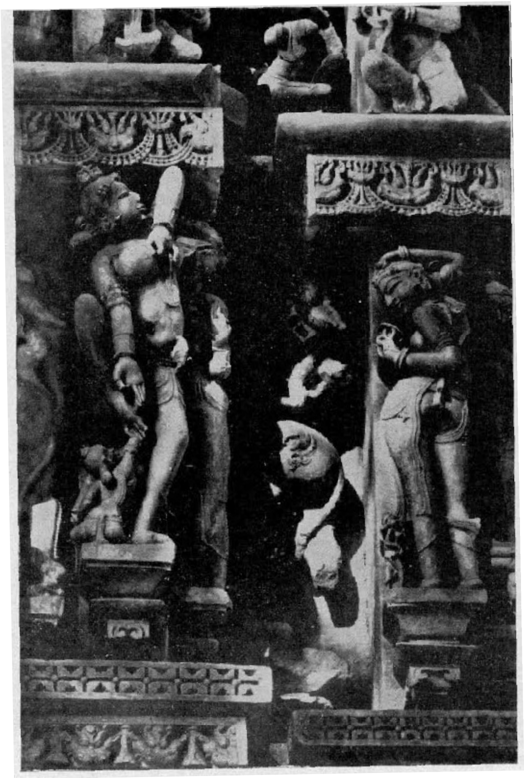

नर्तकी एवं दर्पणा
आदिनाथ मंदिर, खजुराहों 10 वीं शती

नूपुर बांधती हुई अप्सरा,
उत्तरी भित्ति (मंडप) पार्श्वनाथ मंदिर,
खजुराहों 10 वीं शती

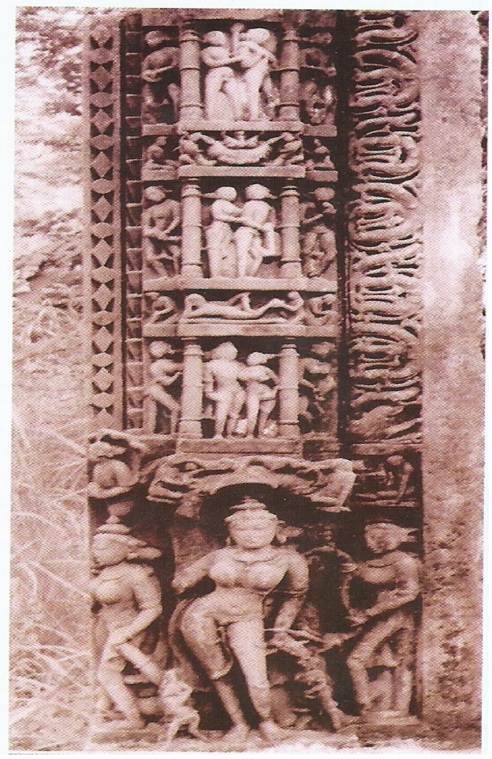

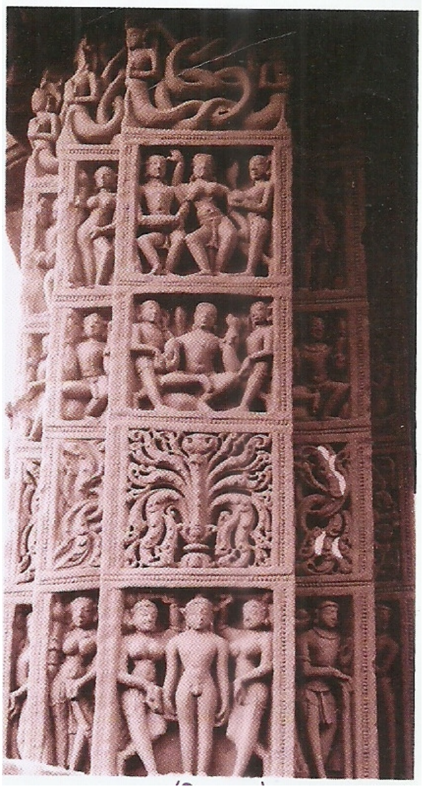

द्वार शाखा अर्धमंडप
मदिर संख्या 12, देवगढ ल. 10 वीं शती ई.

स्तम्भ
(नृत्य के सामूहिक दृश्य) मदिर संख्या 12,
देवगढ ल. 10 वीं शती ई.

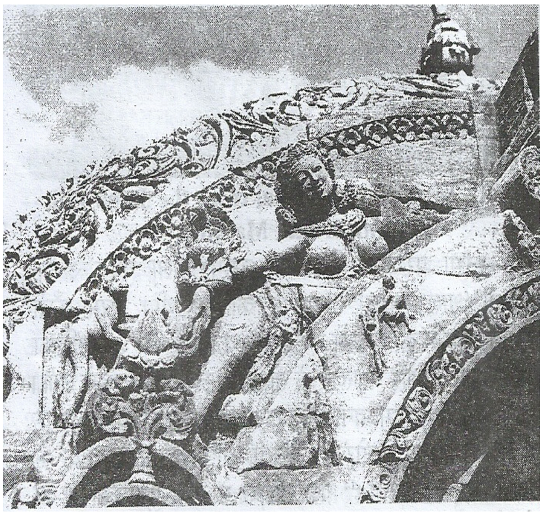

शालभंजिका
पद्म पुराण 71/34, 9 वीं सदी भुवनेश्वर से
प्राप्त तोरण पर शालभंजिका

श्रवणबेलगोला की होयसल
शैली की शालभंजिका

Volume : 5 | Issue : 12 | Dec 2016 | ₹ 500/-

PEER REVIEWED & REFEREED INTERNATIONAL JOURNAL
ISSN - 2250-1991 | IMPACT FACTOR - 5.215

An International Journal

PARIPEX - INDIAN JOURNAL OF RESEARCH

Journal DOI : 10.15373/22501991

A Peer Reviewed, Referred, Refereed & Indexed International Journal

Journal for All Subjects

INDEX COPERNICUS IC VALUE : 79.96

www.paripex.in

Volume : 5 | Issue : 12 | December-2016

ISSN - 2250-1991 | IF : 5.215 | IC Value : 79.96

Original Research Paper

History

'प्राचीन भारत की जैन शिक्षा पद्धति

Ruchi Jain

Research Scholar, Department of History, University of Kota.

KEYWORDS

भारत में प्राचीन काल से ही ज्ञान की अतिषय प्रतिश्ठा रही है। व्यक्तित्व के विकास की दिषा में ज्ञान को महत्वपूर्ण माना गया है। जैनागमों में भी ज्ञान की महिमा स्वीकारी गई है। यह ज्ञान सर्वसाधारण को किस प्रकार सुलभ हो इसके लिए भारत में प्राचीन काल से शिक्षण पद्धति पर विषेश ध्यान दिया गया है। वैदिक या ब्राह्मण शिक्षा पद्धति, बौद्ध शिक्षा पद्धति और जैन शिक्षा पद्धति तीनों संस्कृतियों में शिक्षण की अपनी परम्पराएं रही है। जैन शिक्षा पद्धति के विषय में हमें जैन धर्मग्रन्थों से अनेक उल्लेख प्राप्त होते है। इन्हें एकत्रित करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि निःसन्देह भारतवर्श में प्राचीनकाल में एक अत्यन्त सुव्यवस्थित जैन शिक्षण पद्धति थी।

शिक्षा के लिए अंग्रेजी में षब्द है – "Education" यह शब्द लैटिन भाशा के एज्यूकेटम से बना है। एजुकेटम में दो षब्द है ए (इ) तथा डूको (Duco) 'ए' का अर्थ है अन्दर से तथा "डूको" का अर्थ है आगे बढ़ना। इस प्रकार एजुकेषन का अर्थ हुआ अन्दर से आगे बढ़ना। इस परिप्रेक्ष्य में जैन षिक्षा वह शिक्षा है जो आत्मविजय की और बढ़ने का मार्ग सिखाती है, मनुष्य की अनन्त ज्ञान, दर्षन, चरित्र और बल के विकास की सम्भावनाओं को पूर्णता प्रदान करने पर जोर देती है। जैन शिक्षा पद्धति सम्पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक भूमि पर प्रतिश्ठित है यह जीवन की चरम उपलब्धि मोक्ष को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानकर जीव और सम्पूर्ण जगत के ज्ञेयतत्व को शिक्षा का विषय बनाती है।

जैन शिक्षा पद्धति का प्राचीन काल से क्रमिक विकास हुआ। तीर्थकरों, गणधर तथा गणधरों से आचार्य परम्परा द्वारा शिक्षा प्रवाहित होती रही। प्रारम्भिक चरण में जब भारतीय चिन्तन मोक्ष को केन्द्र बिन्दु मानकर चल रहा था उस समय जैन शिक्षा पद्धति का जो स्वरूप था वह आगे चलकर देष और काल अनुरूप विकसित हुआ। जैनधर्म में पंच परमेष्ठीयॉ में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपध्याय, साधु इन उपाध्याय, का कार्य मुख्य रूप से शिक्षा का बताया है। आचार्य, उपाध्याय, और साधु ये तीनो ही गुरू जैन धर्म में मुनिव्रत का पालन करते है।[1] ये साधु वर्शाकाल में चार महीने एक ही स्थान पर रखकर अस्थायी रूप से शिक्षा के केन्द्रों को निर्मित करते है।[2] गुरू, शिष्य और अभिमव के उदस्त सम्बन्धों के कारण जैन धर्म में शिक्षण पद्धति अन्य शिक्षण पद्धतियों की तुलना में अनूठी है।

जैन दर्षन में ज्ञान के पॉच भेद बताऐ है :– 1. मतिज्ञान, 2. श्रुतज्ञान, 3. अवधिज्ञान, 4. मनःपर्ययज्ञान, 5. केवल ज्ञान।[3] सामान्य व्यक्ति का विकास मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से प्रारम्भ होता है। इन्द्रियों और मन की सहायता से होने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहा जाता है। मतिज्ञान से व्यक्ति की आई.क्यू. का पता लगता है। इसी योग्यता के आधार पर उसके श्रुतज्ञान का विकास होता है। इसी ज्ञान को मौखिक और स्मृति के माध्यम से वर्धित किया जाता था तथा व्यक्तित्व का समग्र विकास किया जाता था। समग्र विकास से तात्पर्य अन्तरंग एवं बाह्य सभी गुणों का विकास है। व्यक्तित्व क सम्पूर्ण विकास के लिए कारण बताये गये है।[4] :– 1. सम्यग्दर्षन, 2. सम्यग्ज्ञान, 3. सम्यक्चारित्र। शिक्षा का सम्पूर्ण विषय सम्यक्–दर्षन, सम्यक्–ज्ञान और सम्यक्चारित्र के अन्तर्गत समाविश्ट हो जाता है। इन्हीं तीनों के सम्मिलित रूप को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग कहा गया है। शिक्षा पद्धति का प्रयोग जैन जगत में तत्व ज्ञान के लिए किया गया है। तत्वों के यथार्थ स्वरूप की श्रद्धा को सम्यक्दर्षन कहते है। वास्तविक बोध सम्यक् ज्ञान है तथा आत्मकल्याण के लिए किया जाने वाला सदाचरण सम्यक् चारित्र है।

तत्त्वार्थ सूत्र में इन्हें प्राप्त करने की दो विधियाँ बतलायी है[5] :–

1ण निसर्ग विधि6 :– निसर्ग का अर्थ है – स्वभाव, प्रज्ञावान व्यक्ति को गुरू अथवा षिक्षक द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की आवष्यकता नही रहती। जीवन के विकास क्रम में वह स्वतः ही ज्ञान के विभिन्न विषयों को सीखता रहता है तथा तत्वों का सम्यक् बोध स्वतः प्राप्त करता रहता हैं। जीवन ही उनकी प्रयोगषाला बन जाती है। सम्यक्–ज्ञान और सम्यक्–बोध की उपलब्धियों को वे जीवन की प्रयोगषाला में उतार कर सम्क्चारित्र को उपलब्ध करते है, यही निसर्ग विधि है।

2ण अधिगम विधि 7 – अधिगम का अर्थ है पदार्थ का ज्ञान। दूसरों के उपदेषप. ूर्वक पदार्थों का जो ज्ञान होता है, वह अधिगमज कहलाता है। इस विधि के द्वारा प्रतिभावान तथा अल्प प्रतिभायुक्त सभी प्रकार के व्यक्ति तत्वज्ञान प्राप्त करते है। यही तत्वज्ञान सम्यक्दर्षन का कारण बनता है। गुरू के उपदेष द्वारा जीव और जगत रूपी तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना ही अधिगम विधि है।

इन दोनों विधियों में प्रमुखता यह है कि निसर्ग विधि में व्यक्ति को प्रज्ञा का स्फुरण होता है और अधिगम विधि में गुरू का माध्यम अनिवार्य होता है।

अधिगम के निम्न भेद बताए गए है :–

1ण निक्षेप विधि, 2. प्रमाण विधि , 3. नय–विधि 4. स्वाध्याय विधि, 5. अनुयोग द्वार विधि।

2ण निक्षेप विधि [8] :– शब्द प्रयोग को लेकर उत्पन्न हुई समस्या का समाधान निक्षेप पद्धति से होता है। लोक व्यवहार में अथवा षास्त्र में जितने शब्द होते है, वे कहां किस अर्थ में प्रयोग किये जा रहे है। इसका ज्ञान होना निक्षेप विधि है। हर षब्द अनेकार्थक होता है। उसके कुछ अर्थ प्रासंगिक होते है और कुछ अप्रासंगिक/ प्रासंगिक अर्थ का ग्रहण और अप्रासंगिक अर्थों का परिहार करने के लिए व्यक्ति षब्द के सब अर्थों को अपने दिमाग मे स्थापित करता है। ऐसा किए बिना कोई भी षब्द अपने प्रयोजन को पूरा नही कर सकता अर्थात् अनिष्चितता की स्थिति से निकलकर निष्चितता में पहुँचना निक्षेप विधि है।

निक्षेप के चार प्रकार होते है :–

1. नाम, 2. स्थापना, 3. द्रव्य, 4. भाव

नाम निक्षेप[9] :– यह विधि ज्ञान पारित का प्रथम चरण है। शब्द क मूल अर्थ की अपेक्षा किए बिना ही किसी व्यक्ति या वस्तु का इच्छानुसार नामकरण करना नाम निक्षेप है। इसमें जाति, द्रव्य, गुण, क्रिया, लक्षण आदि निमत्तों की अपेक्षा नही की जाती, जैसे किसी व्यक्ति का नाम शेरसिंह रखना।

स्थापना निक्षेप[10] :– मूल अर्थ से षून्य वस्तु को उसी अभिप्राय से स्थापित करना स्थापना निक्षेप है। अर्थात् वास्तविक वस्तु की प्रतिकृति, मूर्ति, चित्र आदि बनाकर अथवा बिना आकार बनाये ही किसी वस्तु में उसकी स्थापना करके मूल वस्तु का ज्ञान कराना स्थापना निक्षेप विधि है। श्लोक वार्तिक में इसके दो भेद बताए गए है :–

1. सद्भाव स्थापना, 2. असद्भाव स्थापना

सद्भाव स्थापना के अनुसार कोई प्रतिकृति बनाकर ज्ञान कराया जाता है यह प्रतिकृति काष्ठ, मृत्तिका, पाषाण, दाँत सींग आदि की बनाई जा सकती है।

असद्भाव स्थापना में वस्तु की यथार्थ प्रतिकृति नहीं बनायी जाती है बल्कि किसी भी आकार की वस्तु में मूल वस्तु की स्थापना कर दी जाती हैं जैसे षतरंज के मोहरों में राजा, वजीर, प्यादें, हाथी आदि की स्थापना कर ली जाती है।

द्रव्य निक्षेप[11] :– भूत एवं भावी स्थिति को ध्यान में रखते हुए वस्तु का ज्ञान कराना द्रव्य निक्षेप विधि है।

भाव निक्षेप [12]:– वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखकर वस्तुस्वरूप का ज्ञान कराना भाव निक्षेप विधि है।

2 प्रमाण विधि[13] :– सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते है। संषय आदि से रहित वस्तु का पूर्णरूप से ज्ञान कराना प्रमाणविधि है। जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में बोध कराने वाला ज्ञान। कशायपाहुड़ के अनुसार "जिसके द्वारा पदार्थ माना जाए, उस प्रमाण कहते है। जीव और जगत का पूर्ण एवं प्रमाणिक ज्ञान इस विधि के द्वारा प्राप्त होता हैं। प्रमाण विधि के दो भेद है। 1. प्रत्यक्ष प्रमाण, 2. परोक्ष प्रमाण।

बिना किसी बाह्रय आलम्बन के होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान हमें इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा की योग्यता से ही प्राप्त होता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद है :– पारमार्थिक प्रत्यक्ष व संव्यावहारिक प्रत्यक्ष।

परोक्ष ज्ञान को पराधीन ज्ञान भी कहते है यह ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है। परोक्ष के भी पॉच भेद किए गए है।

1. स्मृति, 2. प्रत्यभिज्ञान, 3. तर्क, 4. अनुमान, 5. आगम

3 नय विधि [15]: अनन्त धर्मात्मक वस्तु के विवक्षित धर्म को मुख्य और अन्य धर्मों को गौण करने वाले विचार को नय कहा जाता हैं। नय विधि द्वारा वस्तुस्वरूप का आंषिक विष्लेशण करके ज्ञान कराया जाता हैं नय के मूलतः दो भेद है :

द्रव्यार्थिक नय :– सामान्य को विशय बनाने वाला नय

पर्यायार्थिक नय :– पर्याय अर्थात् विशेष को विशय बनाने वाला नय। इनमें से प्रथम नय के तीन और द्वितीय के चार अर्थात् कुल मिलाकर सात भेद होते है :–

1. नैगमनय :– यह सबसे अधिक स्थूल और व्यावहारिक नय है अनिष्पन्न अर्थ में संकल्प मात्र को ग्रहण करने वाला नैगम नय है। जो नय अतीत, अनागत और वर्तमान को विकल्प रूप से साधता है वह नैगमनय है।
2. संग्रहनय :– अपनी जाति का विरोध किए बिना समस्त विषयों को एक रूप से

ग्रहण करने वाला नय संग्रहनय हैं।

3. व्यवहार नय :– संग्रहनय के द्वारा ग्रहीत अर्थ का विधिपूर्वक भेद करना व्यवहार नय हैं
4. ऋजु नय :– वस्तु की वर्तमान पर्याय मात्र को ग्रहण करने वाला विचार ऋजु सूत्र नय है। इसके दो भेद है –सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय और स्थूल ऋजु सूत्र नय।
5. शब्द नय – षब्द प्रयोगों में आने वाले दोषों को दूर करके तदनुसार अर्थ भेद की कल्पना करना शब्द नय है।
6. समभिरूढ़ नय : एक षब्द के अनेक अर्थों में से प्रधान अर्थ को ग्रहण करने वाला नय समभिरूढ़ नय है।
7. एवं भूत नय : षब्द के फलित होने वाले अर्थ के घटित होने पर ही उसको उस रूप में मानना।

इस प्रकार, इन सात नयों के द्वारा जगत का समस्त व्यवहार संचालित होता है।

स्वाध्याय विधि[18] : विषिश्ट ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वाध्याय विधि का उपयोग किया जाता था। इसके पाँच भेद है :

3 1. वाचना[19] – ग्रन्थ, अर्थ या दोनों का निर्दोश रीति से पाठ करना।
4 2. पृच्छना[20]– संषय का निराकरण करने के उद्देष्य से प्रस्तुत विशय के संदर्भ में प्रष्न करना।

3. अनुप्रेक्षा : पढ़ें हुए पाठ का मन से अभ्यास करना अर्थात् उसे पूर्ण रूप से आत्मसात् करते हुए श्रुतज्ञान का परिषीलन करना।
4. आम्नाय [21] : षुद्धिपूर्वक पाठ का बार–बार दोहरना।
5. धर्मोपदेष [22] : धर्मकथा करना धर्मोपदेष है। इसके भी चार भेद है :–

1. आक्षेपिणी, 2. विक्षेपिणी, 3. संवेदिनी, 4. निर्वेदिनी

स्वाध्याय विधि का प्रयोग ज्ञान में पूर्णता लाने के लिए, संवेग , तप वृद्धि के लिए तथा विचारों में षुद्धि बढ़ाने के लिए किया जाता था।

6. अनुयोगद्वार विधि 23 : इस विधि में तत्वों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसके लिए वह निर्देष, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान, सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्षन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व आदि चौदह प्रष्नों के द्वारा सम्यक् दर्षन प्राप्त करता है।

उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त 9 वीं षती में रचित जैन ग्रंथ आदिपुराण में भी षिक्षण विधियों का उल्लेख मिलता है। जो निम्न है :

पाठ विधि [24] :– गुरू या शिक्षक शिष्यों को पाठ विधि द्वारा अंक तथा अक्षर ज्ञान की शिक्षा देते है। इस विधि का प्रारम्भ आदि तीर्थंकर ऋशभदेव से प्रारम्भ होता है। इसी विधि के द्वारा उन्होंने अपनी कन्याओं ब्राह्मनी और सुन्दरी को शिक्षा दी थी। इस पद्धति में गुरू द्वारा लिखे गये या दिये गये पाठ को षिश्य बार–बार लिखकर कंठस्थ करता है। सामान्यतः इस विधि का प्रयोग जैन पुराणों के समस्त पात्रों के अध्यापन में किया गया है। इस विधि में मूलतः तीन षिक्षा तत्व परिगणित है:– 1. उच्चारण की स्पश्टता 2. लेखन कला का अभ्यास, 3. तर्कात्मक संख्या प्रणाली विधि।

प्रष्नोत्तर विधि [25]:– प्रष्नोत्तर विधि का प्रयोग जैन वाड्मय में कई जगह किया जाता हैं। इसमें षिश्य प्रष्न करता है और ज्ञानी गुरूजन उन प्रष्नों का उचित उत्तर देकर षिश्य का मार्गदर्षन करते है। इस विधि के माध्यम से गुढ़ और दुरुह विशय को भी सरलतापूर्वक समझाया जाता था जिससे विशयों को आत्मसात् करने में षिश्य को सरलता होती थी।

शास्त्रार्थ विधि [26] :– षास्त्रार्थ विधि प्राचीन षिक्षा पद्धति की एक प्रमुख विधि है। इस विधि में पूर्व और उत्तर पक्ष की स्थापनापूर्वक विशयों की जानकारी प्राप्त की जाती है। एक ही तथ्य की उपलब्धि विभिन्न प्रकार के तर्कों, विकल्पों और बौद्धिक प्रयोगों द्वारा की जाती है। आदिपुराण में उल्लेख है कि प्राचीन काल में षास्त्रार्थ मंत्रियों के बीच आप्त तत्व की जानकारी के लिए किया जाता था।

इस विधि की निम्न विषेशताएं है :– 1. ननु – शब्द द्वारा शंका उत्पन्न करना, 2. 'न च' या इति चेन्न द्वारा शंका का निराकरण करना, 3. यत्वेद 'यथेक' द्वारा पक्ष का निराकरण करना।, 5. अनवस्था, चक्रक, प्रसंग साधन आदि दोषों का उद्‌भावना या प्रस्तुत करना, 5. 'एवं' 'आह', अत्र 'यस्तु' आदि संकेतांषो द्वारा कथनों और उद्धरणों को उपस्थित कर समालोचन करना। 6. विकल्पों को उठाकर प्रतिपक्षी का समाधान करते हुए स्वपक्ष की सिद्धि के लिए अक्षेपिणी, विक्षेपिणी, जैसे कथाओं का प्रयोग करना, 7. 'तदुक्तं' 'नादि' जैसे शब्दों का किसी वस्तु या कथन पर बल देने के लिए प्रयोग करना।

3 उपक्रम विधि [27]: इस विधि द्वारा श्रोता षास्त्र को समीप करता है। अर्थात् अद्दिश्ट पदार्थ को श्रोताओं की बुद्धि में बैठा देना, उन्हें अच्छी तरह समझा देना उपक्रम है। इस उपोद्घात भी कहते है।

4 श्रवण विधि : इस विधि के अनुसार किसी भी तथ्य को सुनकर या उसका श्रवण करके उसे ग्रहण करना श्रवण विधि है। विषेशावष्यक भाव्य में श्रवण में सात विधियों का उल्लेख किया गया है – 1. मौनपूर्वक श्रवण, विरोधरहित, अनुकरणीय, जिज्ञासु, मीमांसात्मक, विशयपारायण, अभिव्यक्ति पूर्वक श्रवण।

5 पंचाग विधि [28] – इस विधि के द्वारा वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और उपदेष को समझा जाता था।

6 पदविधि : 'पद्यन्ते नायन्ते ऽ नेनेति पदं' अर्थात् जिसके द्वारा अर्थ जाना जाता है वह पद है। पद विधि द्वारा षब्दों का वर्गीकरण करके उसके अर्थ की निष्चित अवधारणा प्रकट की जाती है।

7 प्ररूपणा विधि [29] – वाच्य वाचक, प्रतिपाद्य–प्रतिपादक एवं विशय–विशयी भाव की दृश्टि से षब्दों का आख्यान करना प्ररूपणा विधि है। गुरू षिश्य को 'किं', 'कस्य', 'केन', 'क्व' कियत, 'कालं; एवं कतिविधं इन छः प्रष्नों द्वारा निर्देष, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान का साधन करते हुए अध्यापन करना प्ररूपणा विधि है।

इसके अतिरिक्त पदार्थ विधि, संगोश्ठी विधि, व्याख्या विधि आदि षिक्षा की पद्धतियों को प्रयोग प्राचीन काल मे गुरूओं, आचार्यों द्वारा किया जाता था। इस पकार गूढ़ से गूढ़ विशय को भी उक्त विधियों के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता था कि षिश्य भली प्रकार इसे हृदयगंम कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3ण दृश्टव्य– वट्टकेरः 'मूलाचार' (माणिकचन्द दि. जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि.स.1977,1980)

4ण पी.बी. देसाईः जैनिज्म इन साउथ इण्डिया (जीवराज जैन ग्रन्थमाला, षोलापूर, 1952)

5ण पूज्यपादः सर्वार्थसिद्धि, सम्पादक पं. फूलचन्द सिद्धान्त षास्त्रीः (भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणासी)

6ण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमोर्ग : – तत्वार्थ सूत्र 1। 1

7ण तन्निसंर्गादधिगमाद्वा। – तत्वार्थ सूत्र 1। 3

8ण तथ्वार्थ सूत्र 1। 3

9ण अधिगमों दर्थावबोधः। यत्परोपदेश पूर्वक जीबा अधिगमनिमित्त तदुत्तरम्/ सर्वार्थसिद्धि 1। 3

10ण संशये विपर्यये अनध्य वसाये वा स्थितेश्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः । – धवला भाग 4/13, 1/2/6

11ण अतद्‌गुणे वस्तुनि सव्यवहारार्थ पुरूशाकर न्नियुज्यमानं संज्ञाकर्म नाम। – सर्वार्थसिद्धि 1/4

12ण सद्‌भावेतरभेदेन द्विधा तत्वाधिरोपतः / ष्लोक वार्तिक 2। 1। 5

13ण सद्‌भानि परिणाम प्राप्तिं प्रति योग्यतामदाधनं। सद्‌द्रव्य भित्युच्यते अथवा अद्‌भावं वा द्रव्यमित्युच्यते । तत्वार्थवार्तिक 1।5

14ण वर्तमान तत्त्वार्थोपलक्षितं द्रव्यं भावः) – सर्वार्थसिद्धि 1।5

15ण सम्यक् ज्ञानं प्रमाणं ....। प्रमाण परीक्षा प्र.1

16ण कशायपाहुड 1।1।1, 27, 37,6

17ण जैन तत्व विद्या, मुनिप्रमाण सागर पृं.260

18ण सर्वार्थसिद्धि 1।33।141।2

19ण कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पृश्ठ 271

20ण वाचना पृच्छना नुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः। तत्वार्थसूत्र 9।25

21ण सर्वार्थसिद्धि 9। 25। 443। 4

22ण सर्वार्थसिद्धि 9। 25। 443। 4

23ण सर्वार्थसिद्धि 9। 25। 443। 5

24ण तत्त्वार्थ सूत्र 7। 87

25ण सर्वार्थसिद्धि 1। 7

26ण आदिपुराण96। 104, 16। 105–108

27ण वही 1। 138, 2।2, 2।26, 2।28–29, 12। 212–252

28ण वही 4।16–30, 5।27–88

29ण वही 2।102–104

30ण वहीं 21। 96

31ण सर्वार्थसिद्धि 1। 8

Volume : 5 | Issue : 12 | December-2016 ISSN - 2250-1991 | IF : 5.215 | IC Value : 79.96

Original Research Paper History

प्राचीन भारतीय समाज में मनोरंजन के साधन के रूप में वर्णित नृत्य (जैन महापुराण के विशेष संदर्भ में)

Ruchi Jain Research Scholar, Department of History, University of Kota.

KEYWORDS

जैन पुराणों में महापुराण सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विस्तृत है महापुराण के दो भाग है – आदिपुराण तथा उत्तरपुराण। आदिपुराण की रचना आचार्य जिनसेन ने लगभग नवीं शती ई. के पूर्वार्द्ध में तथा उत्तरपुराण की रचना उनके शिष्य गुणभद्र ने नवीं शती ई के अन्त या दसवीं शती ई. के प्रारम्भ में थी। इन दोनों पुराणों को संयुक्त रूप से महापुराण कहा जाता है, इसमें चौबीस तीर्थकरों, 12 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र, 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण सहित कुल 63 शलाका पुरूषों के जीवन चरित्र का विस्तारपुर्वक निरूपण हुआ है।

महापुराण को भारतीय संस्कृति का विश्वकोष कहा गया है। इसमें विभिन्न कथाओं के माध्यम से धार्मिक जीवन के विविध पक्षों के साथ ही सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और कलापरक विषयों में मनोरंजन की पूर्णरूपेण छाप दिखलाई पड़ती है। ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसका इसमें प्रतिपादन न किया गया हो। महापुराण में ही वर्णित है कि यह पुराण, महाकाव्य धर्मकथा, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र और युद्ध की श्रेष्ठ व्यवस्था सूचक महान इतिहास है। महापुराण कालीन शासक राष्ट्रकूट राजा अमोघ वर्ष प्रथम एवं कृष्ण द्वितीय के काल की सांस्कृतिक घटनाओं का अभुतपूर्ण वर्णन इसमें मिलता है। कला एवं मनोरंजन के तत्वों की गवेषणा कर तत्कालीन युग के मनोरंजन के साधनों की विस्तृत सूची हमें मिलती है। महापुराण कालीन समाज में शारीरिक एवं मानसिक समास्याओं के निवारणार्थ एवं जीवन में सुख शान्ति, उत्साह, कौतुहल आदि मानवीय गुणों के विकास के लिए अनेक मनोरंजनात्मक साधनों का प्रादुर्भाव हुआ। इस संदर्भ में नृत्य का वर्णन किया जाना यहाँ श्रेयस्कर है।

प्राचीन काल से समाज के सभी वर्गो में नृत्य के प्रति अभिरूचि मिलती है। उत्सव, जन्म, हर्ष, काम, त्याग, विलास, विवाद तथा परीक्षा आदि अवसरों पर नृत्य किया जाता था। इस युग में नृत्य मनोरंजन का लोकप्रिय साधन था। भगवान आदिनाथ ने पुत्र भरत को संपूर्ण नृत्य शास्त्र की शिक्षा दी थी।[1] इस से महापुराण कालीन समाज में नृत्य की लोकप्रियता का पता लगता है। प्राचीन काल से ही समाज के सभी वर्गो में नृत्य कला के प्रेमी व अभिरूचि रखने वाले व्यक्ति होते थे जो नृत्य के माध्यम से अपना व दर्शकों का मनोरंजन करते थे। वास्तव में नृत्य ताल और लय के अनुरूप अंग संचालन की प्रक्रिया है। महापुराण में नृत्य में रस, भाव, आंशिक अभिनय, अनुभाव, चेष्टा को मुख्य तत्व बताया है[2] तथा शरीर के विभिन्न अंगों जैसे कटाक्ष, कपोलों, पैरों, हाथों, मुख, नेत्रों, अंगराज, नाभि कटिप्रदेश तथा मेखलाओं द्वारा भाव प्रदर्शन करने का उल्लेख मिलता है।[3] महापुराण में नृत्य का उल्लेख कई संदर्भो में आया है। नृत्य करती हुई देवांगनाएँ नाट्यशास्त्र में निश्चित किये स्थानों पर हाथ फैलाती हुई विभिन्न प्रकार की भाव मुद्राओं का प्रदर्शन करती है। चंचल अंगों को तीव्र गति से घुमाने के कारण नर्तकियों के अंग प्रत्यंग का सौन्दर्य दर्शकों के चित्त को आनंदित कर देता है।[4] नृत्य के साथ वीणा, पुष्कर, बांसुरी, झाँझ, दुन्दुभि, झल्लर, काहल, ताल, मृदंग, पणव, पट्ट, दर्दुर तथा विपन्ची आदि वाद्यों की साहचर्यता नृत्य को मनोरम बना देती है। महापुराण में नृत्य की विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन हुआ है। जो दर्शकों को चित्ताकर्षक करती है।[5]

1 मुस्कान के साथ मधुर गीत पूर्वक नृत्य करना।
2 भौंहों का संचालन कटाक्षपूर्वक करके नृत्य करना।
3 विलासपूर्ण नृत्य करना।
4 शरीर के अवयवों का प्रदर्शन करना।
5 गतिपूर्वक नृत्य करना।
6 ताल ध्वनि और गायन के सामंजस्य अनुसार नृत्य करना।
7 शारीरिक चेष्टाओं का प्रदर्शन करते हुए फिरकी लेना।
8 मिट्टी के घड़े पुष्पों के घड़े, स्वर्ण घट सिर पर रखकर विभिन्न प्रकार की भावा. वलियों का प्रदर्शन करना।
9 रसपूर्वक नृत्य करना अर्थात् विभिन्न अंगों के सौदर्य को विभिन्न भावों द्वारा प्रदर्शित करते हुए नृत्य करना ।
10 छत्रबंध आदि का प्रदर्शन करते हुए विभिन्न रूपों में नृत्य करना।
11 एक भुजा पर नर्तकी तथा दूसरे पर नर्तक को नृत्य कराते हुए स्वयं नृत्य करन. ा।

महापुराण में वास्तविक नृत्य उसी को माना गया है जिसमें अंगों की विभिन्न प्रकार की चेष्टाएँ सम्पन्न हो और नृत्य करने वाला अनेक रूपों में अपनी रसभावमयी मुद्राओं का प्रदर्शन करें। नृत्य के भेद मधुर एवं उद्धत दोनों ही रूपों द्वारा मनोरंजन वर्णित है। मधुर नृत्य को यहां लास्य नृत्य कहा गया है तथा उद्धत को तांडव नृत्य।[6] महापुराण में कई प्रकार के नृत्यों का उल्लेख मिलता है। इन नृत्यों की विभिन्न चेष्टाएँ लोगों का मन प्रसन्न करती थी।

ताण्डव नृत्य – इस नृत्य को भक्तिपूर्वक करने का विधान महापुराण में वर्णित है। पाद, कटि, कण्ठ तथा हाथ को तालों, कलाओं, वर्णों तथा लयों पर संचालित कर उत्तम रस दिखलाना ही ताण्डव नृत्य है।[7] पुष्पांजली अर्पण करते हुए नृत्य करना पुष्पांजली प्रकीर्णक ताण्डव नृत्य तथा विभिन्न रूपों में सुगंधित जल की वर्षा करते हुए नृत्य करना जलसेचन नामक ताण्डव नृत्य है।[8] महापुराण में इन्द्र द्वारा जन्मकल्याणक महोत्सव में हर्षोल्लास से ताण्डव नृत्य किये जाने का उल्लेख है। वहीं मोर के भी ताण्डव नृत्य कर मनोविनोद करने का वर्णन आया है।

अलातचक्र नृत्य[9] – अयोध्या नगरी में जन्मोत्सव मनाने के प्रसंग में इस नृत्य को देखकर सम्पूर्ण नगरी में आनन्द छा जाता है। इस नृत्य में शीघ्रता से फिरकी लेते हुए विभिन्न मुद्राओं द्वारा शरीर के अंग–प्रत्यंग का संचालन किया जाता था।

इन्द्रजाल नृत्य[10] – भगवान के जन्मोत्सव पर आनन्द प्रकट करने हेतु यह नृत्य इन्द्र द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस नृत्य में नर्तक के साथ नर्तकी भी भाग लेती थी। लेकिन नृत्य इतनी शीघ्रता से सम्पन्न होता था कि स्त्री या पुरूष के स्वरूप का भेद ज्ञात नहीं हो पाता था। अत्यधिक भ्रम के साथ किये गए इस नृत्य की विधि में क्षण में व्याप्त, क्षण में लघु, क्षण में निकट, क्षणभर में दूर, क्षण में आकाश एवं क्षण में पृथ्वी पर आना ही प्रदर्शित होता है। यह नृत्य देखकर दर्शक आनन्द और कौतुक से भर उठते है।

चक्र नृत्य[11] – इस नृत्य में नर्तक नर्तकियों के साथ तेजी से चक्कर लगाते हुए नृत्य करता था। सिर का मुकुट ही घुमने के कारण इसे चक्र नृत्य कहा गया है।

निष्क्रमण नृत्य[12] – इस नृत्य में नर्तकियाँ फिरकी लगाते हुए कभी दो–तीन हाथ आगे तथा कभी दो–तीन हाथ पीछे आ जाती थी।

आनन्द नृत्य[13] – महापुराण में इन्द्र द्वारा इस नृत्य को करने का उल्लेख मिलता है। उस समय समाज में इस नृत्य का विशेष प्रचलन था। गार्न्धवों इस नृत्य के समय अनेक वाद्यों को बजाकर दर्शकों के मनोरंजन को बढ़ाते थे। इस नृत्य में नर्तकियाँ भी भाग लेती थी। यह नृत्य श्रृंगार रस से परिपूर्ण तथा सरस होता था।

कटाक्ष नृत्य[14] – इस नृत्य में नर्तकियाँ पुरूष की बाहुओं पर अपने कटाक्षों का विक्षेपर्ण करती हुई नृत्य करती है।

सूची नृत्य [15] – जब नर्तकियाँ नृत्य करते समय सिमट कर सूची के रूप में परिणत हो जाती है तब उसे सूची नृत्य कहते है। महापुराण में किसी पुरूष के हाथ की ऊंगलियों पर लीलापूर्वक नृत्य करना सूची नृत्य है।

लास्य नृत्य [16] – लास्य नृत्य उन दिनों नवयौवनाओं के मनोरंजन कर लोकप्रिय प्रमुख साधन था। यह नृत्य सुकुमार प्रयोगो से परिपूर्ण तथा रसोत्पादक था। सावन माह में झूला क्रीड़ा करते समय कामिनियों द्वारा यह नृत्य किया जाता है।

मयूर नृत्य [17] – महापुराण में मयूर का रूप धरकर नृत्य करने का उल्लेख मिलता है। जो वर्तमान की तरह उस समय भी मयूर नृत्य के प्रचलन को संकेतित करता है। मोरों का ताण्डव नृत्य [18] भी उत्कृष्ट होता है जिसे देखकर मन प्रसन्न हो जाता था।

पुतली नृत्य [19] – इस नृत्य का विकसित रूप वर्तमान का कठपुतली नृत्य है। इस नृत्य में नर्तक की भुजाओं पर नर्तकियाँ इस प्रकार नृत्य करती है मानों किसी यन्त्र की पट्टी पर पुतलियाँ नृत्य कर रही है।

बहुरूपिणी नृत्य [20] – इसके अंतर्गत नर्तकियाँ मोतियों के हारों को पहनकर इस प्रकार नृत्य करती है जिससे उनकी आकृतियाँ उस हार के मणियों में प्रतिविम्वित हो। इस नृत्य में अनेक स्वरूप परिवर्तित करने के कारण एवं अनेक प्रतिविम्ब पड़ने के कारण इसे बहुरूपिणी नृत्य कहा जाता है।

बांस नृत्य [21] – इस नृत्य में ऐसा प्रतीत होता है जैसे बांस के ऊपर नृत्य किया गया हो। वास्तव में नर्तकियाँ ऊंगलियों के अग्र भाग पर अपनी नाभि रखकर फिरकी लगाती हुई नृत्य करती है।

नीलांजना नृत्य [22] – नृत्य जहाँ एक ओर मनोरंजन कर सर्वोत्कृष्ट साधन रहा है वहीं दूसरी ओर यह नृत्य भगवान आदिनाथ को वैराग्य उत्पन्न करने का कारण भी रहा था।

सामूहिक नृत्य [23] – यह नृत्य सामूहिक रू‹ से किया जाता था। इस नृत्य में अनेक व्यक्ति संयुक्त रूप से एक ही भाव, अनुभाव, रस, चेष्टाओं के साथ नृत्य करते थे।

महापुराण में वर्णित उपर्युक्त नृत्य के प्रकारों को देखकर निष्कर्ष निकलता है कि नृत्य राजा, राज परिवार, सामान्य जन, सभी वर्ग के स्त्री पुरूषों में लोकप्रिय थे। स्त्री व पुरुष अलग–अलग व साथ दोनों ही तरह से नृत्य करके मनोरंजन करते थे। महापुराण में नर्तकी को महारत्न की संज्ञा दी है।[24] उत्तरपुराण में वर्णित है कि राजा अन्य राज्य की नर्तकियों को अपने राज्य में सम्मान आश्रय प्रदान करते थे। वे राजसभा की शान बढ़ाती थी तथा राजा, सामन्त, पुरोहित सभी का नृत्यशालाओं एवं राजसभा में मनोरंजन करती थी। बर्बरी व चिलातिका दो ऐसी नर्तकियों का उल्लेख मिलता है जो अपने नृत्य से लोगों का मनोरंजन करती थी।[25] इन नृत्यांगनाओं द्वारा नृत्यकला का प्रशिक्षण भी दिया जाता था।[26] नाटकाचार्य भी नृत्य सिखाते थे। इनने अपनी पुत्री नाट्यालिका को नृत्य का प्रशिक्षण दिया।[27] नृत्य बालकों के भी मनोविनोद के साधन थे। वर्णित है कि भगवान वृषभदेव बालक्रीड़ा के समय नृत्य के द्वारा मनोरंजन करते थे।[28] उत्सव भी बिना नृत्य के अधूरे थे, भगवान के जन्म कल्याणक के समय अप्सराओं का लय एवं ताल के साथ फिरकी लगाते हुए लीला सहित नृत्य लोगों को आनन्द प्रदान कर रहा था। नृत्यकारिणी राजदरबार की शान हुआ करती थी। नृत्य करते समय विभिन्न मनोज्ञ वेश–भूषाएँ भी धारण की जाती थी।[29] अतः तत्कालीन समय में नृत्य में इतनी अधिक रूचि के उदाहरण हमें महापुराण में यंत्र–तंत्र देखने को मिलते है जो नृत्य की लोकप्रियता को दिग्दर्शित करते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

आदिपुराण 16 / 119
वही 14 / 119
वही 14 / 145–147
काश्चिन्नृत्तविनोदेन रेजिरे कृतरेचकाः।
नभोरंगे विलोलाङ्ग्यः सोदामिन्य इवोद्रचः ।। वही 12 / 190
वही 12 / 190–191
वही 12 / 194–197,
14 / 145–150
दीप्तो)त रस प्रायं नृत्यं ताण्डवमेंकतः सूकुमार प्रयोगाढ्यं ललितं लास्यमन्यतः ।। आदिपुराण 14 / 155
वही 14 / 120–125
कृत पुष्पाजलेरस्य ताण्डव रंम्भसम्भ्रमे पुष्पवर्षे दिवोऽमुंवचन् सुरास्तद्भक्तितोषिताः आदिपुरा.Ī 4 / 145–114
वही 14 / 128
वही 14 / 130–131
वही 14 / 136
वही +
वही 14 / 154
वही 14 / 144
सलील मनटन काश्चित् सूचीनाट्यमिवास्थिताः ।। वही14 / 142
वही 14 / 142
वही 14 / 133,14 / 155
वही 4 / 77
अकस्मात्ताण्डवा रम्भ मातेने शिखिनां कुलम् ।।
ogh 3 / 170
वही 14 / 150
वही 14 / 141
वही 14 / 143
वही 7 / 7
वही 14 / 148–145
युष्मद गृहे महारत्नं नर्तकी किल विश्रुता उत्तरपुराण 58 / 67
व्ही 62 / 429
वही 62 / 465
वही 46 / 299
आदिपुराण 14 / 193